॥ श्रीहरिः ॥

1595

साधकमें साधुता

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR (SINCE 1923)

पं० श्रीगयाप्रसादजी

1595

साधकमें साधुता

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

पं० श्रीगयाप्रसादजी

सं० २०७४ पाँचवाँ पुनर्मुद्रण १,५००
कुल मुद्रण १६,५००

❖ मूल्य—₹ ३०
(तीस रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
web : gitapress.org e-mail : booksales@gitapress.org
गीताप्रेस प्रकाशन gitapressbookshop. in से online खरीदें।

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

आध्यात्मिक जगत्में सत्संगकी बड़ी महिमा है। जो व्यक्ति मानव-जीवन प्राप्त कर इसी जीवनमें जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना चाहता है अर्थात् जिसके हृदयमें परमात्मप्रभुको प्राप्त करनेका दृढ़ भाव है और इसके लिये सतत प्रयत्नशील है—वही व्यक्ति 'साधक' है। क्योंकि साधकमें साधुता तो होनी ही चाहिये, बिना साधुताके साधना सिद्ध नहीं हो सकती। वास्तवमें साधुतासे सांसारिक लोग अपरिचित होते हैं, वे व्यवहारकुशल तो होते हैं, परंतु व्यवहारमें तथा जीवनमें साधुता कैसे आये, यह नहीं जानते।

सामान्यतः आस्तिकजन जो परमात्मामें आस्था और विश्वास रखते हैं, वे अपने पूरे समयका कुछ अंश अर्थात् चौबीस घंटेमें एक-दो घंटे भगवान्की सेवा-पूजामें लगानेका प्रयत्न करते हैं, परंतु बाकी पूरा समय उनका अपने स्वार्थकी सिद्धिमें लगता है, जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदिसे वे मुक्त नहीं हो पाते। एक-दो घंटेका समय जो भगवान्की पूजा तथा सेवा आदिमें लगता है, उसका पुण्य उन्हें प्राप्त होता है। इसके साथ ही बचे हुए बाईस घंटोंमें उनके जो भी सत्-असत् आचरण होते हैं, उनका भी फल उन्हें भोगना पड़ता है—यह उनके बन्धनका मुख्य कारण है।

अतः जिन्हें संसार-सागरकी भवाटवीसे पार होना है अर्थात् इसी जीवनमें बन्धनोंसे मुक्त होकर भगवत्सन्निधि प्राप्त करनी है, उन साधकोंको अपने जीवनमें साधुता लानी ही होगी। साधुता लानेका तात्पर्य है कि अपने अन्तःकरणके भावोंको शुद्ध करना

तथा अपने सम्पूर्ण जीवनको भगवान्‌की पूजामें परिणत कर देना। चौबीस घंटेका समय स्वार्थकी जगह परमार्थमें परिणत हो जाय—यही है साधुताका स्वरूप। यह साधुता कैसे प्राप्त होगी, इसका एकमात्र उपाय है—'सत्सङ्ग'। किंतु यह सत्सङ्ग उसी व्यक्तिसे प्राप्त हो सकता है, जिसका स्वयंका साधु-जीवन हो और जिसने अपने जीवनके अनुभवोंको सबके कल्याणकी दृष्टिसे प्रकट किया हो।

प्रस्तुत पुस्तकमें एक ऐसे महापुरुषकी वाणी उन्हींकी मातृभाषामें सँजोयी गयी है, जिनका सम्पूर्ण जीवन त्याग, तपस्या, साधना और साधुताका उदाहरण है।

पं०श्रीगयाप्रसादजी व्रजकी एक महान् विभूति तो थे ही, साथ ही आध्यात्मिक जगत्‌के प्रेरणास्रोत भी थे। वे सर्वस्व त्याग कर विरक्त भावसे जीवनपर्यन्त तपोमयी व्रजभूमिमें साधनामें संलग्न थे। वे एक उच्चकोटिके साधक एवं सिद्ध संतके रूपमें हम सभीको प्राप्त थे, पर कुछ दिनों पूर्व वे गोलोक सिधार गये।

साधनावस्थामें अपनी अनुभूति और अपने अनुभवोंके आधारपर उनके द्वारा समय-समयपर जो उद्‌गार व्रजभाषामें प्रकट किये गये, उन्हें उनके भक्तोंने लिपिबद्ध कर लिया। पिछले दिनों 'कल्याण'के मासिक अंकोंमें शृङ्खलाबद्धरूपसे इन्हें प्रकाशित किया गया, पाठकोंके आग्रहको ध्यानमें रखकर इसे यहाँ संकलित कर पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है साधकगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

—राधेश्याम खेमका

❑ ❑

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

साधकमें साधुता

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

श्रीसद्‌गुरुदेव (परमात्मप्रभु)-की शरणागति प्राप्त करनौं साधु कौ सर्व-प्रथम कर्तव्य है।

× × ×

श्रीसद्‌गुरुदेवमें अधिक-सौं-अधिक श्रद्धा-भाव राखनौं।

× × ×

दिन व दिन श्रद्धा कूँ (को) बढ़ाते रहनौं।

× × ×

यह देखते रहनौं कि, श्रद्धामें कमी तौ नहीं आय रही है।

× × ×

पवित्र कार्य तथा सदाचार-पालन सौं श्रद्धाकी पुष्टि होय है।

× × ×

श्रद्धा-सम्पन्न साधकके ताँईं (लिये) लोक तथा परलोकमें कछु दुर्लभ नहीं।

× × ×

अपने श्रीसद्‌गुरु भगवान्‌में अधिक-सौं-अधिक श्रद्धा होनौं ही उचित है, किंतु साथ ही यहू विचार रहै कि, अन्य संतनमें अवज्ञा-बुद्धि न हौन पावै।

× × ×

सबरे (सभी) संत 'महापुरुष श्रीभगवत्-तुल्य माननीय तथा आदरणीय हैं।'

× × ×

जानेसु संत अनंत समाना॥

× × ×

चाहै जा देशके हौयँ, चाहै जा जातिके हौयँ, 'संत सबही परम माननीय हैं।'

× × ×

सबमें उच्च भाव राखै। सबकौ सम्मान करै। सबकी सेवा करै। सबकी वाणीन कौ अध्ययन करै। सबके उपदेश सुनै। किंतु साधन अपने श्रीसद्गुरुदेवकी आज्ञाके अनुसार ही करै।

× × ×

काहूके धर्ममें तर्क न करै।

× × ×

सबरे मत, समस्त विधि-विधान ठीक हैं, इनमें शंका न उपस्थित करै।

× × ×

साधुके ताँईं उचित है कि, प्राणपण सौं अपनी विधि कौ पालन करै, किंतु काहूकी विधिकी आलोचना न करै।

× × ×

अपनी ही विधि कूँ बड़ौ मानिकैं सबकी विधिन कौं खण्डन करनौं यह महा अपराध है। साधु या सौं बहुत ही बचतौ रहै।

× × ×

वाद-विवाद, खण्डन-मण्डनके चक्र सौं बचिकैं निरन्तर अपने साधनमें लग्यौ रहै, याहीमें परम कल्याण है।

× × ×

गृहत्यागि कैं जब साधु बने हौ तौ, सब प्रपंचन सौं बचिकैं निरन्तर भजनमें ही लगनौं चहिए।

× × ×

भजन ही करैं। भजन ही बिचारैं। भजनकी ही अनेकन युक्तियाँ सोचैं। भजनमें अतृप्ति ही रहै। जीवन कौ एक-एक क्षण भजनमें ही व्यतीत करैं।

× × ×

जो-जो बात, वस्तु, व्यक्ति, स्थान भजनमें बाधक हौयँ, उनसौं सदैव ही बचते रहौ।

× × ×

अधिक बोलनौं, अधिक निद्रा, अधिक आहार, नशीली वस्तुन कौ सेवन, जन-समाजमें बैठनौं, ब्रह्मचर्य कौ अभाव, क्रोध आदिक दोषन कौ आवेश, रजोगुणकी वृद्धि,महत्-अवज्ञा, सदाचार-पालनमें कमी, दम्भ,भोगासक्ति, कार्य-बाहुल्य, शरीरकी अस्वस्थता, चिन्ता, मनकी अशान्ति, श्रीसद्गुरु-भक्तिमें कमी— ये सब भजनमें बाधक हैं।

विशेषरूप सौं विरक्त साधकके ताँईं स्त्री-जाति-मात्र एवं गृहस्थ साधकके ताँईं परस्त्री-मात्र सौं सम्पर्क तथा श्रीप्राणबल्लभमें प्रेमकी कमी आदिक भजनमें बाधक हैं।

× × ×

श्रीसद्गुरु-भक्ति, त्यागमय जीवन, नियम-पालनमें दृढ़ता, संयम, सदाचार-पालन, गुरु-जन-सेवा, अखण्ड-ब्रह्मचर्य, एकान्तवास— ये सब भजनमें सहायक हैं। साधु इनकूँ बढ़ातौ ही रहै।

× × ×

भजन करिवे कौ विचार ही भजन कूँ बढ़ातौ रहै है।

× × ×

भजन करिवेमें रुचि बढ़ै, या बातकी इच्छा होय, तौ अन्य समस्त कार्य शिथिल करतौ जाय, चाहैं वे कार्य कितने हूँ शुभ क्यौं न प्रतीत होते हौयँ।

× × ×

यदि निष्ठाके साथ भजन होयवे लगै, तौ भजनमें रुचि स्वतः ही उत्पन्न होयवे लगै है।

× × ×

भजन करिकैं केवल भजन ही माँगै।

× × ×

पूर्ण-प्रतिज्ञा करै कि—'सब प्रपंचन सौ बचिकैं अब अपनौं अवशिष्ट जीवन केवल भजनमें ही व्यतीत करूँगौ।'

× × ×

नियमित भजन होयवे सौं चित्तमें अत्यन्त प्रसन्नता होय है।

× × ×

चाहै कछु है जाऔ, किंतु नियमित भजन तौ नित्य ही पूरौ करि लैनौं चहिए।

× × ×

नियमके बिना जो भजन कियौ जाय है, वाकौ (उसका) अधिक महत्त्व नहीं।

× × ×

यदि रुचिपूर्वक, नियम सौं, दीर्घकालपर्यन्त, भजन कियौ जाय, तौ भजन भगवान् साधक कूँ पकरि लैयँ हैं। (यदि रुचिपूर्वक नियमसे दीर्घकालतक भजन किया जाय तो भजनरूप भगवान् साधकको पकड़ लेता है।)

× × ×

वही परम सौभाग्यशाली दिवस है, जा दिना नियमित भजन पूर्णरूप सौं बनि जाय।

× × ×

सबरी कामनान कूँ त्यागि कैं एक ही कामना बनावै कि, मैं अधिक-सौं-अधिक भजन ही करूँ।

× × ×

यदि कृपा करिकैं स्वयं श्रीभगवान् वरदान दैवेके ताँईं प्रकट है कैं आज्ञा करैं, तौ इनसौं हूँ केवल यही याचना करै कि मैं निरन्तर आपकौ भजन-स्मरण ही करतौ रहूँ, यही वरदान दै जाऔ।

× × ×

नित्य सायंकालमें शयन सौं पूर्व यह विचारि लेय कि आज भजनमें कैसी रुचि रही। साथ ही यह प्रतिज्ञा करै कि अगले दिना आज सौं हूँ अधिक भजनमें उत्साह राखूँगौ।

× × ×

प्रातःकाल जागते ही श्रीसद्गुरु भगवान् सौं प्रार्थना करै कि आज भजन करिवेमें मेरे मन मैं अत्यधिक उत्साह रहै।

× × ×

अपनी रहनी (आदत या स्वभाव) ऐसी बनाय लेय कि जासौं भजन करिवेमें सब प्रकारकी सुविधा रहै।

× × ×

भजनमें शिथिलता हौनौं, पाप कौ परिणाम है।

× × ×

भजन बंद है जानौं, अपराध कौ परिणाम है।

× × ×

पुण्यके फलस्वरूप भजनमें रुचि बढ़ै है, एवं रसकी उत्पत्ति होयवे लगै है, यामें सबसौं उत्तम पुण्य है, सबके सुख पहुँचायवे कौ बिचार तथा भजन करिवे वारेकी (वालेकी) सब प्रकार सौं सहायता करनी चहिए।

× × ×

जब ताँईं भजनमें आनन्द नहीं आवैगौ, तब ताँईं यामें रुचि हैवे की कमी रहैगी। भजनमें आनन्द मिलै, याके ताँईं

उपाय है, अधिक-सौं-अधिक एकान्तमें बैठिकैं, सब प्रपंचन सौं बचिकैं, नियम सौं भजन करनौं। भजन बनिवे लगै, यही श्रीभगवत्कृपा है।

× × ×

भजन करिवेके समय आलस्य कौ आक्रमण न हौन पावै। याके ताँईं चाहैं जो युक्ति सोचनी परै। जैसे—टहलिवे लगै। जल सौं मुँख धोय ले। जल पी ले। स्वच्छ वायु-सेवन करै। काहू काममें हाथ लगाय देने। श्रीभगवत्कृपा कौ स्मरण करिवे लगै। अधिक जभाँई लैवे सौं सदैव बचै।

× × ×

जिह्यकी सफलता श्रीनामोच्चारण, श्रवणनकी सफलता श्रीनाम-श्रवणमें तथा मनके ताँईं परमानन्द केवल श्रीनामके रसामृत पीवेमें ही है।

× × ×

दीर्घकालपर्यन्त भजन करिवे पैहू (पर भी) यदि भजनमें प्रगाढ़ रुचि न भयी, तौ समझ लेनौं चहिए कि, हमारे अन्त:करणमें कोई अन्य अभिलाषा आसन जमाये भये है। वाकूँ (उसकी)पूर्ण खोज करिकैं शीघ्रातिशीघ्र निकारि कैं भगाय दैनौं चहिए।

× × ×

भजन करिवेमें यदि कबहूँ दुर्भाग्य सौं प्रमाद बनि जाय तौ अन्त:करणमें अत्यन्त खिन्नता हौनी चहिए। क्योंकि यदि प्रमाद कूँ सहन करि बैठ्यौ, तौ याकौ दुष्परिणाम काहू समय भजन सौं विमुख कराय बैठैगौ। श्रद्धावान् सौं प्रमाद नहीं बनै है।

× × ×

तप, त्याग, संयम, नियम-पालन, श्रद्धा, सदाचार तथा निष्कामताके साथ-साथ जो भजन कियौ जाय है, वह भजन

विषयन सौं घृणा, संसार सौं उपरति तथा श्रीप्राणप्यारे दुलारे जीवनाधारमें स्नेह-लता कौ अंकुर उत्पन्न करिवे लगै है।

× × ×

बड़ी गहराई सौं यह देखतौ रहै कि, मैं भजन उचित रूप सौं करि रह्यौ हूँ या नहीं। अपने समस्त उत्साह कूँ, अपनी समस्त रुचि कूँ तथा अपनी समस्त तत्परता कूँ, शीघ्रातिशीघ्र लगाय देय केवल भजन करिवेमें। एकान्तमें बैठिकैं, घुटने टेकिकैं, अन्त:करणकी सबरी शक्ति कूँ बहायकैं, भजन सौं केवल यही माँगै कि, भरि पेट भजन करि लऊँ।

× × ×

तबही मान्यौ जायगौ, भजन भयौ चितलाय।
जब शुभ से शुभ कामकूँ, नैंक न मन ललचाय॥

× × ×

इतनौं अभ्यास बढ़ावै कि निद्रावस्थामें हूँ (भी) भजन होतौ रहै।

× × ×

पूर्ण उत्साह, पूर्ण लगन, पूर्ण रुचिके साथ अधिक भजन करिवे पै (पर) ऐसौ होनौं सम्भव है जाय है कि, निद्रावस्थामें हूँ भजन होतौ ही रहै है। भजन करनौं ही सबसौं बड़ौ कार्य है। जा कामके ताँईं आये हौ, वह पहलें पूरौ करि लेउ। सौभाग्य एक—केवल भजन ही सुहाय।

× × ×

सम्प्रति साधकके दो ही कर्तव्य हैं, एकतौ अधिक-सौं-अधिक भजन करनौं, दूसरौ भजनमें सहायक नियमन कौ दृढ़ता सौं पालन। जब स्वत: ही उत्कट-उत्साह उपजैगौ, ठीक-ठीक

भजन तौ तबही है पावैगौ। कोटिन जन्मनके सुकृतन कौ फल जब आवै है, तब ही भजन करिवेमें पूर्ण उत्साह होय है।

× × ×

प्राणी कूँ सब कछू मिल सकै है, किंतु दुर्लभ एवं अलभ्य है भजन करिवेके ताँईं पूर्ण अवकाश मिलनौं। वही यथार्थमें भाग्यशाली है, जाकूँ आज भजन करिवे कौ पूर्ण अवकाश प्राप्त है। वाहू सौं (उससे भी) अधिक भाग्यशाली है वह, जो भजनके समय कूँ केवल भजनमें ही लगाय देय है और वाहू सौं अधिक भाग्यशाली है वह, जो इतनौं करते भयेहू अतृप्त ही रहै है। किम्बहुना। सबसौं अधिकाधिक भाग्यवान् वही है, हाँ केवल वही है, जाके अन्त:करणमें भजन करिवेके अतिरिक्त अन्य कोई अभिलाषा कौ अंश ही न रह गयौ होय।

× × ×

यदि मेरे श्रीप्राणनाथने आपके ताँईं भजन करिवे कौं पूर्ण अवकाश दै दियौ है, तौ अब इनकूँ तंग मत कारौ और कछू मत माँग बैठियौं? इनकूँ लज्जित होनौं परैगौ, कारण कि, इनके पास अब दैवेके नाम पै कछू बच्यौ ही नायँ, जो आपकूँ दै सकैं।

× × ×

अब या बिचारे पै दया करौ, आशीर्वाद देउ, कि इनकी बुद्धि ठीक-ठिकाने पै ही रहै, भजन करिवे वारेन कूँ संसारी कामनमें न फँसायौ करै।

× × ×

यदि आपकूँ शान्ति नहीं मिली, सुख नहीं मिल्यौ, मनकी चंचलता दूर नहीं भयी, तौ आपने कोई महान् अपराध कियौ होयगौ यह निश्चय करिकैं मान लीजौं। इनकी प्रदत्त वस्तुकी अवहेलना? यदि इनकी दयी भयी वस्तु कौ सम्मान करि रहे

हौ, सदुपयोग करि रहे हौ, तौ—मित्रवर! तैयार है जाऔ, मेरे खिलौनाके असह्य विरह तापमें तड़फिवेके ताँईं।

× × ×

अगम यद्वा अलभ्य मानिकैं निराश मत है बैठियौं, श्रीसद्गुरुदेवके अनुग्रह बल पै पूर्ण विश्वास करिकैं, पूर्ण तत्परताके साथ, साधनमें लगि जाऔ, फलतौ तुम्हारी योग्यता एवं पूर्ण लगनकी वाट देखि रह्यो है। पूर्ण विश्वास राखौ कि—श्रीजीवनाधार तुम्हें बुलाय रहे हैं, इनकी नित्य सेवामें सम्मिलित होनौं ही परैगौ, हाँ, कछु विलम्ब है, तौ केवल तुम्हारे दृढ़ संकल्प कौ ही।

× × ×

साधुके ताईं यहू परम आवश्यक है कि अपने आचरण पवित्रतम बनावै। श्रद्धा तथा सदाचार—ये दोनौ संपुट होने चहिए भजनके दोऊ ओर। यदि यह इच्छा होय कि याही जन्ममें साधन कौ पूरौ फल मिलि जाय तौ इन दोउनकूँ दृढ़ताके साथ पकरे रहै। दीर्घकालपर्यन्त, पूर्ण विश्वासके साथ यह त्रिपुटी यदि चलाते वनि गयी, तौ स्वल्पकालमें ही सफलता हस्तगत है जायगी।

× × ×

श्रद्धा, सदाचार, साधन तथा वैराग्यमें संतोष न होन पावै।

× × ×

जो मृत्युके समय करना परै है, वाकूँ यही क्षणसौं करि चलौ। संसारकी ओर सौं आँख मूँदिकैं, अन्त:करणमें श्रीजीवन-सर्वस्वकी पूर्ण स्मृति जगै, यही तौ उत्तमोत्तम मृत्यु है। को कहै, यह मृत्यु है अथवा अमरत्व। संसारमें जो कछू है रह्यौ है, हौन देउ, तुमतौ अपने लक्ष्य पैही डटे रहौ।

× × ×

संसारके सुधार कौ काम उनपै ही छोड़ि देउ, जिननें याकी (इसकी) रचना करी है तथा जो याके स्वामी हैं, तुमतौ अपनी सुधारकी धुनमें ही लगौ। प्रमादरहित है कैं पूर्ण-योग सौं साधनमें डटे रहौ, साध्य तौ साधन कौ फल है। साधक विषयनकी ओर मुड़ि परै, यह पतन तौ है ही, किंतु संसारके उद्धार करिवे कौ बीड़ा उठाय लैनौं हूँ कम पतन नहीं।

साधु कौ उद्धार तौ वाही क्षण सौं हैवे लगि गयौ, जा क्षण सौं वह पूर्ण-तत्परताके साथ भजन करिवेमें त्रुटि पर्‌यौ। बहुत जानकार बनिवेकी धुनिमें न परै, कर्तव्यपरायण ही बनै। कहवौ कम, सुनिवौ कम, करिवौ अधिक। इन्द्रिय तथा मनसौं सदा सावधान रहियौं, इनकूँ जीत लियौ हूँ, ऐसौ मत मान बैठियौं।

× × ×

तदेव करणीयं हि संविचार्य विवेकिना।
सद्धिराचरितं यत् स्यात् सर्वथा शास्त्रसम्मतम्॥

(अर्थात् विवेकी पुरुषको भलीभाँति विचार करके उसी कामको करना चहिए, जो शास्त्रसम्मत और सज्जनोंद्वारा आचरित हो।)

× × ×

समस्त सुकृतन कौ केवल एक ही फल है, श्रीसद्गुरुदेव (परब्रह्म परमात्मा)-में पूर्ण सात्त्विकी श्रद्धा है जानौं और लक्ष्य केवल श्रीभगवत्-प्रेम। सबरी आसक्ति केवल एक श्रीजीवनधनमें ही, क्योंकि इनकौ धाम, नाम, लीला, स्वरूप तथा प्रेमीजन आदिक श्रीभगवत्के समान ही हैं।

× × ×

प्रेम-प्राप्तिके ताँईं इनकौ अवलम्ब परम आवश्यक है। इसके ताँईं आवश्यक हौ कि उनमें श्रद्धा दृढ़ बनै। शास्त्र-वाक्य अथवा संत-वाक्यके आधार पै ही जीवन व्यतीत करै। श्रीभगवन्नाम-जपमें पूर्ण रुचि हौनीं चहिए। नामोच्चारण शुद्ध हौनौं चहिए। इतनौं अभ्यास बढ़ावै कि, जीभ सतत श्रीभगवत्-नाम रटती ही रहै। विनय-पत्रिकाकौ यह पद बड़े ही मर्म कौ है—

राम राम राम जीह जौलौं तू न जपिहै।
तौलौं, तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपिहै॥

× × ×

श्रीनाम जपिवे बारी जीभ कूँ संयमी बनावै। (अर्थात् श्रीनाम-जपके समय जिह्वापर अत्यन्त संयम रखना चहिए।) श्रीभगवान्‌नें जीभ कोमल बनाई है। अतएव जीभ सौं मृदुता कौ ही बर्ताव करै, काहु सौं कठोर शब्द न बोलै।

× × ×

श्रीभगवान्‌के एक स्वरूप कूँ इष्ट बनावै। इनमें अपनौं एक दृढ़ भाव बनावै। समस्त जीवन इष्टके ताँईं यही उत्कट लालसा बनैं कि, इष्टके प्रेममें डूबतौ रहूँ। श्रीब्रजभूमिमें ही रहनौं अर्थात् अपने इष्टकी भूमिमें ही रहनौं। श्रीब्रज सौं बाहिर कहूँ नहीं जानौं। ताहूमें जहाँ ताँईं बनै, श्रीगिरिराज भगवान्‌के सांनिध्यमें ही रहनौं। श्रीब्रजरज शरीरमें लगी ही रहै।

× × ×

स्वभाव अतिसरल बनै। रूक्षता **(रूखापन)** छू न जाय। कैसीहू परिस्थितिमें क्रोध नहीं करनौं। यदि कोई अपने पै क्रोध करै, तौ शान्ति सौं समझाय देनौं। कैसों हूँ अपनी साधुता भंग न हौन पावै।

× × ×

द्रव्य नहीं छूनौं, न कहूँ जमा करनौं। काम तथा क्रोधके भाव सौं काहू कूँ न देखनौं, न छूनौं, न सुननौं एवं न चिन्तन ही करनौं।

विकार बहुत ही प्रबल होयँ हैं। इनसौं बहुत ही सावधान रहनौं।

× × ×

चिन्तन बनै श्रीभगवत् सम्बन्ध सौं ही। लक्ष्य, कर्तव्य, सत्संग-वाक्य तथा श्रीभगवत्कृपा विशेषतया ये ही चिन्तनीय हैं और सबही साधु-संत सम्माननीय हैं।

× × ×

साधुके तीन महाबाधक हैं, यह समस्त संत-समाज कौ कहनौं हैं। हमें तीनन सौं पूरौ-पूरौ बचनौं है—

(१) स्त्री-जाति सौं कैसें हूँ सम्पर्क न रहै। (२) द्रव्य लैवे सौं बचै, जैसें बनै निर्वाह करिले। (३)मान, बड़ाई, पूजा, प्रतिष्ठा सौं सर्वथा बचै।—ये तीनौं सरल नहीं हैं। युगके देखते भये ये तीनौं महाप्रबल हैं। ताहू पै लोकेषणा तौ अत्यन्त प्रबल है ही। यासौं कोई काम यह उद्देश्य लै कैं न करैं कि, ऐसौ करिंगे, तौ हमारी ख्याति होयगी।

× × ×

श्रीभगवत्-नाम कौ अभ्यास बनावै कि, सतत नाम-जप होतौ ही रहै।

यह तौ सर्वमान्य बात है ही कि, या (इस) समय अध्यात्ममें चलिवौ अत्यन्त दुष्कर है, तथापि जिनने कृपा करिकैं अपनी श्री ब्रजभूमिमें बसाये हैं, ये ही सब सँभारते रहैंगें। यह दृढ़ विश्वास राखनौं। कठिन-सरल, इन दोऊ शब्दन पै बिचार करैं तौ, कठिन है जीवके ताँईं तथा सरल है सर्वसमर्थ श्रीभगवान्के ताँईं। श्रीभगवत् आश्रित जन कूँ सदैव श्रीप्राणनाथ कौ दृढ़ अवलम्ब राखनौं चहिए—

सबइ सुलभ जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल॥

× × ×

कुटिया नहीं बनानौं। शिष्य नहीं बनानौं! कोई पद नहीं लैनौं। अपने मन सौं नहीं, श्रीसद्गुरु आज्ञा सौं, जैसें बनै केवल दुलारे कन्हैयामें हीं प्रेम बढ़ानौं। यह माननौं कि यह काम तौ हम अपने श्रीसद्गुरु भगवान्की आज्ञा सौं करि रहे हैं। अपने बल सौं नहीं।

× × ×

अपने ही इष्टके रूपमें पूरी लगन, इनमें ही प्यार, इनकौ ही बार-बार चिन्तन। मायाके जाल सौं सर्वथा बचनौं। कन्हैयाँ कूँ ही सर्वस्व मान लैनौं तथा इनके ताँईं ही जीवन बनैं।

× × ×

जो कर्तव्य श्रीसद्गुरुदेवनें लिखे होयँ उनकौ पालन करनौं ही आराधना है। श्रीसद्गुरु भगवान्के सुझाये गये मार्ग सौं चलै तौ, धीरे-धीरे सब सुधरि जायगौ। यह विश्वास राखनौं कि, याही जीवनमें श्रीजीवनधनके प्रेममें डूबनौं है। अपनी ओर मत देखौ, चलौ इन वाक्यनके आधार पै ही।

× × ×

सात्त्विकी श्रद्धा ग्रहण करनी। यह देखते रहनौं कि, श्रद्धामें कमी तौ नायँ आय रही। श्रद्धामें बाधक है तर्क। श्रद्धामें सहायक है—श्रद्धावान्में श्रद्धा करनौं। बिना भजन किये श्रद्धा ठहर नहीं सकै। श्रद्धा कूँ पुष्ट करै है सदाचार।

× × ×

बहुत ही कम बोलनौं। प्रपंचन सौं सदाँ बचते रहनौं। परचर्चा कबहूँ नहीं करनीं। क्रोध कबहूँ नहीं करनौं और ***'सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा'*** अर्थात् स्वप्नमें भी दूसरोंके दोषपर ध्यान नहीं देना चहिए।

× × ×

प्रतिक्षण सावधान रहै कि, कोई इन्द्रिय कुमार्गमें न जान पावै। ब्यर्थ चिन्तन तथा बिषय चिन्तन सौं मन कूँ बचाते रहनौं। सद्बुद्धिके द्वारा मन कूँ समझाते रहनौं और सदैव ऊँचे बिचार तथा ऊँची क्रिया करते रहनौं चहिए।

× × ×

श्रद्धा—जो शास्त्रनमें लिख्यौ है, तथा जो संत-जन कहैं हैं, वाकूँ बिना सोचे-बिचारे ज्यौं-की-त्यौं मान लैनौं ही श्रद्धा है। सीधे शब्दनमें यौं समझनौं कि, अपनी बुद्धि सौं काम नहीं लैनौं।

× × ×

श्रद्धा ही तौ आध्यात्म कौ मूल है।

× × ×

सात्विकी श्रद्धामें तौ कछु और हू गहराई है। श्रद्धामें यह लोभ तऊ रहै है कि, हम यदि इनकी आज्ञा पै चलैंगे, तौ हमारौ परलोक सुधरैगौ। यामें स्वार्थकी कछु गन्ध है। किंतु सात्विकी श्रद्धामें तौ यहू नहीं रहै। वहाँ तौ केवल इतनौं ही भाव रहै है कि, हमें न लोक बनिवे सौं प्रयोजन न परलोक बनिवे की आशा। हम तौ अपनौं परम सौभाग्य याहीमें मानैं हैं कि, हमारे ताँईं इनकी आज्ञा तौ भई।

कलियुगमें श्रद्धा ही दुर्लभ है। ताहू पै सात्विकी श्रद्धा यदि उपज परै, तौ श्रीभगवान्की अपार कृपा समझ लैनी चहिए। तथापि बिना सात्विकी श्रद्धा भये जीव कौ परम-कल्याण सर्वथा अलभ्य ही है। यहाँ एक बिचारणीय बिषय यह है कि, सांसारिक बुद्धि श्रद्धाके समान अति उच्च वस्तु कूँ कैसें तौल पावैगी। जा काँटे पै लकरी या कोयला तोले जायँ हैं, वा काँटे पै चाँदी या सोनौ कैसें तुल सकै है। अतएव भगवती श्रीश्रद्धा

महारानी कूँ बहुत ही बचावै अपनी बुद्धिके तराजूमें तौलवे सौं। श्रद्धा यदि राखते बनै, तौ यह बढ़ती ही जाय है। श्रद्धा कौ अन्तिम फल है, श्रीभगवत् प्रेम या आत्मबोध। बहुत ही सावधानता राखै, श्रद्धा ऐसें जल्दी उड़ि जाय है, जैसें कपूर। या कारण श्रद्धा महारानी कूँ बहुत ही सँभारि कैं राखै।

× × ×

श्रद्धाके रोकिवेकी युक्ति—अत्यन्त आर्त है कैं, दौनौं हाथ बाँधि कैं, श्रीश्रद्धा महारानी सौं भीख माँगें। मेरी परम दयामयी माँ! जब तुम कृपा करिकैं या अधम जीवके अन्त:करणमें आयकैं विराजी हौ, तब इतनी कृपा और हूँ करौ कि, अब या अन्त:करण कूँ अपनौं निजी घर बनाय लेउ। साथ ही अपने योग्य या अन्त:करण कूँ सुधारि लेउ। मेरी परम दयामयी माँ! तात्पर्य इतनौं ही है कि, सर्वतोभाव सौं श्रीभगवती श्रद्धा महारानी कौ दृढ़ताके साथ अंचल पकरि लेय, फिर तौ यह दयालु मइया अपने लाल कूँ निरन्तर ऊपर ही उठाती रहैंगी तथा इनकूँ चैन तब मिलैगौ जब अपने लाल कूँ श्रीप्रियतमकी गोदमें बैठाय दैंगी। जाके कोटिन जन्मनके पुण्य उदय हौयँ हैं, वाहीके अन्त:करणमें सात्विकी श्रद्धा उपजै है, रुकै है, बढ़ै है और खूब बढ़ती ही जाय है तथा अतृप्तिकी भावना होय है। हाँ, यदि ये सबरी बातें लैनौं चाहै तौ, एक ही बात कौ अभ्यास करै कि—कहाँ मैं तुच्छ और कहाँ ये जिनसौं श्रद्धा प्राप्त भई। यही युक्ति है, श्रीश्रद्धा महारानीके रोकिवे की।

× × ×

श्रद्धावान्—जितेन्द्रिय बनै है, सौम्य होय है, शान्त होय है, गम्भीर होय है, नियम-पालक होय है तथा अपने कर्तव्य-पालनमें

परम-दृढ़ होय है। साथ ही दैन्यकी मूर्ति होय है। श्रद्धावान्में समस्त सद्गुण स्वयं आयकें निवास करैं हैं। श्रद्धावान् कौ पतन नहीं होय है। श्रद्धावान् कूँ अवश्य ही प्रेमी बननौं परैगौ।

× × ×

संयम

संयमके लिये इन बातनपर ध्यान राखनौं आवश्यक है—

वाणी—वाणी सदैव सँभारिकें बौलनौं। कहू अनुचित शब्द न निकरि जाय, ऐसौ ध्यान राखनौं। कम बोलनौं। सत्य, मृदु एवं हितकर वाक्य ही मुख सौं उच्चारण करनौं। कबहूँ-कैसीहूँ परिस्थितिमें काहूसौं कठोर बचन नहीं बोलनौं।

× × ×

दृष्टि—बहुत सँभारिकें दृष्टि उठानौं। कहूँ स्त्री आदिकन पै दृष्टि न परि जाय, ऐसी सँभार राखनी। बहुत ही आवश्यकता परिवे पै देखनौं। शनैः-शनैः आगे कौ मार्ग देखिकें तब दृष्टि उठानौं। मार्ग चलते समय इत-उतमें नहीं झाँकनौं।

× × ×

आहार—आहार उतनौं ही करनौं, जितनेमें उदर-पूर्ति है जाय। सात्त्विकी, हितकर, हलकौ, पाचक तथा जामें कम व्यय परै, ऐसौ ही आहार करनौं। शरीरकी रक्षाके ताँईं ही भोजन करनौं। जिह्वाके स्वादके विचार सौं कोई आहार नहीं करनौं। बहुत गर्म, भारी, उत्तेजक, अभक्ष्य तथा मादक वस्तु कबहूँ नहीं ग्रहण करनौं। भोजन करते समय विशेष सावधानी यह राखै कि, मनमें हूँ कोई दूषित बिचार नहीं आन पावै। सदैव पवित्र बिचारनकी गङ्गामें डूबते भये ही भोजन करनौं। भोजनके समय कबहूँ क्रोध नहीं करै, ऐसौ करिवे सौं भोजन कौ रस बनिवे की अपेक्षा बिष ही बनै है, जो शरीरमें नाना प्रकारकी विकृति पैदा करै है, साथ ही यासौं रक्त हू दूषित होय है। कबहूँ श्रीभगवत् असमर्पित आहार ग्रहण नहीं करनौं।

× × ×

श्रवण—श्रवणनसे प्रत्येक क्षण श्रीभगवत्-चरित्र सुननौं। संतनके चरित्र सुननौं। काहू की प्रशंसा होती होय, तौ सुननौं। काहूकी निन्दा नहीं सुननौं। अश्लील गाने नहीं सुनने। अपनी प्रशंसा नहीं सुननौं। जो पाप लगै है, परनिन्दा करिवेमें, वही पाप लगै है, अपनी प्रशंसा करिवेमें। जो पाप लगै है, परनिन्दा सुनिवेमें, वही पाप लगै है, अपनी प्रशंसा सुनिवेमें। हितकर वाक्य ही सुननौं। अनावश्यक श्रुति सौं बचिवेके ताँईं जोर-जोरसौं श्रीभगवत् नामोच्चारण करनौं।

× × ×

नेत्र—नेत्रन कौ ठीक संयम याही है कि उनसे भक्तनके चरित्र अवश्य पढ़नौं। श्रीभगवत्-चरित्र पढ़नौं। शिक्षाप्रद पुस्तक पढ़नौं। श्रीमानस रामायण नियम सौं पढ़नौं। अश्लील पोथी नहीं पढ़नौं। जा पोथीमें परनिन्दा लिखी होय, खण्डन लिख्यौ होय, ऐसी पोथी नहीं पढ़नौं। संतनके वाक्य अवश्य पढ़ने। संत, भक्त और श्रीभगवत्-विग्रहनके दर्शन अवश्य करने। कोई मनमें विकार उत्पन्न करिवे वारे अश्लील चित्र कबहूँ नहीं देखने।

× × ×

मन—मनमें विषय सम्बन्धी संकल्प न उठन पावैं। काहू कौ अनिष्ट चिन्तन न हौन पावै। जब-जब मनमें अनुचित संकल्प उठिवे लगैं, तब-तब श्रीभगवत्-कृपा कौ स्मरण करनौं कि—श्रीप्राणनाथने बड़ी कृपा करी कि, मोकूँ मनुष्य-जन्म दियौ, विद्याध्ययन करायौ, उत्तम संग दियौ और अब हमें चहिए कि, सदैव सावधान रहैं। कोई दूषित संकल्प मनमें न उठन पावै।

प्रत्युत सतत यही प्रयत्न करैं कि, मनमें इनकी अपार कृपा कौ चिन्तन होतौ रहै। अपने जीवनके सुधारके उपाय सोचते रहैं। हम सौं सबकौ हित ही होय, ऐसौ संकल्प बनाते रहैं। यह बार-बार देखते रहैं कि हमारी श्रद्धा शिथिल तौ नहीं होयवे लगी। हम अपने नियम ठीक-ठीक पालन करि रहे हैं या नहीं। मन सौं दूषित संकल्प उखारि फैंकै। इनके स्थानमें मैत्रीकी भावना भरतौ रहै। कठोरताके स्थानमें नम्रता एवं दया बढ़ातौ रहै। काहूके दोष देखिवेके स्थानमें गुण ही देखैं। सबकूँ सम्मान ही दैवैकी भावना भरतौ रहै। ऊँचे सौं ऊँचे संकल्प बनानौं तथा उनकूँ क्रिया रूपमें (व्यवहारमें) लानौं, यही तौ करनौं है।

× × ×

प्रत्येक साधक कूँ इन कौ सुधार करनौं परम-कर्तव्य है—

कर्मेन्द्रिय—हाथ, पावँ, वाणी, मूत्रेन्द्रिय और मल-विसर्जनेन्द्रिय—ये पाँचौ कर्मेन्द्रिय कही जायँ हैं। कारण कि, ये सब केवल काम ही करि सकैं हैं। इनकूँ भले-बुरे कौ ज्ञान नहीं हैं।

इनसौं ऊपर हैं—ज्ञानेन्द्रिय—आँख, नाँक, काँन, जिह्वा, त्वचा। ये पाँचौ समझ सौं काम लैयँ हैं। इनकूँ भले-बुरे कौ ज्ञान होय है, या कारण ज्ञानेन्द्रिय कही जायँ हैं। साधक कौ यही परम-कर्तव्य है कि, इन पाँचौन कूँ सतत शुभ काममें ही लगावै तथा इनकी सफलता समझै, श्रीभगवत्-सेवामें ही।

× × ×

हाथ सदैव सेवाके काममें लगाये राखै। कोई गिर परै, तौ वाके उठायवेमें हाथनकी सफलता समझै। यही तरसतौ रहै कि, अपने हाथन कूँ काहूके काममें लाय सकूँ। गुरुजननकी सेवामें ही हाथनकी सफलता समझै। श्रीठाकुरजीके मन्दिरमें हाथनके द्वारा कछु

सेवा करतौ रहै। हाथन सौं दीन-हीननकी सेवा करिवेमें हूँ संकोच न करै। हीनता न समझै। प्रत्युत यही भावना बनावै कि, आज ही तौ हाथनकी सफलता भई है। श्रीभागवतजीमें परम भागवत श्रीअम्बरीषजीकी जीवनीमें लिख्यौ है—

'करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु।'

अर्थात् अपने दौनौं हाथन सौं श्रीभगवान्के मन्दिर कूँ झारते-बुहारते। हाँ, यदि ये हाथ कहूँ भगवत्सेवा कौ सौभाग्य पाय जायँ, तौ इनकूँ बहुत सँभारि कै राखै।

यह भावना बनावै कि—ये हाथ अब श्रीभगवान्के है गये, अब इन हाथन सौं कोई अनुचित काम न हौन पावै अर्थात् सबकी सेवा करिवे सौं हीं हाथ पवित्र हौयँ हैं। विरक्तसाधक कामकी भावना सौं काहू कूँ न छूवै। क्रोधकी भावना सौं काहू कूँ धक्का न देय। मारै नहीं। खोटे काम करिवे कौ अवसर आवै, तब यही समझै कि, मेरे हाथ तौ टूटि गये हैं। हाँ, दीननकी सहायताके समय तथा श्रीभगवत्सेवाके समय अपने कूँ सहस्त्रबाहु कौ अनुभव करै।

हाथनकी शोभा तथा सौभाग्य है—पुण्य दान करिवेमें। दीननकी सहायता करिवेमें। गुरुजननकी तथा श्रीभगवत्सेवा करिवेमें। याहीमें श्रीप्राणनाथकी कृपा कौ अनुभव करै।

× × ×

साधुवेष धारण करिकैं पूरी साधुता पालन करै, तबही कल्याण सम्भव है। बोलिवेमें, समस्त क्रियानमें तथा मनमें हूँ पूरी साधुता रहै। काहू बहाने सौं, काहू प्रकार सौं, काहूकी अवज्ञा न करै। श्रीभगवत्-प्रेमके ताँईं ही जीवन तथा प्रेम-प्राप्तिके ताँईं ही पूर्ण प्रयत्न करनौं चहिए। यह अलभ्य वस्तु साधन-साध्य नहीं है, अपितु कृपासाध्य है। यह त्याग करि लिंगे, वैराग्य करि लिंगे,

तब प्रेम तौ है ही जायगौ। यह भावना उचित नहीं। अतः प्रेम-प्राप्तिके ताँईं काहू शास्त्र और संतमें प्रगाढ़ श्रद्धा करनी ही परैगी। जहाँ अपनौं दृढ़ विश्वास होय वहाँ काहू संतमें शीघ्रातिशीघ्र प्रगाढ़ श्रद्धा करि लेय। श्रद्धा ही साधक कूँ बनावै है। बनायवे कौ क्रम है—साधारण साधक, प्रौढ़ साधक।

× × ×

श्रीसद्गुरुमें साधारण बुद्धि नहीं करै। श्रीसद्गुरु तथा श्रीभगवान्‌में अभेद माननौं। यह दृढ़ भाव बनि जाय कि, मेरे कारण ही निराकार ब्रह्म साकार बने हैं। यदि विचार करिकैं देख्यौ जाय, तौ ज्ञान-वैराग्य एवं प्रेम-देव हू श्रद्धाके ही फल हैं। श्रद्धा जितनी आवश्यक है, उतनी ही महा अलभ्य हू है। यह शिथिल न बनन पावै। श्रद्धा कूँ दिन-व-दिन सुदृढ़ बनाते रहनौं ही तौ साधन है। स्वभावमें कठोरता न छू जाय। श्रीप्रेम-देव अत्यन्त मृदु हैं। अतएव इनके निवास स्थान हृदय कूँ अत्यन्त कोमल बनावै। सरल बनावै। सत्यता सौं परिपूर्ण बनावै। कोई बिकार हृदयमें रहन ही न पावै। यह मानैं हैं कि—ये काम जीवके ताँईं सुगम नहीं हैं। तथापि, ये हैं परम-आवश्यक। प्रेम- प्राप्तिके इच्छुक कूँ हृदय अति निर्मल एवं अति सरल बनानौं ही परैगौ। उपाय केवल एक ही है—श्रद्धामें दृढ़ता, सत्यता तथा पूरी तत्परता। यदि काहू साधकने श्रद्धा दृढ़ बनाय लई तौ, आगेकी समस्त उपलब्धियाँ सरल है जायँगी। साँची श्रद्धा होयवे पै अपने विचार बंद है जायँ हैं। रह जाय है, केवल शास्त्र और संत आज्ञा। तब पाप बनि ही नहीं सकैं। कारण स्पष्ट है, जो करैगौ शास्त्र और संतकी आज्ञा सौं ही। तब उत्थान-ही-उत्थान।

× × ×

कटुता कौ सर्वथा अभाव। इतने बड़े संसारमें अपनौं एक हू शत्रु न बनै। न कहूँ आसक्ति, न काहू सौं विरोध। एक ही ईश्वरकी संतान होयवे सौं सबही अपने बन्धु ही हैं, क्योंकि **'मित्रस्य दृष्ट्या समीक्षामहे'**—यह वेदभगवान्‌की आज्ञा है। श्रीपरिक्रमाकी रज सदैव शरीरमें लगी ही रहै। दूसरौ तुम्हारी निन्दा भले ही करै, पर तुम काहूकी निन्दा कबहूँ मत करौ। कोई तुम्हारी हानि भले ही करै, पर तुम काहूकी हानि कबहूँ मत करौ। कोई तुम्हारौ अपमान करै, तौ तुम सह लेउ, पर तुम काहू कौ अपमान कबहूँ मत करौ, न कबहूँ क्रोध करौ। (क्योंकि तप एवं यज्ञादिकोंमें जो भी दान दिया जाता है, क्रोध उन सबका हरण कर लेता है। इसलिये कभी भी क्रोध नहीं करना चहिए।) शास्त्रनमें लिख्यौ भी है—

तपते यज्ञते चैव यच्च दानं प्रयच्छति।
क्रोधस्तु सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत्॥

सहनशीलता सौं तप बढ़ै है। व्यर्थ चिन्तन न हौन पावै। श्रीभगवत्‌के सम्बन्धमें ही बोलनौं-सुननौं तथा चिन्तन करनौं। श्रीगीताजी (१२।८)-में भगवान्‌ने स्वयं कह्यौ है—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

हम अपने मार्गमें ठीक चल रहे हैं, यह तब समझनौं, जब अपनौं स्वभाव दिन-व-दिन सरल बनतौ जाय। अति उत्तम बनतौ जाय।

एक वाक्य मिल्यौ—

हैं जितनी बातें दुनियाँ की, सब भूल गये कछु याद नहीं।

अपनेमें दुर्गुण बढ़ानौं पशुता लानौं हैं।

एवमेव अपनेमें सद्गुण बढ़ानौ दिव्यता लानौं हैं।

या समय भले ही कोई युग वर्त रह्यौ होय, तथापि अपने कूँ तौ सदैव सतयुगमें ही राखनौं हैं।

× × ×

'मय्येव मन आधत्स्व'—की व्याख्या है, श्रीकृष्णभगवान्के कहवे कौ आशय है कि, मन कौ काम ही है संकल्प बनानौ। अब तुम ऐसौ अभ्यास बनाऔ कि, जब मनमें संकल्प उठैं, वे सबरे केवल मेरे ताँईं ही उठैं। कल्पना करौ कि, मोकूँ श्रीप्राणनाथके दर्शन हौयँगे। मैं इनके श्रीचरणनमें गिर परूँगौ, रोऊँगौ, ये मोकूँ उठामिंगे, पुचकारिंगे, प्यार करिंगे, अपने पीताम्बर सौं आँसू पौछिंगे, मैं धन्य बनि जाऊँगौ, मैं मरिकैं नित्य लीलामें पहुँचि जाऊँगौ, वहाँ मोकूँ इनकी सेवा प्राप्त होयगी, मैं सेवा करूँगौ। जहाँ ये खेलिंगे, मैं वा स्थल कूँ स्वच्छ करि दियौ करूँगौ। ये शयन करिंगे, मैं पंखा करतौ रहुँगौ। आदि-आदि। श्रीभगवान्के ताँईं करी गई कल्पना असत्य होते भये हू परम सत्य बनि जाय है। श्रीगंगाजीमें कैसौ हू पानी परै, वह सब श्रीगंगाजल ही बनि जाय है। एवमेव कल्पना हूँ सत्य ही बनि जाय है।

'मय्येव मन आधत्स्व'—या महावाक्य कौ पालन बनै कि, मनके समस्त संकल्प केवल श्रीप्रियतमके ताँईं ही बनिवे लगे, तब यह तौ निश्चय है ही गयौ कि, यह मन अब श्रीभगवान् कौ बनि गयौ। तब भगवत्-वस्तु श्रीभगवान्के ही काममें आवै, यह नियम उपासनामें है ही। मन्दिरमें जो धातुके पात्र श्रीठाकुरजीकी सेवामें रहैं हैं, उनकूँ अपने काममें नहीं लै सकैं हैं। तब-जबकि यह मन इनकी वस्तु बनि गयौ। तब अपने ताँईं कछु संकल्प नहीं बनाय सकै। अपनौ तौ जो कछु होयगौ, वह शरीरके प्रारब्धके अनुसार होतौ ही रहैगौ। याकी ओर ध्यान ही

नहीं दैनौं। निरन्तर श्रीप्राणनाथके चिन्तन कौ ही अभ्यास बनावै। न अपने ताँईं संकल्प ही बनावै और न संसारकी ओर ध्यान ही देय।

'बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥'

प्रवाही सृष्टिमें उथल-पुथल होती ही रहै है। हाँ, हमें तौ अपने जीवनधन सौं काम है। अपने सबरे संकल्प इनके ताँईं। शरीरकी सबरी चेष्टायें इनके ताँईं। खान, पान, शयन तथा समस्त व्यवहार केवल इनके ताँईं ही हौयँ। जैसैं पतिव्रता कौ जीवन केवल अपने पतिके ताँईं ही रहै है। एवमेव अपने समस्त क्रिया-कलाप हूँ केवल अपने श्रीप्राणनाथके ताँईं ही हौयँ। यहाँतक कि, जीनौं हूँ इनके ताँईं तथा मरनौं हूँ इनके ही ताँईं। शरीरमें, इन्द्रियनमें तथा मनमें केवल इनकौं-ही-इनकौं अखण्ड साम्राज्य होय। अब—

'मयि बुद्धिं निवेशय'—कौ अर्थ है कि, अपनी बुद्धि कूँ मोमें लगाय दे। बुद्धि कौ काम है निर्णय करनौं। यह करनौं आवश्यक है, यह अति आवश्यक है और यह अनावश्यक है। बुद्धि कौ यही काम है। तब बुद्धि सौं हूँ काम लेय मेरे ताँईं ही। बार-बार बुद्धि यही निर्णय करै कि—

'हमें चहिएँ केवल एक भगवान्'

—ये मेरे, मैं केवल इनकौ, बस बार-बार याही पाठ कूँ फेरतौ रहै और कोई लौकिक कामना न बनन पावै। जब कोई कामना उठै तब केवल इनके ही ताँईं।

परम पूज्य, परम श्रद्धेय श्रीपण्डितजी महाराजके एक निकटस्थ जननें अपने परम पूज्य श्रीपण्डितजी सौं प्रार्थना करी कि आप हमें श्रीमद्भागवतपुराणके कोई सात श्लोक जो आपकूँ परम-प्रिय हौयँ, लिखकैं देउ। अपने प्रियजनकी प्रार्थना पै ये

श्लोक पूज्यपाद श्रीपण्डितजी महाराजने लिखकैं दिये—

स्तुति—

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥

ब्राह्मण कौ कर्तव्य—

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च॥

(श्रीमद्भा० ११। १७। ४२)

यह ब्राह्मण (द्विज) कौ शरीर तुच्छ विषय भोगिवेके ताँईं नहीं हैं। या उत्तम शरीर कूँ पायकैं संयम-पालन करते भये तप कर लैनौं चहिए। तब ही तौ मृत्युके पीछैं मोक्ष प्राप्त है सकै है। वास्तवमें या शरीरकी सफलता तौ तब ही मानी जायगी, जब मोक्ष प्राप्त करि लेयगौ।

(ब्राह्मण (द्विज)-मात्र कौ परम कर्तव्य है कि या श्लोकके कथनानुसार अपनौ जीवन बनावै)

महत्सेवा—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥

(श्रीमद्भा० ५। ५। २)

महत्सेवा मुक्ति कौ द्वार है अर्थात् मोक्षकी सड़क है और विषयी प्राणीन कौ संग नरक कौ द्वार है। अब महत्के लक्षण वर्णन करैं हैं। महत् वे हैं—जो समचित्त हैं—अर्थात् सुख-दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि आदिकमें एकरस रहैं हैं, जो शत्रु-मित्रमें भेद नहीं राखैं हैं, जो सदा शान्त रहैं हैं, जो कबहूँ क्रोध नहीं करैं हैं, जो सबमें मैत्रीभाव राखैं हैं तथा जो सदाचारी हैं। वे ही महत् (महात्मा) हैं।

महतनकी महिमा—

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद् वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥

(श्रीमद्भा० ५। १२। १२)

श्रीजड़भरतजी राजा रहूगण कूँ समझाय रहे हैं कि, 'हे रहूगण! वा परम तत्त्व कूँ (जाकूँ ज्ञान कहैं हैं, वासुदेव कहैं हैं) वही पाय सकै है, जो महतनकी श्रीचरण-रजमें अपनौं अभिषेक करै है। जब ताँईं यह उपाय ग्रहण नहीं करैगौ, वह परम तत्त्व हाथ नहीं लगि सकै है। चाहैं भले ही कठिन-सौं-कठिन तपस्या करि लेय। चाहैं बड़े-सौं-बड़े यज्ञ कर लेय। चाहैं बड़ौ भारी वैरागी बनि जाय। चाहैं पूरौ ग्रहस्थ बनिकैं देखि लेय। चाहैं वेद-पाठ करि लेय। चाहैं जलकी उपासना करि लेय। चाहैं अग्निकी उपासना करि लेय। चाहैं सूर्यदेवकी उपासना करै। इनमें सौं एक हू प्रयत्न तत्त्वकी प्राप्तिमें सहायक नहीं है सकै। केवल एक ही प्रयत्न है कि, महत्-जननके श्रीचरणनकी रज कूँ अपने माथे पै श्रद्धापूर्वक धारण करै, बस।

परम-धाम कौ अधिकारी वही है, जामें ये लक्षण हौयँ—

शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः।
यान्त्यञ्जसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः॥

जो शान्त हौयँ (जामें चंचलता न होय)। जो समदर्शी हौयँ—(सबकूँ एक दृष्टि सौं देखते हौयँ) अर्थात् (काहू कूँ शत्रु, मित्र न बनाते हौयँ) जो शरीर सौं तथा मनसौं सर्वथा शुद्ध हौयँ। जो प्राणिमात्र कूँ प्रसन्न करनौं चाहते हौयँ (अर्थात् काहू कूँ कष्ट न पहुँचाते हौयँ) तथा श्रीभगवत्-भक्तन कूँ अपनौं सग्यौ भाई मानते हौयँ। ऐसे जो भाग्यशाली साधक हैं, वे अनायास ही परम धाममें पहुँचि जायँ हैं।

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति॥

(श्रीमद्भा० ४। ११। १३)

जामें ये श्रीसद्गुण हौयँ हैं, वापै श्रीभगवान् सदा प्रसन्न रहैं हैं।—

दु:ख-कष्ट, विपत्ति,सर्दी तथा गर्मी आदिके सहवेकी शक्ति, दया, सबसौं मैत्री, समता—ये सब सद्गुण जामें हौयँ, वही श्रीप्राणनाथ कूँ प्रसन्न करि सकै है।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १६)

श्रीप्राणनाथ स्वयं अपने श्रीमुख सौं भक्तकी प्रशंसा करि रहे हैं—'हे उद्धव! मैं ऐसे भक्तके पीछैं-पीछैं सदैव चलतौ रहूँ हूँ, जामें ऐसे लक्षण हौयँ हैं—निरपेक्ष=जो काहूसौं कछु लैवेकी कामना ही नहीं करतौ होय। मुनि=जो मननशील होय। कैसी हू परिस्थितिमें जाकी शान्ति भंग न होय। निर्वैर=जो काहू सौं बैर न करतौ होय। समदर्शन=जो सबकूँ एक समान देखतौ होय (यह अपनौं है, यह परायौ है, यह शत्रु है, यह मित्र है, ऐसौ भेद-भाव जाके मनमें न होय)।

—ऐसे लक्षण वारे भक्तके पीछैं-पीछैं मैं या लोभ सौं डोलतौ रहूँ हूँ कि, याके श्रीचरणनकी रज उड़िकैं मेरे ऊपर परि जायगी, तौं मैं पवित्र है जाऊँगौ।

× × ×

साधकके ताँईं—

बचनौं होय तौ बचै स्त्री सौं

और—

भिड़नौं होय तौ भिड़ै सन्त सौं।

प्रतिक्षण सावधानता ही सर्वोत्तम साधन है। साधक सदैव विधर्म सौं बचै। साधककी प्रत्येक चेष्टा श्रीभगवत्प्रीत्यर्थ ही होय। साधक तर्क-वितर्क न करै। साधक जो कछु करै, सब अपने साधनके ताँईं ही करै। दृढ़ श्रद्धा, दैन्य, निष्कामता, आत्मीयता, अपनौं अस्तित्व मिटानौं—ये पाँच उत्थानके सूत्र हैं। अपनी प्रतिज्ञा कौ पालन, नियमनमें दृढ़ता और श्रीभगवान् कौ भरोसौ मनुष्य कूँ सब प्रकारकी आपत्तिन सौं बचाय लेय है। नियमनमें बँधि जानौं, यही साधक कौ परम-कर्तव्य है।

× × ×

श्रीभगवत्कृपाराज्यमें कछु हू असम्भव नहीं—

'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥'

इतनी भारी कृपाकी सार्थकता तब, जब लक्ष्य केवल श्रीभगवत्प्रेम बनैं। यह अलभ्य प्रेम मिलै कैसें? याके ताँईं जीवनभर पूरी तत्परता सौं प्रयत्न करते रहनौं। अन्य कामना या वासना न बनन पावैं।

यह ध्यान राखनौं कि, प्रेम अति ही कोमल वस्तु है, अतएव इनके विराजिवेके ताँईं हृदय कूँ अति ही मृदु बनानौं परैगौ—स्वभाव अति ही सरल बनै। वाणीमें कटुता छू न जाय। दृष्टिमें अति सरसता रहै। पवित्रतम वस्तुके ताँईं पवित्रतम बनिवे कौ पूरौ प्रयास करते रहनौं।

तपोमय जीवन—

'भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥'

केवल प्रेमकी ही कामना, लालसा एवं वासना बनै। रहनी अति ही उत्तम बनै। एक ही दोहामें श्रीतुलसीदासजीने सबरी रहनी भरि दई है। बड़े ही काम कौ है यह दोहा—

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार॥

× × ×

श्री ब्रजभूमि प्रेममयी है। श्री ब्रजरज प्रेम प्रदाता है। शरीरमें श्री ब्रजरज लगी ही रहै। यह निश्चय करि लेय कि, मेरौ प्रेम-पथमें नूतन जन्म भयौ है। अपनौं शरीर तथा संसार हू प्रेमके ही ताँईं बनैं। श्रीजीवनधनके प्रसन्न करिवेके ताँईं, इनकूँ सुख पहुँचायवेके ताँईं, प्रयत्न करनौं प्रेम ही है।

याके ताँईं उपाय सुझायौ है, श्रीमद्भागवतजीने—

'प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् बिडम्बनम्।'

श्रीभगवान् प्रसन्न हौयँ हैं निष्काम भक्ति सौं। और तौ सब व्यर्थ ही है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने याही कौ अनुवाद कियौ—

'रीझत राम सनेह निसोते।'

अतएव लक्ष्य बनै केवल श्रीभगवत्-प्रेम ही। है तौ अति दुर्लभ वस्तु, तथापि श्रीजीवनधनके अनुग्रह सौं यदि कोई सच्चौ प्रेमी संत मिलि जाय, तौ वामें पूरी श्रद्धा करै। वाकौ ध्यान करै। ***जगते रहु छत्तीस ह्वै, राम चरण छः तीन।*** जो उत्साह, जो लालसा, आज है, यह शिथिल न परै, अपितु आयुके साथ-साथ यहू बढ़ते ही जायँ।

या पथमें अति आवश्यक हैं ११ बातें— श्रद्धा, निरभिमानता, नम्रता, उदारता, क्षमा, प्रपंचराहित्य, सरलता, विकारन कौ अभाव, स्वभाव-संशोधन, सतत सावधानता तथा महदनुग्रहकी आकांक्षा।

या पथ मैं बाधक हैं ११ बातें— तर्क, रूक्षता, प्रपंच,स्त्री, बालक, द्रव्य एवं वैभव, भोग्य, कायरता, उत्साह-हीनता, अकर्मण्यता तथा स्वभावमें चंचलता।

चिन्तनमें— इनकी कृपा कौ चिन्तन। अपने साधन कौ चिन्तन। अपनी रहनी कौ चिन्तन। अपने स्वभाव कौ चिन्तन तथा सतत चिन्तन अपने लक्ष्य कौ।

× × ×

जीवनमें सादगी रहै। समस्त साधु-समाज कूँ सम्मान ही दे। व्यर्थ बात, परचर्चा, परनिन्दा तथा विवाद न करै। कम बोलै, भगवच्चर्चा ही करै। अध्यात्म-पथमें परम-कर्तव्य है—श्रद्धावान् बननौं। कोटिन जन्मनके सुकृतनकौ फल है—सात्त्विकी श्रद्धाकी उपज। यदि उत्थान चाहै, तौ पूर्ण प्रण सौं श्रद्धा कूँ अपनावै। सात्त्विकी श्रद्धा ही साधन तथा साध्य कौ मूल है। श्रीप्राणनाथकी अपार दैन है सात्त्विकी श्रद्धा। श्रद्धालुकौ पतन नहीं होय है। श्रद्धालु कौ जीवन एक आदर्श जीवन होय है। सात्त्विकी श्रद्धामें स्वार्थकी गन्ध हू नहीं रहै है। पूरी तत्परता सौं श्रीसद्गुरुकौ आज्ञा-पालन करनौं, यही श्रद्धा है।

श्रीगुरु-आज्ञामें ही अपनौं परम सौभाग्य माननौं, अपने जीवनकी सफलता मान लैनौं, यह सात्त्विकी श्रद्धा है।

श्रद्धामें सहायक हैं— श्रद्धालु जनन कौ सम्पर्क। श्रद्धालु जननमें श्रद्धा करनौं। श्रद्धालु जनन कूँ अपने सौं बहुत अधिक माननौं। इनमें भाव राखनौं। इनकौ अनुयायी बननौं। इनकूँ अपनौं पथ-प्रदर्शक माननौं आदि-आदि। श्रद्धामें भयंकर विघ्न है, अपनी बुद्धि सौं काम लैनौं। हमारी श्रद्धा ठीक-ठीक चलि रही है, याकी परीक्षा है—श्रद्धा बढ़ती ही जाय।

तब समझौ कि, हम आध्यात्ममें प्रवेश करि रहे हैं जब—

सात्त्विकी-श्रद्धा बढ़ती ही जाय, अतृप्ति होय, दैन्य उपजै। सात्त्विकी श्रद्धा जा अन्त:करणमें रुकि जाय है, वहाँ समस्त सद्गुण स्वयं आयकैं निवास करैं हैं।

श्रद्धा करै। श्रद्धा ही विचारै। श्रद्धा कूँ सँभारतौ रहै। श्रद्धाके रुकिवेकी तथा बढ़िवेकी युक्ति सोचतौ रहै।

अबोध शिशुकी भाँति निरन्तर अपनी श्रद्धा महतारीकी गोदमें ही निश्चिन्त है कैं खेलतौ-किलकतौ रहै। फिर तौ यह श्रद्धा माँ अपने लाढ़िलेकी ऐसैं सँभार करैं हैं जैसैं—

'जिमि बालक राखइ महतारी॥'

श्रीश्रद्धा महारानीके रोकिवेके ताँईं सहज युक्ति है—साधनमें निष्ठा। श्रद्धा—साधनमें लगावै है और साधन—श्रद्धा रोकिवेकी पात्रता प्रदान करै है। यदि साधक साधनमें प्रमाद करिवे लगै, तौ श्रद्धा महारानी भागि जायँगी।

सात्त्विकी श्रद्धा जाके अन्तःकरणमें रुकि जायगी, वह साधनमें पूर्ण तत्पर रहैगौ तथा पूर्ण सदाचारी बनैगौ। श्रद्धा, साधन तथा सदाचार—यह त्रिपुटी कही जाय है, ये तीन्यौं अन्योन्याश्रित हैं। यथा आरोग्य प्राप्तिके ताँईं—अनूपान, औषधि तथा पथ्य—ये तीन्यौं एक साथ काममें आवैं हैं। इनमें एककी कमी हौंते ही वे दौनौं ही व्यर्थ है जायँ हैं। ठीक ऐसें ही आध्यात्मपथमें त्रिपुटी एक साथ रहनी चहिए। तब ही पूर्ण लाभ होय है। एक ही वाक्यमें यह समझ लेनौं चहिए कि, जो तीन्यौं एक साथ लैकैं चलै है, वास्तवमें वही साधक कह्यौ जाय सकै है।

साधनमें सहायक हैं—सात्त्विकी श्रद्धा। पूर्ण सदाचार। निरभिमानता। दीनता। निष्कामता (भजन करिकैं भजन ही माँगनौं, कोई संसारी पदार्थ नहीं माँगनौं)। श्रीगुरुजननकी सेवा। दीननकी सहायता। महत्-कृपा। समय कौ सदुपयोग। सद्ग्रन्थ। सत्संग आदिक।

साधकके ताँईं परम आवश्यक हैं—दृष्टि-संयम। कम बोलनौं। आवश्यक ही सुननौं। सात्त्विक, मित आहार। विचार-

संयम। समय कौ सदुपयोग। स्वभावमें गम्भीरता। क्षमा। सरलता। उदारता। सहिष्णुता आदि-आदि।

विरक्त होय, तौ स्त्री जाति-मात्र सौं और गृहस्थ होय, तौ परस्त्री-मात्र सौं कैसें हूँ सम्पर्क न राखै।

बार-बार स्मरण करै—श्रीचैतन्य भगवान्‌की शिक्षा श्रीहरिदासजीके प्रति। श्रीसमर्थजीकी शिक्षा अपने एक सेवकके प्रति। श्रीरामचरितमानसमें। श्रीरघुनाथजीकी शिक्षा श्रीनारदजीके प्रति—

श्रीभागवतजीकी आज्ञा है कि, परस्त्री कूँ अपनी मृत्यु ही देखै। रावण, कीचककी घटनाएँ आदि-आदि। अपनी साधना कौ अभिमान न करि बैठै। संतनकी जीवनी अवश्य पढ़ै। अपने स्वभाव कूँ सुधारतौ ही रहै। अपने दुर्गुणनके हटायवेमें विलम्ब न करै।

× × ×

द्वै बातन कौ अभ्यास बढ़ावै—श्रीनाम-जप निरन्तर होतौ रहै। निरन्तर अपने आचरण कौ सुधार। इन दोऊ बातनमें प्रमाद न हौंन पावै। सर्वथा परस्त्री, परद्रव्य कौ परित्याग। या बात कौ बहुत ही खयाल रहै कि, हमसौं काहू कौ अनिष्ट न हौंन पावै। जब तुम गृहस्थ हौ, तौ गृहके समस्त प्राणिन कौ पालन-पोषण, सन्मार्गमें लगानौं तथा श्रीभगवत्-भक्त बनानौं—यह कर्तव्य है। सत्-प्रयत्नद्वारा द्रव्य संचय करनौं गृहस्थ कौ यहू कर्तव्य है। हाँ, यह सब करते भये हू इनमें ही आसक्त न है जानौ। संत श्रीकबीरदासजी कौ यह पद सदैव ध्यान राखनौं कि—

'रहना नहिं देस बिराना है।'

जैसें योग्य डाक्टर अपने अस्पतालमें आये भये रोगीनकी आरोग्यता कौ पूरौ खयाल राखै है, अपनौं पूर्ण कर्तव्य हू पालन करै है, किंतु काहू रोगीमें आसक्त नहीं होय है। एवमेव—रहनी बनावै। जानैं इतनौं बड़ौ संसार रच्यौ है, वह याके पालन-

पोषणमें पूर्ण-समर्थ है। तुम तौ निमित्तमात्र हौ। उचित यह है कि,संसारी वस्तुन कूँ प्रारब्धकी दैन समझि कैं इनके यथालाभमें ही सन्तोष करै। हाँ, पूर्ण प्रयत्न करै अपने सच्चे घरके ताँईं सामान जुटायवेमें। सच्चौ घर तौ सदैव एक ही है—परलोक। जो समस्त जीवन अपने समय, विद्या, चातुर्य, शरीर तथा सबरे अन्त:करण कूँ संसारी कामनमें ही जुटाय कैं थकाय डारैं हैं, वे परलोकके सुधार सौं वंचित ही रह जायँ हैं। सबके प्यारे, सबसौं न्यारे, ऐसी रहनी रहिये। परलोकके सुधार कूँ आगेके ताँईं मत टालते जइयौं। कौन जानैं भविष्यमें कैसौ समय आवै। यासौं आज ही सौं पूर्ण तत्परता, पूर्ण लगन, पूर्ण उत्साह तथा पूर्ण उल्लास सौं जुटि परौ जीवनकी सफलतामें।

हमारे कहवे कौ यह तात्पर्य कबहूँ नहीं कि, घरके जीवन कौ पालन-पोषण न करै—यद्वा घर त्याग कैं दिखाऊ विरक्त बनि जाय, नहीं-नहीं, कदापि नहीं। जब ताँईं, भोग्य है, रहै गृहस्थमें ही, किंतु—अपने पूर्व जन्मनकी कमाई संसारी कामनमें ही खर्च न करि डारै। परदोष-दर्शन, परनिन्दा, द्रोह, कठोरता तथा हिंसा इनकौ सर्वथा परित्याग करि देय। जब संसारी काम करै, तौ पूरी लगन सौं जुटि परै है, ऐसैं ही जब भजनमें लगै, तब पूरे उल्लास सौं याहूमें जुटि परै। ईमानदारी तौ तब है, जब भजनमें १०० गुनौं उत्साह अधिक होय।

श्रद्धावान्, गम्भीर, सरल, पूर्ण सदाचारी, सुशील, नम्र, गुरुजन-सेवी, दीन-सहायक, परोपकारी, उदार एवं क्षमाशील बनिवे कौ अभ्यास बढ़ावै।

× × ×

श्रीजीवनधनमें प्रेम बढ़ायवे कौ पूर्ण प्रयत्न करतौ रहै, इनसौं कबहूँ काम न करबावै। ये तौ केवल आत्मीयता तथा प्रियताके ही पात्र हैं। परम-कल्याणके ताँईं जीवनमें दो बातैं परम-कर्तव्य हैं—सुख-दु:ख, लाभ-हानि, मान-अपमान तथा संयोग-वियोग आदिक द्वन्द्व जो आय जायँ उनकूँ सहतौ जायँ। हाँ, आगेके ताँईं अपनौं मार्ग परिमार्जित तथा उज्ज्वल बनातौ जाय। कैसी हू परिस्थिति आय जाय, परंतु परस्परमें वैमनश्यता न हौंन पावै। यदि नैकहूँ अवकाश मिलै, तौ भजन करिवेमें न चूकै। या जीवन कूँ अधिक झंझटनमें न फँसावै।

× × ×

उतनौं ही काम बढ़ावै जामें—शान्ति रहै, पाप न करनौं परै, छल न करनौं परै, दूसरेकी जीविका न हरनी परै। स्वभावमें विकार न बढ़न पावैं और भजनमें बाधा न परै। अधिक लाभ-हानिकी सम्भावना न हौय। यही विचारतौ रहै तथा पूर्ण प्रयत्न करतौ रहै कि, याही जीवनमें भजन बनि जाय। व्यर्थ बोलनौं, व्यर्थ देखनौं, व्यर्थ सुननौं तथा व्यर्थ विचारनौं—इन चारौं व्यर्थन सौं साधक कूँ सदैव बचनौं चहिए। यदि साधक या उपदेशामृतके पालनमें दृढ़ प्रतिज्ञ है जाय, तौ लोक तथा परलोक सहजमें ही सुधारि जायँ।

× × ×

सद्वाक्य-पालनकी विधिपर अधिक ध्यान राखनौं—प्रथम सद्वाक्य कूँ पढ़ै यद्वा सुनै तत्पश्चात् बिचार करै। फिर क्रमश: शनै:-शनै: धारणामें लावै। तदनु शुभ अवसरमें पालन करिवेकी प्रतिज्ञा करै। प्राण-पण सौं पालन करिवेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करि डारै तथा वा प्रतिज्ञा कूँ पूर्ण प्रयत्न सौं पालन करै। शुभ अवसर है—श्रीराम-नवमी, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, मार्गशीर्ष-शुक्ला पञ्चमी, माघ-शुक्लामें श्रीगुरुवार तथा कार्तिक-शुक्ला षष्ठी।

× × ×

परम-कल्याण कौ मार्ग हौं—श्रीसद्गुरु भगवान्में पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण भगवत्-भाव। किंतु अन्य महात्मनमें अवज्ञा बुद्धि न होय और अपने इष्टमें पूर्ण भाव होय। इष्ट कौ भजन, पूजन, वन्दन, प्रार्थना, ध्यान तथा सांनिध्य बढ़ातौ ही जाय। इनसौं प्रेम करिवे कौ अभ्यास करै। आत्मीयता कौ अनुभव करै। उत्तम प्रकार तौ यही है कि, इनके ताँईं अपनौं सर्वस्व-समर्पण करतौ जाय। इनसौं कछु इच्छा न करै। तथापि यदि कछु याचना ही करनी परै, तौ इनसौं ही करै। अन्य साधकनके श्रीभगवान् तथा हमारे श्रीभगवान् सब एक ही हैं। ऐसौ भाव राखनौं। श्रीभगवान्के काहू स्वरूपमें तिरस्कार बुद्धि न हौन पावै। एक ही श्रीभगवान्के ये सब स्वरूप हैं, ऐसौ विचार राखै। काहू भावुकके भावमें भूलिकैं हूँ साधारण भाव न लावै। दूसरेके भजनमें सहायता करनौं,यह सर्वोत्तम पुण्य है। काहूके साधनकी आलोचना न करै। एक ही श्रीभगवान्की प्राप्तिके ताँईं अनेकन मार्ग हैं। श्रीभगवत्-प्राप्ति सबकूँ है सकै है, यही विचार राखनौं। महत्-अपराध सौं बहुत ही बचतौ रहै। जो भावुक श्रीभगवान्के जा रूपकी भावना करै है, अवसर आयवे पै श्रीभगवान् वा भावुकके ताँईं वाही रूप सौं दर्शन दैयँ हैं। यह सिद्धान्त है—

यद् यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत् तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भा० ३। ९। ११)

× × ×

श्रीभगवत्के विषयमें कबहूँ विवाद न करै। समय, द्रव्य, शरीर, इन्द्रिय, परिकर तथा अन्तःकरण—इन सबनकूँ क्रमशः श्रीभगवत्की ओर ही झुकामतौ रहै। इन सबनकी सार्थकता याहीमें है। जहाँ-जहाँ अपनौं मोह होय, उन सबनकूँ श्रीभगवत्में

समर्पण करतौ जाय। इनसौं (प्रभुसौं) यही कहतौ रहै—**'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'** यह महावाक्य साधकके बड़े ही काम कौ है—***'सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।'*** श्रीप्राणनाथ सौं सम्बन्ध जोरि लैनौं, यही बड़ी भारी बुद्धिमत्ता है। साधक कौ परम-कर्तव्य यही है कि, शीघ्रातिशीघ्र श्रीजीवनधन सौं कोई सम्बन्ध निश्चित करि डारै। माता-पिता आदिक गुरुजननमें श्रद्धा राखै। इनकी आज्ञा-पालन करै तथा इनकी सेवामें अपनौं परम सौभाग्य मानैं। ***'जननी सम जानहिं परनारी'***—या महावाक्यके पालन कौ बहुत ही ध्यान राखै। अपनी सौं बड़ी अवस्था बारीनमें मातृभाव। बराबर बारीनमें भगिनीभाव तथा छोटीनमें पुत्रीभाव सौं सदैव बर्ताव राखै। परस्त्री-स्पर्श महापाप समझै। चालीस वर्षकी अवस्था सौं पीछें ब्रह्मचर्यके पालन कौ अधिक विचार राखै।

× × ×

गृहस्थके ताँईं निर्देश है—अत्यन्त परिश्रम सौं, छल-कपट-रहित शुद्धतापूर्वक कमाये भये अन्न सौं ही अपनौं तथा अपने कुटुम्ब कौ पालन करै। शुद्ध अन्न सौं शुद्ध मन बनै है। अपनी कमाई कौ भरोसौ राखै। परद्रव्य सौं सर्वथा बचतौ ही रहै। अपने कुटुम्बिन सौं स्वधर्म-पालन करातौ रहै।

समझाय कैं, शास्त्रनकी बातनसे, जैसें बनै अपने जनन सौं श्रीभगवत्-आराधना अवश्य ही करातौ रहै। दैवे कौ ही विचार राखै, लैवे कौ कम। सेवा करिवे कौ ही विचार राखै, सेवा लैवे कौ कम। सन्मान दैवे कौ ही विचार राखै, अपने सन्मान कौ कम। सबकूँ सुख पहुँचायवे कौ ही विचार राखै।

मित्र भले ही चाहें अनेकन हौयँ, किंतु श्रीभगवत्-सृष्टिमें अपनौं एक हू शत्रु न बनावै। दूसरे कौ अनिष्ट कबहूँ न करै।

या कामके ताँईं काहू कूँ अनुमति न दे। मन सौ हूँ कबहूँ न सोचै। जहाँ ताँईं है सकै, उपकार ही करै, याहीके ताँईं दूसरे कूँ अनुमति दे, यही सोचै।

× × ×

दो बातन कूँ सदाँ भुलातौ रहै—(१) अपने सौं यदि काहू कौ उपकार बनि गयौ होय। (२) काहूने अपने साथ कौई अपकार करि दियौ होय।

× × ×

दो बातन कूँ कबहूँ न भूलै—(१) अपने साथ यदि काहूने उपकार कियौ होय। (२) दुर्भाग्य सौं यदि अपने सौं काहू कौ अपकार बनि गयौ होय।

जीवनभर दुःख मानतौ रहै, अपनी भूलके ताँईं पश्चात्ताप करै, सम्भव होय तौ क्षमा-याचना करि लेय, त्यागिवेके योग्य दुर्गुण हैं। धारण करिवेके योग्य सद्‌गुण हैं। अहंकार न आवन पावै। सद्ग्रन्थन कौ स्वाध्याय अवश्य करै। योग्य पुरुषनकी जीवनी अवश्य ही पढ़ै तथा उनके सद्‌गुणन कूँ अपनेमें धारण करिवे कौ अभ्यास करै। दीनता कौ भाव बढ़ातौ ही रहै। एक-एक क्षण कूँ बहुत सावधानी सौं परमावश्यक सत्कार्यनमें ही व्यतीत करिवे कौ अभ्यास करै। इन्द्रियनकी भोग-लिप्सा कम करतौ जाय। साधनके ताँईं स्वस्थ शरीरकी परमावश्यकता है। अतएव स्वास्थ्य कौ बहुत ही ध्यान राखै। चिन्ता, शोकादिक मनमें अशान्ति उत्पन्न करैं हैं। अतएव साधक कूँ इनसौं बहुत ही बचनौं चहिए। सबरे शुभ कर्मन कौ, सबरे सद्विचारन कौ, स्वाध्याय तथा सत्संग आदिकन कौ फल एक यही है कि, भजन करिवेकी रुचि उत्पन्न होय। चाहैं मालाकी संख्या सौं होय, चाहैं घन्टानके विचार सौं होय। भजन कौ नियम अवश्य रहै। जितनौं नियम भजनके ताँईं बनावै, वाकूँ नित्य ही पूर्ण करि डारै। भजनमें प्रमाद, आलस्य तथा उपेक्षा न हौन पावै। भजन करिकैं भजन ही माँगै।

भजन सौं तृप्त न हौन पावै। जितनौं क्षण भजनमें व्यतीत होय, वाही क्षण कूँ सार्थक समझै। भजनमें रुचि बढ़ातौ ही रहै। बड़े प्रेमके साथ भजन करै। श्रीभगवत्-नामके उच्चारणमें शीघ्रता न करै। भजनके समय अन्य कार्यन कौ विचार न उठन पावै। वास्तवमें जीवन तौ याही क्षण है—ऐसौ विचारिकैं बड़े उत्साह सौं भजन करै। जैसी चहिए, वैसी भजन, मैं न करि पायौ, यह खेद रहै, किंतु अपनी ओर सौं भजन करिवेमें कबहूँ त्रुटि न हौन पावै।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

(रा० च० मा० २। ३२६। १)

ऐसौ भजन बनै, तब समझै कि भजन भयौ। सुख मिलै भजन करिवे ते एवं दुःख कौ कारण केवल एक ही होय, भजनमें कमी है जानौं। ऐसौ भाव बनै कि, निरन्तर भजन ही करूँ और कछु न करनौं-धरनौं परै। जब हठीलौ मन न मानै, याचना पै उतारू है ही जाय, तब यही माँगै कि—मेरे जीवन-सर्वस्व! मोसौं अपनौं भजन कराय लेउ। वास्तवमें मुक्तिप्रद सच्ची याचना तौ केवल यही है। अन्य याचनाएँ तौ भव-बन्धनमें बन्धन ही दृढ़ करावैंगी।

सर्वोत्तम जीवन तौ यही है कि बन्यौ रहै संसारी, किंतु अन्तःकरणमें प्रियतमसौं (प्रभुसौं) मिलिवेकी उत्कट उत्कण्ठा उठती ही रहै। ऐसे उच्च भावन कूँ यथाशक्ति प्रकट न हौवन देय। केवल पीकैं चुपचाप ही बैठि जाय। सुअवसर कूँ प्रमादमें कबहूँ न आमन देय। याकी सार्थकता श्रीप्राणनाथके रिझायवेमें

ही है। यह स्मरण राखै कि मैं बहुत कछु करि सकूँ हूँ। यदि न करूँ, तौ यह मेरी भारी भूल है। परिस्थिति बस जो कछु सामने आय परै, वाकूँ श्रीभगवान्‌की दैन समझिकैं सहर्ष स्वीकार करते भये, श्रीभगवत्-स्मरण कूँ सँभारते भये, संसारकी यात्रा पूर्ण करनौं चहिए। अत्यन्त विनीत भाव सौं श्रीप्राणनाथकी संनिधिमें केवल एक यही याचना होय—

अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

(रा० च० मा० २। १०७। ८)

× × ×

या विश्व-प्रपञ्चमें सत् का है? और असत् का है? याकूँ ठीक-ठीक जान लैनौं ही ज्ञान है। अन्तःकरणमें प्रियतमके अतिरिक्त और कोई वासना न रहै—यह है वैराग्य। अपने इष्ट कूँ जो प्रिय होय तथा जासौं वे प्रसन्न होते हौयँ, वही करनौं ही है—भक्ति। अपने और प्रियतमके मध्य जो उपस्थित है जाय, वाकौ त्याग करनौं ही है—त्याग। जो असत् जानिवेमें आयौ है, वासौं चित्त कौ सर्वथा हटि जानौं ही है—वैराग्य। और बाकौ तन-मन-बचन सौं सर्वथा त्यागि दैनौं ही है—त्याग। अब बच्यौ सत्। याकूँ पायवेके ताँईं प्रयत्न करनौं ही है—भक्ति। सेवामें निष्कामता तथा भाव कौ हौनौं परमावश्यक है। प्रियतमके सुखार्थ जो कियौ जाय है, वही है सेवा।

जाग्रत्‌की तौ दूरि स्वप्नमें हू प्रियतमके अतिरिक्त दूसरी वस्तु न आवै। सब स्थिति, परिस्थितिनमें केवल और केवल प्रियतम ही नैंन, मन, प्राण और तनमें समायौ रहै। यहाँतक कि अपने शरीरकी हू सुधि न रहै, याही स्थिति कौ नाम है सिद्धावस्था। जहाँ जायकैं सबरे संकल्प और विकल्पन कौ उठनौं हूँ सर्वथा बंद है जाय है, वही है प्रियतम कौ देश। भजनानन्द तौ

श्रीभगवत्-प्राप्ति सौं हूँ बढ़िकैं है। याही सौं भजन कौ आनन्द तौ भजन करिवे वारे कूँ अवश्य ही प्राप्त होय है। अब श्रीभगवत्-प्राप्ति कब होय? अनुभूति कब होय? ये श्रीभगवत्-इच्छा पै निर्भर है। जब ये (प्रभु) चाहैं तब।

निन्दा करिवेकी का बात, सुननौं हू पाप है। सबरे अनर्थन कौ मूल है परदोष-दर्शन। याही सौं विरोध, घृणा, वैर आदिक उत्पन्न हौयँ हैं। बहिर्मुखता, व्यवहारमें अति दक्षता, जन-संसर्गमें अभिरुचि, आत्मरति नहीं हौन देयँ हैं। अवसर पै सावधान रहनौं ही यथार्थ सावधानता है। प्रेम-प्राप्तिके ताँईं तीव्रतम वैराग्य, सतत इष्ट-चिन्तन, अभिमान और ममता कौ सर्वथा त्याग परमावश्यक है।

स्वार्थमें विवेक नहीं और लोभमें अवधि नहीं होय है। औषधिमें पथ्य, प्रेममें तथ्य और व्रतमें नियमकी परमावश्यकता है। वयस, वपु, विद्या और वित्तमें ही वासना कौ वास होय है। वासना यदि सत्-कर्ममें लगै, तौ सत्-वासना बनैं और यदि असत्-कर्ममें लगै, तौ असत्-वासना बनैं है। वासना कूँ यदि विवेकपूर्वक व्यवहार कियौ जाय, तौ वह वासना हू उपासना बनि जाय है। जाकूँ प्रमाद करिवेमें विलम्ब नहीं, पाप करिवेमें संकोच नहीं और अनादर करिवेमें विचार नहीं, वह राजसी प्रकृति कौ ही मान्यौ जाय है। औषधि-जैसौ आहार, ऋषि-जैसौ आचार और वेद तथा तत्त्व कौ विचार या पथमें परमावश्यक है।

× × ×

जो सतत श्रीभगवत्-चिन्तन करै है, वाकूँ अन्त समय श्रीभगवत्-स्मृति बनी ही रहै है। जब ताँईं प्रबल उत्कण्ठा न होय, तब ताँईं ही साधन कठिन जानि परै है। प्रबल उत्कण्ठा होते ही सब साधन सुलभ है जायँ हैं। चित्त कौ दुराग्रह, इन्द्रियन

कौ अनिग्रह और वित्त कौ संग्रह साधक कौ काल है। जो श्रीभगवान् सौं विमुख करै, वही विषय है। दूसरी कोई हू वस्तुकी चाह जाकूँ मिटाय न सकै, वही है सच्ची चाह। समय, शक्ति और सम्पत्ति कौ उपयोग व्यर्थ, स्वार्थ या परार्थमें होय है। यदि व्यर्थमें होय, तौ नष्ट है जाय है, स्वार्थमें होय, तौ भोग्य प्राप्त होय है और यदि परार्थमें होय, तौ अभ्युदय होय है।

काहू सौं विरोध और कोई वासना लैकैं न मरै, मृत्युके पूर्व ही इनकूँ मिटाय दे। कोई वासना न होय, न सत् और न असत्। दोउ प्रेमकी बाधक हैं। कोई शत्रु नहीं। सहिष्णुताकी पराकाष्ठा है जाय। कोई गारी दे, निन्दा करै, मारै—सब सह ले। अजातशत्रु बनै। बुद्धि जब तपोमयी और विवेकमयी बनै है, तब ही श्रीभगवत्-रतिकी पात्रता आवै है। तपोमयी कौ अर्थ है—भोग-विरुद्ध और विवेकमयी कौ अर्थ है—परदोष-दर्शन-रहित। जब इन दोउनकी सिद्धावस्था होय है, तब ही प्रेम-राज्यमें प्रवेश पावै है। माया सौं तरिवेके ताँईं दृढ़ महदाश्रय और महत्‌की आज्ञा कौ प्राणपण सौं पालन ही एकमात्र उपाय है। दूसरौ कोई उपाय नहीं।

भक्ति-पथ कौ पथिक भूलिकैं हूँ कुमार्गमें पाँव नहीं धरै है। वैर कूँ हूँ जो प्रेममें परिवर्तित करि देय सोई वैष्णव। श्रीभगवान्‌में जो भाव क्षण-क्षण बढ़तौ रहै वह रति। भक्ति याजन करिवे वारे कूँ एक ही अन्तराय है—महत्-अपराध। याकौ कोई प्रायश्चित्त हू नहीं। जब प्रपंच बढ़ै, तब प्रमाद बनै। यासौं प्रपंच ही प्रमाद कौ जनक है। प्रमाद ही मोह तथा मृत्यु है। प्रपंच सौ बचनौं ही मुक्ति है। एकमात्र संत ही शान्ति, समता, सरलता, संतोष और स्नेहके धाम हैं। आश्रय और आशय केवल श्रीभगवान् कौ ही होय, तब ही साधन सफल होय है। मन पूर्ण रूप-सौं शान्त तौ तब ही होय है, जब केवल अपने श्रीसद्‌गुरुदेव और इष्ट कूँ ही

अपनौं जीवन-सर्वस्व निश्चय करि लियौ जाय है। या निश्चयमें दृढ़ता हौनीं चहियै। उद्वेग तौ अपने किये सौं ही होय है। जब सहिष्णुता, क्षमा, धृति, दीनता, निरभिमानता आदिक हमारौ स्वभाव बनि जायँ हैं, तब ही हमारी प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक विचार पवित्र बनें हैं और तब ही स्वभाव दिन-व-दिन सरलातिसरल बनतौ जाय है। जब स्वभाव अति सरल और पवित्रतम बनि जाय है, तब ही जीवन पवित्रतम बनै है। पवित्रतम जीवन ही श्रीजीवनधन-सौं प्रेम करिवे को अधिकारी होय है।

लक्ष्यमें पूरी दृढ़ता होय तथा सांसारिक कोई चाह न होय। अपने-आप कूँ और अपने पूरे संसार कूँ इनकी सेवामें ही अर्पण करि दे। यदि पूरी सृष्टिमें अपने ताँईं कोई है, तौ केवल एक श्रीभगवान् ही हैं। तब समझै कि, अब मेरौ मुख इनकी ओर (प्रभुकी ओर) भयौ है। अब ही या मार्गमें प्रवेश नहीं मान्यौ जायगौ। प्रवेश तौ तब होयगौ, जब कोई महापुरुष बाँह पकरिकै लै जायँगे। हाँ, ऐसी स्थिति जब जीवकी बनै है, तब प्रभु काहू-न-काहू संत कूँ वा जीवकी बाँह पकरिवे भेजि ही देयँ हैं। संतके मिलते ही जब जीव अपने जीवनधन प्रभु सौं मिलिवे कूँ तड़फै है, तब संत वाकी बाँह पकरिकैं अपने प्रियतमकी ओर लैकैं धरि भागैं हैं। वा स्थितिमें बड़ी द्रुत गति सौं जीव कौ मार्ग तय है जाय है और अपने प्राणनाथकी परमसुखद गोदमें जाय बैठै है। जहाँ जायकैं ही सबरी वासना और उपासनानकी इति-श्री होय है।

साधन जो करै, पूर्ण तत्परता सौं करै, आलस्य, उपेक्षा एवं प्रमाद न छूइ जाय। जो साधन करै, वह सुरक्षित रहै। कोई कामना न बनै, भोग्य न बढ़न पावै। सादगी अपनावै। जहाँ ताँईं

बनै विलासिता न बढ़ावै। सादा आहार, सादा वस्त्र, सादा स्थान तथा अपने कूँ साधारण ही माननौं। अपने कूँ त्यागी, बैरागी, तपसी, ज्ञानी, भजनानन्दी तथा प्रेमी न जँचाबै। दिखायवेके ताँईं कोई साधन न करै। संसारी प्राणीनके साथ व्यवहारमात्र पालन करै। आसक्ति कहूँ न हौन पावै। साथ ही सब यही समझैं कि, हमसौं बडौ प्रेम करैं हैं—

'सबके प्यारे सब सौं न्यारे, ऐसी रहनी रहिये।'

सर्वथा मिटानौं है व्यर्थत्व। स्वभाव अति-उत्तम बनैं। सतत यही करनौं, यही कहनौं,यही सुननौं, यही विचारनौं।

× × ×

निम्नलिखित पाँचौन कूँ पूर्ण तत्परता सौं पालन करै—

(१) विश्वमें कोई हू शत्रु न रह जाय। (२) स्वभाव अति-उत्तम बनै।

(३) कालाव्यर्थत्व—(**समय केवल श्रीभगवत्-सम्बन्धी कार्यनमें ही व्यतीत होय।**)—(४)निरन्तर श्रीनाम-जप—(**कछु करते हौयँ जिह्वा श्रीनाम-जप ही करती रहै**) और (५) लक्ष्यमें दृढ़ता।

अपने नियम कौ सदा स्मरण रहै कि, मोकूँ ये नियम-पालन करने हैं। सबरे नियम अपने नेत्रनके सम्मुख ही नाँचते रहैं। तब नियममें त्रुटि नहीं होय है। गड़बड़ी तौ तब ही होय है, जब नियमन कौ विस्मरण है जाय है। नियम-पालन सौं हूँ नियम चिन्तन कौ विशेष महत्त्व है।

× × ×

तीन प्रकार कौ चिन्तन वर्जित है—

(१) परदोष-चिन्तन। (२) विषय-चिन्तन और (३) व्यर्थ-चिन्तन—इनमें व्यर्थ-चिन्तन अति कठिन परै है। यापै विशेष

ध्यान राखै। व्यर्थ-चिन्तन सौं बचिबेकी युक्ति निकारनौं तथा पूर्ण-तत्परता सौं काम लेनौं है। घबरायवेकी बात नहीं है। धैर्यपूर्वक काम करिवे सौं का नहीं है सकै है? लगि परै सच्चाई सौं। सफलता तौ मिलैगी ही।

भोग, वासना और भक्ति एक साथ नहीं रह सकैं हैं। जब ताँईं काऊ संसारी वस्तुमें रस आवै है, तब ताँईं श्रीभगवत्-प्रेम कहाँ? वैष्णव वही, जो कबहूँ श्रीभगवान्की आशा नहीं त्यागै और न कबहूँ मनुष्यकी आशा राखै। आसक्ति तथा मोह कौ नाश करिवे वारौ शस्त्र है—विवेक। साधु वही जो कबहूँ साधन सौं उदासीन नहीं होय है, कबहूँ चिन्ता नहीं करै और सदा-सर्वदा प्रसन्न बदन निर्भर और निश्चिन्त ही रहै है।

भक्ति ज्ञान वैराग्य स्नेह समझ समर्पण

अर्थात् भक्तिमें स्नेह, ज्ञानमें समझ और वैराग्यमें समर्पणकी परमावश्यकता है। स्नेहके बिना भक्ति, समझके बिना ज्ञान और समर्पणके बिना वैराग्य अधूरौ ही मान्यौ जाय है।

साधक अपने कूँ देखै कि, हम जी रहे हैं कौनके ताँईं?—अपने ताँईं? संसारके ताँईं? अथवा श्रीभगवान्के ताँईं?

भक्तिकी तीन क्रिया हौयँ **है—सेवा, स्नेह और समर्पण**। साधक न कछू चाहै, न कछू राखै और न काहू कूँ अपनावै तौ अवश्य ही प्राप्त होयगौ, श्रीभगवत्-प्रेम।

अवकाश ही अनर्थ कौ मूल है। साधक कूँ बहिर्मुखी बनायवेमें नेत्र प्रथम हैं और अन्तर्मुखी बनायवेमें कर्ण प्रथम हैं। जा काहूके अन्तःकरणमें आजतक श्रीभगवान् और संसार कौ प्रवेश भयौ है, इन दोउ मार्गन सौं ही भयौ है (**नेत्र और कर्ण**)। यासौं इनकूँ बहुत ही सँभारै। नेत्रन सौं न संसार कूँ देखै और न कानन सौं संसार कूँ सुनै। जब-जब देखै

और सुनै, तौ केवल श्रीभगवान् और श्रीभगवत्-जनन कूँ तथा इनके पवित्र यश कूँ ही देखै-सुनै।

बुद्धि जब यह दृढ़ निश्चय करि लेय है कि, केवल श्रीभगवान् ही मेरे सर्वस्व हैं और कोई मेरौ नायँ। तब ही बुद्धिमें प्रियतम कौ प्रवेश होय है और तब ही संसार कौ बन्धन टूटै है। साधकके जीवनमें (**प्रेम-पथके पथिकके जीवनमें**) व्यवहार-शुद्धि, नियम-निष्ठा और प्रतिज्ञा-पालनकी परमावश्यकता है। (**यह श्रीउड़िया बाबाजी महाराज कौ महावाक्य है।**) श्रद्धा सकामी उपासक कूँ नहीं होय है। प्रथम तथा प्रधान वस्तु है प्रियतममें आत्मीयता। प्राणिमात्रकी अन्तरात्मा है, परमात्मा (**श्रीभगवान्**)। तब तौ प्राणिमात्रके ये ही आत्मीय भये। अपने आत्मीय सौं आत्मीयता हौनों ही चहिए। न होय यही अनर्थ, महा अनर्थ है। जब यह निश्चय है जाय कि, केवल ये ही हमारे हैं, तब तौ सहजहीमें इनमें ममता, आसक्ति, मोह स्वतः ही है जाय है। यामें देर नहीं लगै है। कारण कि ममता, आसक्ति आदिक प्रवृत्तिकी क्रिया हैं। जो जीव कौ जन्म-जन्म कौ स्वभाव है। देर लगै है, निवृत्ति-मार्गके साधनमें। इनमें आसक्ति, ममता, मोह हौनौं ही प्रेम है। जब प्रेम है जाय है, तब कछु करनौं नहीं परै है। स्वतः ही सब कछु होतौ रहै है। अतः अपनौं परम-कर्तव्य यही है कि, अपने जीवनधन सौं आत्मीयता करिवे कौ निरन्तर अभ्यास बढ़ातौ रहै।

× × ×

यदि कोई प्रशंसा करै, तौ समझनौ कि, यह सुझाव है, तुम ऐसे बनौ और अपने कूँ वैसौ ही बनावै। यदि कोई निन्दा करै, तब यह समझै कि, अब यह दोष हममें नहीं आवन पावै। प्रेम चाहै है बलिदान। बलिदान कौ अर्थ हैं—अपने कूँ तथा अपने संसार कूँ प्रियतम कूँ ही अर्पण करि दैनौं। अपने प्रियतमके

अतिरिक्त अपने ताँईं कछु न रह जाय। दूसरौ अर्थ है—समस्त इन्द्रियन कूँ विषय सौं हटाय कैं इनमें (प्रभुमें)ही लगानौं अर्थात् अपनी समस्त इन्द्रियनकौ विषय एकमात्र श्रीजीवनधन ही रहि जायँ। तब होय है प्रेम। केवल श्रीभगवत्-सम्बन्ध सौं ही काहू सौं सम्बन्ध होय, अपने शरीर तथा स्वार्थके कारण नहीं। प्रेमकी ही कामना, प्रेमकी ही लालसा होय। याही के ताँईं पूरौ प्रयत्न होय। प्रयत्न होय काहू प्रेमी संतके बताये अनुसार। संतके प्रति भाव बढ़ावै। कोई संत कृपा करिकै दैं, तब ही यह अलभ्य वस्तु प्राप्त होय है। रात-दिना याही कौ चिन्तन। यह न भूलै कि, शरीर यामें पूर्ण बाधक है। जब आठौ प्रहर तल्लीनता रहै है, तब होय है प्रेम।

× × ×

ममता हौनी चहिए तीन ठौर—हरि, गुरु और हरिजननमें। भजन-साधनके दो ही फल हैं—साधक-कालमें तज्जन्य सुखकी अनुभूति तथा अन्तमें भगवत्प्राप्ति। भजन त्रिगुणातीत वस्तु है। यह गुण नहीं चाहै है; क्यौंकि, तीन्यौं गुण भजनमें बाधक हैं। रज, तमकी बाधकता तौ स्पष्ट है ही, यामैं कछु कहनौं ही नहीं। रही सत्त्वकी बात—सो या कारण बाधक है कि, यामैं सात्त्विक-विघ्न धार्मिक कार्यनके बहाने सौं आवें है। या बहाने सौं यह साधक कूँ प्रपंचमें फँसाय दैयँ हैं। जब साधक प्रपंचमें फँसि जाय है, तब यह धार्मिक-कार्य ही तौ हैं, ऐसौं समझि कै उनकूँ छोड़ि नहीं पावै है। या कारण सत्त्व हू बाधक है। प्रपंच इतनौं प्रबल शत्रु है कि, जो याके पन्जेमें एक बार कैसैं हूँ फँसि गयौ, फिर यासौं छुटकारौ पानौं बहुत ही कठिन है। विकार तथा हृदयस्थ वासना तब ही नष्ट है सकैं हैं, जब जीव पूर्णरूपेण प्रेम-सिन्धुमें डूबि जाय है। बिना प्रेम-सिन्धुमें डूबे इनसौं बचनौं कठिन ही

दीखै है। हाँ, साधक यही करि सकै है कि, कोई नवीन वासना न बनन पावै तथा जैसें ही कोई विकार उठै, तैसें ही वाकूँ श्रीसद्गुरु-भगवान्की आज्ञानके अवलम्ब सौं मिटायवे कौ प्रयत्न करै। जासौं उनके बढ़िवेकी आशंका ही समाप्त है जाय। गहरी खोज (**आत्मनिरीक्षण**) करै। जब दीख जाय, तब या हृदयस्थ वासना कूँ वैराग्यरूपी शस्त्र सौं नष्ट करि डारै।

साधनमें तीन बात हौनी चहिए—श्रीसद्गुरुप्रदत्त, शास्त्र-प्रतिपादित और संत-आचरित। यदि ये तीन्यौं हैं, तो श्रीभगवत्प्राप्तिमें कोई संशय ही नहीं, अवश्य ही होयगी। भक्ति-मार्गमें भाव ही प्रधान हैं। भावयुक्त साधन ही फलदायक होय है। न जानैं प्रियतम काहे सौं रीझि जायँ। इनकी ये जानैं, साधक तौ श्रीसद्गुरुप्रदत्त और शास्त्र-सम्मत साधन ही करै और मनमें कोई इतर चाह न होय, नहीं तौ सब साधन वाहीमें खर्च है जायगौ। फिर भजन करैगौ, प्रतिष्ठा होयगी ही। जन समुदाय वाके पास पहुँचैगौ ही। इन सौं बड़ी सावधानी सौं बचतौ रहै। स्वदोष-दर्शन, परदोष-अदर्शन, पर-सद्गुण और स्वदोष-प्रदर्शन करिकैं चित्तमें प्रसन्नता होय, तौ श्रीभगवान् हृदयमे प्रकट होयँ हैं। जो वस्तु नहीं है अर्थात् अनित्य है—जैसें जगत् और शरीर। माया इनकूँ तौ दिखावै है और जो वस्तु नित्य है—जैसें आत्मा और परमात्मा। इनकूँ अपने आवरण सौं ढकि देय है अर्थात् इनकौ ज्ञान नहीं हौन देय है।

मायाके कार्यनके दो प्रकार हैं—आभास और तम। जैसें आकाशमें चन्द्रमा एक ही है, किंतु दृष्टि-दोषके कारण दूसरौ चन्द्रमा न होते भये हू एकके द्वै दीखैं हैं अर्थात् वस्तु न होते भये हू दिखाई दै रही है, यह है आभास। दूसरी बात नवग्रह आकाशमें घूमते ही रहैं हैं। तौऊ तमके कारण राहु-केतु दिखाई

नहीं देयँ हैं। होते भये हू वस्तु दिखाई नहीं दै रही है, यह है तम। या आभास और तम कूँ ही विक्षेप कहैं हैं।

× × ×

धाम चिन्मय वस्तु है। याकौ कण-कण तृण-तृण चिन्मय ही होय है। किंतु प्राकृतिक जीव कूँ जाकी दृष्टि दूषित है, सब प्राकृतिक ही दीखै है। जो प्राकृतिक जगत् सौं ऊपर उठिकैं भाव-जगत्में प्रवेश करि चुके हैं, उनकूँ ही धाम तथा धामकी प्रत्येक वस्तु सच्चिदानन्दघन ही दीखै है। अब प्रश्न यह उठै है कि, जिनकूँ प्राकृतिक ही दिखाई देय है उनकूँ का करनौं चहिए? यदि धाममें रहैं, तौ अपराध बनै। चिन्मय कूँ प्राकृतिक देखैं। तौ का यहाँ सौं भागि जानौं चहिए? कम-सौं-कम बाहर रहवे सौं अपराध तौ नहीं बनैगौ? नहीं-नहीं? ऐसौ नहीं? घबरायवेकी बात नहीं? धाम सौं बाहर नहीं जाय? धाममें ही रहै और जैसौ धामकौ स्वरूप शास्त्र और संतननें बतायौ है, वैसौ ही चिन्तन करै। यदि अपने कूँ वैसौ नहीं दीखै, तौ याके ताँई खेद होय और प्रियतम सौं प्रार्थना करै कि, मेरे जीवनधन! मो अपने अबोध बालक कूँ हूँ अपनौं वास्तविक स्वरूप दिखाऔ। अन्यथा मोसौं प्रतिक्षण अपराध ही बनते रहैगें और मैं आपकी गोदमें रहते भये हू आपसौं जन्म-जन्म कूँ भटकि जाऊँगौ। हे मेरे प्राणाधार! मोकूँ अपनाय लेउ। या प्रकार सौं रोय-रोय कैं अपने प्रियतम कूँ रिझायवेमें ही लग्यौ रहै और धामके जा व्यक्ति और वस्तुमें दोष-दृष्टि भई होय, तुरंत—तत्क्षण, वा ही सौं, विनम्रतापूर्वक क्षमा-याचना करि ले। ऐसौ करिवे सौं कालान्तरमें धाम कौ वास्तविक स्वरूप दीखिवे लगैगौ और फिर जो मस्ती तथा परमानन्द कौ स्वाद आवैगौ, वह स्वयं ही अनुभव करिवे लगि जायगौ। फिर सब दोष-दृष्टि कौ निवारण है जायगौ। या प्रकार

साधक कूँ अन्तमें धामकी प्राप्ति है जायगी। साधक कौ परम-कर्तव्य है कि, धैर्य सौं काम लेतौं रहै। धीरज न त्यागै और श्रीसद्गुरु कौ दृढ़ आश्रय राखै। मन लगिवे-न-लगिवेकी चिन्ता न करै। चिन्ता करै केवल और केवल श्रीसद्गुरुकी आज्ञा-पालनकी। अपने मन-बुद्धि सौं कह देय कि, अब तुम्हारौ सब काम समाप्त है गयौ। तुम अब सुख सौं चैनकी नींदमें सोय जाऔ और मोकूँ मेरे श्रीसद्गुरुदेवकी आज्ञा-पालन करन देउ। बस, फिर तौ सब काम अति-शीघ्र ही सम्पन्न होते ही जायँगे और एक दिन ऐसौ आवैगौ कि जीव नित्य कूँ अपने प्रियतमकी गोद कौ खिलौना बनि जायगौ। भजन-साधन कियौ जाय है कि, हमारौ प्रभुके श्रीचरणनमें भाव बनै, प्रेम है जाय। परंतु यदि भजन-साधन करते भये हू भाव और प्रेम नहीं उपजै, तौ चिन्ता नहीं करै। जबतक प्राण रहैं, तबतक बड़ी तत्परता और सत्यता सौं भजन-साधन करतौ ही रहै, तौ अपने कूँ हूँ प्राण परिहार पीछैं वही गति मिलैगी, जो गति—भाव और प्रेम वारे कूँ मिलै है।

× × ×

देहाध्यास भगवत्प्राप्तिमें महा बाधक है। सावधान! यह न हौन पावै। देहाध्यास-निवृति कौ उपाय है कि, यह देह काहू कूँ दुखद न बनै। विशुद्ध अन्त:करण तथा विशुद्ध आचरण होय, तब ही हृदयमें प्रेमकी उत्पत्ति होय है। कोई कछु कहै, कोई कछु करै, मोकूँ सब सहन करनौं है। यह दृढ़ संकल्प ही साधुता है। वह साधु कैसौ? जो सहनशील न होय। साधु तौ सदा सहिष्णु, क्षमाशील, उदार होय है। ईर्ष्या पतनकी खाई है। हठ सदैव दुखदाई ही होय है। स्वभाव उत्तम बनै। स्वभाव उत्तम होयवे सौं विचार उत्तम बनै हैं, तदनुसार क्रिया उत्तम बनै हैं। परिणाममें

उत्थान ही हौंतौ जायगौ। मन खाली भयौ कि, प्रेम-देव पधारे। प्रेमके अभाव कौ अनुभव करै, रोवै, ग्लानि होय कि, मैं प्रेमी नहीं बनि पायौ। ये जन्म हूँ व्यर्थ ही गयौ। का करूँ? कैसैं करूँ? यदि याके ताँईं उत्कट लालसा होती, यदि याके बिना जीवन भार है जाँतौ, तौ प्रियतम कौ वियोग सहन नहीं हौंतौ और विरहाग्निमें पजरि जाँतौ, तौ प्रियतम स्वयं ही आयकें प्रदान करते। प्रेम न भयौ सो तौ है ही, परंतु मैं तौ इतनौं अधम हूँ कि, याके ताँईं इच्छा हू नहीं होय है। प्रयत्न करिवैकी का बात? विषयनमें ही सुख मानूँ हूँ और दिन-रात डूब्यौ ही रहूँ हूँ, का करूँ? ऐसे अधम कौ कौन उपाय? हाय! हाय! जीवन यौं ही जायगौ? फिर जिन-जिन प्रेमीनकी जीवन-गाथा, पढ़िवे, सुनिवे, देखिवेमें आयी होय, उनकौ विचार, रहनी, लगन तथा प्रेम कौ अनुशीलन, मनन करै तथा उनके गुणन कूँ धारण करिवेकी चेष्टा करै। फिर कामना करै कि, मैं हूँ कबहूँ ऐसौ प्रेमी बनुंगौ का? इनकी भाँति प्रियतमके प्रेम-सिन्धुमें डूबुंगौ का? सतत यही धुन सवार रहै कि कैसैं श्रीभगवत्-प्रेमी बनूँ? कैसैं श्रीभगवत्-प्रेम मिलै?

जो करै, प्रियतमके ताँईं ही करै। अपनौं स्वार्थ छू न जाय, अपने समस्त संकल्प, क्रिया-कलाप केवल अपने उपास्यदेव **(इष्ट-देव)**-के ताँईं ही हौयँ, यही है—उपासना और यदि उपास्यके ताँईं न है कैं अपने ताँईं है रहै, तौ यही है—वासना, यही है कपट और यही है आत्म-बंचना। जबतक कपट है, तबतक श्रीभगवान् बहुत ही दूर हैं। संतके वचनमें अनुभव, करुणा तथा आचरण कौ अमोघ बल होय है। आश्रयकी दृढ़तामें कमी है वे सौं, विश्वासमें कमी होय है और विश्वासकी कमी सौं ही, चिन्ता कौ प्रवेश होय है। चिन्ता, श्रीभगवत्-चिन्तन सौं दूर करि देय

है। चिन्ता, चित्तमें रहे है। यदि चित्तमें निरन्तर श्रीभगवत्-चिन्तन होयवे लगे, तौ चिन्ता कूँ प्रवेश करिवे कौ अवसर ही नहीं मिलैगौ। कर्ममें बाधक है काम (**कर्मफलेच्छा**)।

भक्तिमें बाधक है लोभ (**स्वसुखेच्छा**)। ज्ञानमें बाधक है क्रोध (**भेद-बुद्धि**)। और ये ही नरकके द्वार हैं। समस्त साधनन कौ फल है, मनोनिग्रह। वही मनोनिग्रह भक्ति सौं सुलभ बनि जाय है। जितने साधन प्रेम-प्राप्तिके ताँईं कहे गये हैं, वे सब तौ तैयार ही हैं। यथार्थ वस्तु तौ है—आत्माकी भूख। भूख लगी कि, प्रेम भयौ। प्रेमी कूँ वियोगमें शोक, मोह, क्रोध, विरोध, राग-द्वेष, अहंकार आदिक विकार स्पर्श हू नहीं करि पावैं हैं। विरोध कौ अभाव निरोध। विरोधके कारण कूँ अपनौं दोष समझै तथा वाके ताँईं प्रायश्चित्त करै। तौ विरोध प्रेममें पलटि जाय है। जो श्रीभगवान् सौं विमुख करै, सो संसार। जब स्वार्थ मनमें आवै, तब ही दूसरे कौ अमंगल करिवेकी बात सूझै है। असूया, मत्सर तथा द्वेष जाके हृदयमें हैं, वाकूँ शान्ति कहाँ। पूर्ण बलिदान चहिए। हृदयके काहू कौनेमें स्वमुखकी इच्छा, कामना, बासना कौ अंकुर हू न रहै—यह है बलिदान। भोग सौं बुद्धि मलीन और त्याग सौं बुद्धि शुद्ध बनै है। यदि त्याग कौ किंचित् हू अहंकार रह्यौ, तौ मन, बुद्धि, चित्त सब-के-सब अपवित्र है जायँगे। ऊँची वृत्ति, तौ ऊँचे विचार। ऊँचे विचार, तौ ऊँची क्रिया।

प्रेमीकी पहचान है कि, इनके अतिरिक्त और कोई कामना न हो। सुख हू इनसौं और दुःख हू इनसौं ही (**'सुखदं च मे दुःखदं च मे'**)। साधन होय, वैराग्य होय, नियम-संयम सब होय, किंतु; यदि प्रेम न होय, तौ सब वैसैं ही फीके हैं—***'लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥'***

अपने इष्टके नाम, रूप, लीला और धामके सेवन करिवे सौं

इष्टमें प्रेम होय है। बिना प्रेम सब व्यर्थ। प्रियतम सौं मिलवेकी चटपटी सतत बनी ही रहनी चहिए। कब मिलिगें? कब मिलिगें? उनसौं यौं बतराऊँगौं, यौं बतराऊँगौं। या प्रकार सेवा करूँगौं, ये करूँगौं, वो करूँगौं। यही तो अनुराग है। प्रेम कूँ पंचम पुरुषार्थ कह्यौ जाय है। जब चार्यौं पुरुषार्थन (**अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष**)-कौ त्याग करै। तब ही प्रेम प्राप्त होय है। प्रेम-पथके पथिक कूँ ये सब त्यागने ही परैं हैं।

जीव आनन्दस्वरूप है, फिर दुःखी कैसे? द्वितीय अभिनिवेष सौं जीव दुःखी है। है श्रीभगवान् कौ, और इनकूँ छोड़िके है गयौ माया कौ। या कारण जीव दुःखी है। यासौं कैसैं छूटे? माया-पति और माया-पतिके लाढ़िले जननकी शरण लैवे सौं।

प्रेमकी पहचान शास्त्रविहित कर्मनमें निष्ठा या वैराग्य सौं नहीं होय है। जाकूँ अपने इष्ट और श्रीसद्गुरु भगवान्के श्रीचरणारविन्दनमें ही आत्मीयतायुक्त प्रीति होय, वही प्रेमी है। वाके हृदयकी पहचान है कि सतत अपने प्राणाधारके मिलनकी तीव्रतम उत्कण्ठा तथा नयी-नयी सेवा करिवेकी भावनान्की तरंग-पै-तरंग उठती ही रहैं हैं। इष्टमें अनन्य ममता, श्रीसद्गुरु भगवान्में दृढ़तम सात्त्विकी श्रद्धा तथा साधनमें अविचल निष्ठा, साधकके जीवनमें परमावश्यक है। साधनके आवेशमें मनमानी नहीं करि बैठे अर्थात् साधन करिवेके मदमें इन दोऊनकी उपेक्षा न करि बैठै। साधन हूँ पूरी निष्ठा सौं करतौ चलै और आश्रय राखै एकमात्र कृपा कौ हीं। येहूँ नहीं कि, कृपाके ऊपर छोड़िकैं साधन न करै। प्रेममें आत्मीयता, भक्तिमें दैन्य, ज्ञानमें वैराग्य प्रधान तथा परमावश्यक हैं। बिना आत्मीयताके प्रेम नहीं है सकै है। बिना दैन्यके भक्ति नहीं टिकै है। बिना वैराग्यके बोध नहीं होय है।

जब यह समझमें आय जाय है कि, यह शरीर प्रियतमकी वस्तु है, तब यह जीव पाप नहीं करि सकै है। काहू कौ अहित नहीं कर सकै है। काम-क्रोधादिक विकारन कौ शिकारहू नहीं है सकै है। वह संत और शास्त्रविहित आचरण ही करैगौ। विमुख आचरण करनौं तौ दूरि, संकल्प हूँ नहीं करि सकै है। प्रत्येक इन्द्रिय अपने प्रियतमकी सेवा और भजनमें ही लगी रहैगी। यहाँतक बात है कि, मन और बुद्धि हू अपनौं जन्म-जन्म कौ स्वभाव छोड़िकै निरन्तर प्रियतमके ही विचारमें, चिन्तनमें ही लगे रहेंगे। लगाने नहीं परिंगे, लगे रहिंगे।

ब्राह्मण तथा वैष्णव वह, जो कबहूँ मार्ग सौं न डिगै। संसारी कामना, संसारी बासना और संसारी क्रियान कूँ विवेकद्वारा श्रीभगवन्मय बनायकैं, श्रीभगवान् कूँ समर्पण करिवे सौं काम नष्ट होय है। काम-क्रोध पै विजय केवल महत् सेवा सौं ही होय है। काम-क्रोध कौ शमन करनौं ही तप है। प्रेम-पथके पथिकके ताँई तीन बातें परमावश्यक हैं—(१) प्रियतम सौं कछु न माँगै। कछु न चाहै। (२) अपने पास जो कछु है, सर्वस्व प्रियतम कूँ समर्पित कर देय। (३) इनकी कृपा और आत्मीयता कूँ कबहूँ नहीं भूलै।

प्रेम-जगत्‌में धर्म कौ त्याग ही महान् धर्म और नियम कौ अभाव ही महान् नियम है। परंतु यह स्थिति तौ काऊ वस्तु कौ फल है। अर्थात् जन्म-जन्म सौं श्रीसंत और शास्त्रानुसार नियम और धर्म कौ पराकाष्ठातीत पालन करिवेके फलस्वरूप ही यह स्थिति हाथ आवै है। साधक जाकी संज्ञा है, वाकूँ तौ पूरी निष्ठा सौं अपने नियम और स्वधर्म कौ पालन ही करते रहनौं चहिए। स्वधर्म और स्वनियम कौ जानि-बूझिकैं त्याग नहीं करैं। वह तौ नियम-धर्मके पालनकी एक ऐसी अवस्था आवै है कि, जहाँ

जायकैं सब नियम-धर्म स्वयमेव छूटि जायँ हैं। छोड़ने नहीं परैं हैं। स्वधर्म और स्वनियम पालनकी रज्जुमें बँधिकैं ही, साधक वा रस-राज्यके द्वारतक पहुँच पावै है, जहाँ जायकैं सबरे नियम-धर्म ऐसैं शान्त है जायँ हैं, जैसैं समुद्रमें जायकैं नदी। प्रियतमके द्वारतक पहुँचिवेतक ही, स्वधर्म और स्वनियम-पालन करिकैं ही छुट्टी नहीं पाय जाय। यदि द्वार आयौ जानिकैं स्वधर्म और स्वनियम पालन कौ त्याग करि बैठ्यौ तौ फट् सौं माया घसीटि लै जायगी। या कारण रस-राज्यमें भीतर प्रवेश हैवेतक स्वधर्म और स्वनियम कौ पालन करतौ ही रहै। जबतक अपनी सामर्थ रहै, शरीर और संसार कौ बोध रहै, तबतक इनकौ कड़ाई सौं पालन ही करतौ रहै। जब रस-सिन्धुमें डूबि जायगौ, तब स्वयमेव सब छूटि जायगौ। छोड़नौं नहीं परैगौ। जानि-बूझिकैं स्वधर्म और स्वनियम कौ त्याग करनौं अपराध है। या कारण जबतक अपनौं बस चलै, तबतक स्वनियम और स्वधर्म कौ पूरी निष्ठा सौं ही पालन करते रहनौं चहिए।

सुख-दुख कौ कारण संग ही है। जैसौ संग होयगौ, वैसौ ही फल होयगौ। या कारण साधक कूँ साधन-कालमें बिलकुल असंग ही रहनौ चहिए। क्योंकि साधकके ताँई सुख-दुःख दौनौं ही घातक हैं। ये दौनौं ही माया-राज्यकी वस्तु हैं। जबतक साधक सुख-दुःखके चक्करमें फँस्यौ रहैगौ, तबतक वह भले ही कितनी हूँ ऊँची-सौं-ऊँची भजन-साधना, त्याग, वैराग्य, प्रवचन क्यौं न करिलै, रहैगौ माया-राज्यमें ही। साधक कूँ तौ सुख-दुःख सौं ऊपर उठिकैं, आनन्द, परमानन्द और आह्लादके सिन्धुमें डूबनौं है। या कारण साधनकालमें बिलकुल असंग ही रहै, तौ लक्ष्य-प्राप्तिमें कोई बाहरी बाधा नहीं उपस्थित है सकै है। अब रही अपनी मनःस्थिति, सो तौ दृढ़तम महदाश्रय सौं सब ठीक है ही जायगी।

साधक सावधान! सतत सावधान!! यदि एकहू क्षण साधन-बिमुख भयौ, तौ वाही क्षण महा अनर्थ ठाढ़ौ है जायगौ। सनकादिक चार्यौं ब्रह्म-पुत्रनकी सदैव श्रीभगवान् पै ही दृष्टि रहती। परंतु जब वैकुण्ठके द्वार पै जय और विजयने रोकि दिये, तब उनकी दृष्टि श्रीभगवान् सौं हटि कै जय-विजय पै परी। परी एक क्षण कूँ ही। और तत्क्षण ही अनर्थ है गयौ। क्रोधरूपी प्रबल शत्रुकी शिकार बनि गये। सोऊ कहाँ? प्रभुके द्वार पै। फिर तौ जौ अनर्थ भयौ, सो शास्त्र-संत साक्षी हैं। क्रोधावेशमें प्रभुके जनन कूँ शाप दै बैठे। यह समाचार सुनिकैं वैकुण्ठनाथ भीतर सौं बाहर द्वार पै ही आ गये। जो कुछ बार्ता भई, बाहरि ही भई। विकारकी शिकार होंते ही सदाँ ब्रह्मानन्दमें डूबे रहबे बारेन कूँ हूँ वैकुण्ठमें प्रवेश नहीं मिल्यौ, द्वार पै सौं ही उलटे वापिस लौटनौं परि गयौ। या घटना सौं साधक कूँ भारी शिक्षा मिलै है। जबतक अपने प्रियतमके प्रेमराज्यमें प्रवेश न करि जाय, तबतक इत-उतमें न देखैं। कौन का कहि रह्यौ है? कौन का करि रह्यौ है? यह न देखै। बस निरन्तर पूरी निष्ठा सौं, पूरी प्रीति सौं, अपने साधनमें ही लग्यौ रहै। यदि क्षणांश हू संसार कूँ झाँकि लियौ, तौ वाही क्षण महा अनर्थ ठाढ़ौ है जायगौ और अबतककी सबरी साधना व्यर्थ ही है जायगी। या पथमें आदर्श है पतिव्रता। पतिव्रता यदि घूँघटमें सौं हूँ पर पुरुष कूँ निहारि ले तौ बाकौ पातिव्रत धर्म टूटि जाय है। ऐसें ही साधक यदि क्षणांश हू संसार कौ चिन्तन करि लेय है तौ वह अपने साधन-पथ सौं गिर जाय है। वैकुण्ठपतिने द्वार पै ही आयकैं चार्यौं ब्रह्मकुमारन सौं कही कि अब तुम मेरे परमानन्दस्वरूप वैकुण्ठमें प्रवेशके अधिकारी नहीं रहे हौ। क्योंकि तुम यहाँ आयकैं हू विकारकी शिकार बनि गये। पूरे मार्गमें तुम मेरौ चिन्तन और नाम-जप करते चले आय

रहे। या कारण मायाने तुम पै हाथ नहिं मार्यौ। तुम या बात कूँ भूलि ही गये कि जहाँ तुम विकारकी शिकार बने हौ वह माया-राज्य और मेरे नित्यधामकी सीमा हैं। यहाँ तौ मायाके बड़े-बड़े सुभटन कौ सशस्त्र पहरौ रहै है। जो सहजमें ही सीमा पार नहीं करन देयँ हैं। यहाँ आयकैं तुमनें जैसैं ही मेरौ चिन्तन और नाम छोड्यौ कि मारे गये। अब आगे ध्यान राखियौ; जब कबहूँ मौसौं मिलिवे आऔ तब, जबतक मेरे राज्यमें प्रवेश नहीं पाय जाऔ, तबतक मेरौ नाम-चिन्तन मत भूलियौं। अन्यथा तौ यही नाटक बनतौ रहैगौ और कबहूँ मेरे राज्यमें प्रवेश नहीं करि पाऔगे।

जबतक साधक विकारकी शिकार रहै है, तबतक प्रियतमके प्रेम-राज्यके द्वारके किवार बंद रहैं हैं। जब विकार निर्मूल है कैं प्रियतमकी पुकार करै है, तब ही किवार खुलैं हैं और तब ही प्रवेश मिलै है वा अखण्ड रस-राज्यमें। भूतदया, सौहार्द तथा द्वेष-विसर्जन सौं श्रीभगवान् शीघ्र प्रसन्न हौय है। प्रेममें आग्रह अवश्य होय है, परंतु दुराग्रह नहीं होय है। भेद तथा मोह श्रीभगवत्-प्राप्तिमें बाधक हैं। भेद, प्रेम नहीं हौंन देय हैं और मोह, त्याग नहीं हौंन देय है। सेवा तथा सत्संग सौं ये दोऊ मिट जायँ हैं। कामना ही जीवत्व है। कामना मिटी कि जीवत्व मिट्यौ। जीवत्व मिट्यौ कि, श्रीभगवान् मिले। काहूमें आसक्ति रहनी हू परिग्रह ही है। एकान्त-सेवन, शुद्ध सात्त्विकी आहार, निरन्तर श्रीनाम-जप और चिन्तन, लक्ष्यप्राप्तिके ताँईं परमावश्यक हैं।

अचल शान्ति लाभ करवे कौ उपाय—इतने बड़े विश्वमें काहू सौं द्वैष नहीं करै। यदि कोई द्वैष करै तौ वासौं मैत्री कौ ही व्यवहार करै। तऊ द्वैष करै तौ वापै दया करै। तऊ न मानैं तौ वासौं निर्मम है जाय, उपेक्षित है जाय। अभिप्राय यह है कि

मनमें यह विचार ही न करै कि मैं जाके संग कितनौं सद्व्यवहार करूँ हूँ तऊ यह कैसौ है कि मानैं ही नहीं है। फिर यह सब करते भये हू अहंकार न हौन पावै। अपनी विनम्रता कौ, सरलता कौ हूँ अहंकार है जाय है, जो पतन कौ हेतु ही सिद्ध होय है।

भजन करते भये हू यदि भजनमें आनन्द नहीं आवै, भजन कौ जो यथार्थ फल है शान्ति, याकी अनुभूति यदि न होय, तौ जानि लैनौं चहिए कि, इन तीननमें सौं कोई-न-कोई बात हमारे जीवनमें चिपक रही है—

१-असमर्पित अथवा रजोगुणी, तमोगुणी आहार।

२-कुसंगकी प्राप्ति और सत्संग कौ अभाव।

३-अन्याश्रयकी प्राप्ति और अनन्य आश्रय कौ अभाव।

इनमें सौं यदि एक हू है, तौ शान्ति नहीं मिल सकै है और यदि तीन्यौं-के-तीन्यौं ही हैं तौ फिर तौ शान्तिकी छाया कौ हू स्पर्श नहीं है सकै है।

श्रीनाम-जप कौ फल है कि निरन्तर, उत्तरोत्तर श्रीनाम-जपकी रुचिमें वृद्धि और नामीमें आत्मीयता। यदि यह फल नाम जपते-जपते हू प्राप्त नहीं है रह्यौ है तौ निश्चय ही हमारे भीतर कपट छिप्यौ है। कपट कौ अर्थ है कामना। नाम-जप श्रीभगवान् कौ और मनमें कामना संसारकी। तौ जप कौ यथार्थ फल नहीं मिलैगौ। भजन करै श्रीभगवान् कौ और चाहै संसार, यह कैसी विडम्बना है? अपनी प्रशंसा करनौं मृत्यु है। भजन करै, किंतु स्वार्थ न होय। यदि स्वार्थ है, तौ यह तौ भिखारी और व्यापारी ही है। सर्वत्र चराचर जगत्में श्रीभगवत्-भाव दृढ़ करिवेके ताँईं प्रारम्भिक साधन है कि काहू सौं विरोध और घृणा न करै।

उपासना कौ अर्थ है—परमात्मा कौ सांनिध्य तथा सम्पर्क। उप-आसना अर्थात् समीप आसन मारि कैं बैठनौं। अपने प्राणधन प्रभू कूँ जाननौं। जानिवे कौ अर्थ यह नहीं कि इनकी भूली विछुरी याद यदा-कदा कर लैनौं। जानिवे कौ अर्थ है कि यह निरन्तर तैलधारावत् इनके नाम, रूप और लीलानमें ही डूबे रहनौं। बस एक ही काम है कि इनकूँ अपनौं बनानौं। याही सौं सब सुलभ है जायगौ। कौई दूसरौ चिन्तन ही न हौन पावै। यही साधन है, यही प्रेम है, यही कर्तव्य है और यही अपनौं परम-धर्म है।

संतने हमें अपनाय लियौ, यह तब ही मान्यौ जाय है कि, जब ये हम सौं अपने भीतरकी गुप्त-सौं-गुप्त बात कहबे लगि जायँ।

मा मतिः परदारेषु परद्रव्येषु मा मतिः।
परापवादिनी जिह्वा माऽभूज्जन्मनि जन्मनि॥

परस्त्री, परधन और परनिन्दा सौं जानैं अपने-आपकूँ, बचाय लियौ है, वाकौ या धरातल पै फिर कबहूँ पुनर्जन्म नहीं होय है, अर्थात् वह आवागमन सौं मुक्त है जाय है।

भजन—साधनके फलस्वरूप श्रीभगवान् यदि कछु जागतिक वस्तु प्रदान करैं, तौ समझि लेय कि, यह कृपा नहीं है। ये अपनौं पिण्ड छुडाय रहे हैं। तब ही संसार बढ़तौ जाय रह्यौ है। जब अपने कूँ माँगिवे सौं हू भिक्षा न मिलै, तब समझै कि, अब भई साँची कृपा। सरल और विनीत सौं अपराध बनैं ही नहीं हैं। अपराध तौ अहंकारी सौं ही बनैं हैं। सबसौं बड़ौ ज्ञान है, श्रीभगवान्में मोह है जानौं। साधनमें आवेश नहीं हौनौं चहिए। याकौ अर्थ यह नहीं कि, भजन कम करै। भजन खूब करै। अधिक-सौं-अधिक करै। 'मैं इतनौं भजन करूँ हूँ' यह अहंकार नहीं हौनौं चहिए। यही समझै कि, मैं का करि सकूँ हूँ। यह

जीवनधनकी कृपा है जो कछु कराय रही है। एकमात्र कृपा कौ ही अवलम्ब रहनौं चहिए।

भजनमें चार विघ्न—१-सुकृत, २-दुष्कृत, ३-अपराध और ४-भक्ति उत्थित अहंकार।

सुकृत—आवै भोग रूपमें।

दुष्कृत—आवै रोग रूपमें।

अपराध—आवै महदवज्ञा, असूया, बड़ेनमें दोष-दर्शन, निन्दा-आलोचना आदिके रूपमें। दोष-दर्शन तौ मन हूँ सौं न करै।

भक्ति उत्थित अहंकार सौं हूँ काहू पै शासन न करै। बड़ेन कूँ तौ करै ही नहीं, छोटेन कूँ हूँ नहीं करै।

श्रीभगवत्-नाम, श्रीभगवत्-धाम और श्रीभगवत्-जन—इन तीन्यौंनमें सौं यदि एक हू कौ अवलम्ब है जाय, तौ काम बनि जाय। इनमें सौं यदि एक हूमें मन रमि जाय, तौ जीव कौ कल्याण है जाय है और कहूँ तीन्यौंनमें ही मन रमि जाय, तौ फिर तौ कहनौं हीका? श्रीभगवत्परायणकी भूल हूँ कल्याणकारक है जाय है। लक्ष्य दृढ़ होय तौ श्रद्धा, सदाचार स्वत: ही बनते चले जायँ हैं। करने नहीं परैं हैं। जब ताँई इष्टमें दृढ़ आत्मीयता नहीं बनैं, तब ताँईं मिलन सम्भव नहीं। करनौं है एक काम! वृत्ति, जो सर्वत्र फैलि रही है, याकूँ समेटिकैं इनमें (श्रीप्रियतममें) लगानौं है। (प्रियतममें) लगानौं हैं। बस, याही सौं सब सुलभ है जायगौ।

साधक चार प्रकारके हौयँ हैं—(एक साधकके विचार साधकके ताँईं)

१-तूल, २-तुस, ३-घृत और ४-मधु।

(१) तूल नाम है रूई कौ। कितनौं हू रूई कौ ढेर होय, यदि वामें नैंकहू सलाई लगाय दैं, तौ क्षणनमें ही सब पजरि कैं राख है जाय है। ऐसें ही विवेकी साधकके हृदयमें कितनी हूँ साधन-विरोधी वस्तु एकत्रित क्यों न है रही हौयँ, यदि नैंक हू सत्संग या महत्कृपाकी आँच लगि जाय, तौ सबकी सब क्षणनमें ही स्वाहा है जायँ हैं और हृदय तुरंत निर्विकारी और निर्मल है जाय है। ऐसौ साधक तूल-कोटि कौ मान्यौं जाय है।

बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥

(२) दूसरे हैं तुस कोटिके। तुस नाम हैं भुस कौ। भुसमें यदि आँच लगि जाय, तौ वह बुझै ही नहीं है। भीतर-ही-भीतर पजरती ही रहै है, सुलगती ही रहै है और साथ ही धूँआँ हूँ चलतौ ही रहै है। यदि वापै पानी डार दियौ जाय, तौ धूँआँ कछु समय कूँ बंद है जाय है। फिर नैंकहूँ व्यारि चली कि, धूँआँ पुन: चलिवे लगै है। ऐसें ही साधकके हृदयमें जो अनर्गल वस्तु जमा है गयी है, उनकूँ साधक जब अपने साधन सौं फूँकिवे लगै है, तब भाँति-भाँतिके सद्विचाररूपी धूँआँनके घमण्डके घमण्ड उठते ही रहैं हैं। साधनकी अग्नि ऐसी होय है कि, वह कबहूँ बंद नहीं होय है। सुलगती ही रहै है। हाँ, कबहूँ-कबहूँ कुसंगरूपी पानी परिजायवे सौं धूँआँ बंद सौ है जाय है। परंतु नैंकहू सुसंगरूपी व्यारि लगी कि, फिर सद्विचारूपी धूँआँके घमण्ड-के-घमण्डसे उठनौं प्रारम्भ है जायँ हैं और विकाररूपी भुस कूँ राख करिकैं ही छोड़ै हैं। ऐसे साधक तुस-कोटिके माने जायँ हैं।

(३) तीसरे घृत कोटिके हौयँ हैं। जा वस्तु पै घृत मल दियौ जाय है, वापै पानी अथवा कोई तरल पदार्थ टिकै नहीं हैं। ऐसें ही जा साधक कौ हृदय श्रीभगवत्-भक्तिरूपी घृत सौं चुपरि गयौ है, वामें संसारी वस्तु, काहू प्रकारकी कामना, वासना नहीं टिक पावैं हैं। आपही दूरि हौंती रहैं हैं। ऐसे साधक घृत-कोटिके माने जायँ हैं।

(४) चौथे हैं मधु-जैसे। जा वस्तुमें मधु डार दियौ जाय है,

वही स्वादिष्ट है जाय है। ऐसै ही जा साधक कौ हृदय प्रेमरूपी मधु सौं भर्‍यौ ही रहै है, वाके पास कोई हू पहुँचि जाय, वह सब भीतर-बाहर सौं मीठी हैकैं ही निकरै है। सबरे सद्‌गुण सरलता, विनम्रता बाके पास जायवे वारे पै लिपटि जायँ हैं। कितनौं हूँ कटु स्वभाव बारौं क्यौं न होय, मीठौ ही बनिकैं आवैगौ। ये है मधु-कोटिके साधक।

जबतक चित्तकी वृत्ति इष्टमें और श्रीसद्‌गुरुदेवमें आसक्त नहीं होयगी, तबतक देहाध्यास बन्यौ ही रहैगौ। यदि इन दोऊनमें ममता नहीं भई, तौ संसार और शरीरमें होयगी ही। ममता तौ कहूँ-न-कहूँ रहैगी ही।

जाके स्मरण करिबे सौं चित्तमें भजन करिवेकी अभिलाषा उत्पन्न होय, प्रभु सौं प्रेम करिवेकी लालसा बनै, वही साँचौ साधु है।

जाके स्मरणमात्रसौं ही मनमें सौं मायाकी अशान्ति दूरि भागि जाय, जिह्वा श्रीभगवत्-नाम रटिवे लगि जाय, चित्त श्रीभगवत्-चिन्तन करिवे लगि जाय और मन अगाध शान्तिके सागरमें डूबि जाय। अपने व्यर्थ बीतते जीवन पै ग्लानि हैवे लगि जाय। श्रीभगवान् सौं मिलिवेकी तीव्रतम उत्कण्ठा मनमें घर करि जाय। वही है साँचौ संत।

चाह अन्त:करण कूँ मलीन करै है। अन्त:करण खाली करनौं है। अन्त:करण खाली भयौ कि, प्रेमकी भूख लगी। हृदयमें कोई वासना नहीं रहैगी, तब ही भक्तिमें मन लगैगौ और तब ही भक्ति कौ साँचौ रस मिलैगौ।

दु:संग सर्वथा त्याज्य है। **'संगं त्यक्त्वा सुखी भवेत्।'**

कोई पाप करै, बाकूँ देखनौं हूँ पाप है। काहू कौ पाप न देखनौं, न सुननौं और न काहू सौं कहनौं ही।

व्यापक कूँ खेजिवेकी नहीं, अपितु पहँचानिवेकी आवश्यकता है।

जबतक कछु लौकिक व्यवहार करनौं पर है, तबतक मन स्थिर नहीं है सकै।

जा साधक कौ मन निरन्तर अपने इष्टमें ही जुट्यौ रहै है, बाकूँ और काऊ सद्‌ग्रन्थकी जानकारी करिवेकी आवश्यकता नायँ। यदि जानकारी है, तौ उत्तम और यदि नहीं है, तौ हू उत्तम।

दस नामापराध—(१) गुरु-अवज्ञा, (२) साधु-महात्मानकी निन्दा, (३) श्रीभगवान् शिव और विष्णुमें भेद-भाव, (४) वेद-निन्दा, (५) श्रीभगवन्नामकी महिमा कूँ अर्थवाद समझनौं, (६) नाम लैवेमें पाखण्ड फैलानौं, (७) आलसी तथा नास्तिकन कूँ श्रीभगवन्नाम कौ उपदेश करनौं, (८) श्रीभगवन्नाममें अनादर-बुद्धि करनौं, (९) श्रीभगवन्नामके बल पै पाप करनौ और (१०) श्रीभगवन्नाम कूँ भूल जानौं। साधक कूँ इनको सर्वथा त्याग करनौं चहिए।

सत्त्वमें प्रकाश है। जब सत्त्वकी वृद्धि होय है, तब विवेक-शक्तिकी जाग्रति होय है और तब ही सत्-असत् वस्तुकौ ज्ञान होय है। फिर श्रद्धा होय है, फिर भाव होय है, तब फिर प्रेम होय है।

सकामी पुरुषनके संग सौं साधु पै हू कामकी बौछार परि जायँ हैं। जासौं श्रीभगवत्प्राप्तिमें बहुत ही अन्तराय उपस्थित है जाय है। या कारण जहाँ ताँईं बच्यौ जाय, बचै इन सकामीनके संग सौं। यदि सुसंग न मिलै, तौ भले ही अकेलौ ही रहले, परंतु कुसंग न करै और साधु कूँ तौ अकेलौ ही रहकें निरन्तर अपने प्रियतमको संग करिवेकौ ही अभ्यास करते रहनौं चहिए। याहीमें साधुकौ कल्याण है और यही परम कर्तव्य हू है।

काहू सच्चरित्र कूँ अधिक पढ़िवे, सुनिवे, कहवे और केवल विचार करिवेकी अपेक्षा वाके आचरण पै ही अधिक जोर देनौं चहिए। बिना आचरण किये पढ़िवौ, सुनिवौ कहिवौ और विचारिवौ सब निरर्थक ही है। काहू बात कूँ दूसरेन कूँ उपदेश दैवेके उद्देश्य सौं न पढ़ै, न सुनैं। केवल अपने आचरण करिवेके उद्देश्य सौं ही पढ़ै, सुनैं अथवा विचारै।

सत्त्वकी वृद्धिमें द्वै वस्तु प्रधान हैं—

(१) सात्त्विक संग तथा (२) सात्त्विक आहार।

यदि ये दौनौं हुंगे, तौ वृत्तिमें सतोगुण बढ़तौ ही जायगौ। सत्त्वके बढ़िवे सौं सहन-शक्ति बढ़ैगी, तब फिर स्थिर होयगी।

जब श्रीसद्गुरुमें श्रीभगवत्-बुद्धि होय, तब ही साधक प्रेमी बनैं है और जब श्रीसद्गुरु कूँ केवल संत ही समझ्यौ जाय है, तब साधक सौं केवल साधन ही बनि पावै है। साधकके जीवनमें ताप, क्लेश अवश्य ही हौने चहिए। बिना ताप, क्लेशके साधक मृत-प्राय है। जाके जीवनमें दोऊ वस्तु हैं, वही जीवित है।

(१) **ताप कौ अर्थ है**—प्रियतमके मिलनकी तड़पन होय। जीवनधन कौ दर्शन नहीं भयौ, तज्जन्य विषाद होय, अभाव खटकतौ ही रहै। कैसैं मिलिंगे? कब मिलिंगे? याही चिन्तामें तन-मन-प्राण झुलसते ही रहैं। यह है ताप।

(२) **क्लेश कौ अर्थ है**—अपने प्रियतमके मिलनकी बाधक वस्तुननें घेरि लियौ हूँ। ये मेरे मार्ग सौं नहीं हटि रही हैं, तज्जन्य दुःख ही कलेश है। ये दौनौं साधकके जीवनमें परम आवश्यक हैं।

जाकौ जीवन सूधौ-सादौ है, वही साधु है।

श्रीभगवत्-कृपाकी सँभार करतौ चलै और परदोष-दर्शन सौं बचतौ चलै।

व्यवहार ही आध्यात्मकी छाया है। यदि व्यवहारमें त्रुटि है, तौ आध्यात्ममें हूँ त्रुटि होयगी। यदि व्यवहार शुद्ध है, तौ आध्यात्म हूँ शुद्ध होयगौ।

स्वभाव अत्युत्तम होय। मनमें चंचलता नहीं, चपलता नहीं, ओछोपन नहीं, तर्क नहीं, विवाद नहीं और लक्ष्य होय केवल श्रीभगवत्-प्रेम। तब ही वस्तु हाथ लगै है।

साधकके ताँईं इन तीननकी विशेष आवश्यकता है—श्रद्धा, वैराग्य और पवित्रतम जीवन।

श्रद्धा तौ सरल और विनीत हृदयमें ही टिकै है। चतुरता आइ कि श्रद्धा भागी। श्रद्धा कूँ तौ भोरौ भारौ चहिए। जा हृदयमें श्रद्धा होय है, वाहीमें वैराग्य होय है तथा जहाँ श्रद्धा और वैराग्य दौनौं हुंगें, वाही कौ जीवन पवित्रतम बनैगौ।

साधन करिवे सौं ही साधकके अन्तःकरणमें श्रद्धाके रोकिवेकी शक्ति प्राप्त होय है। तब ही प्रेमरूपी अमूल्य रतन टिक पावै है अन्यथा तौ नहीं। यदि कोई महापुरुष अनुग्रह करिकैं दै हू दैयँ, तौ वह स्थायी नहीं रह पावै है। क्यौंकि वस्तु पात्रमें ही टिकै है और पात्रता आवै है, साधन करिवे सौं ही।

श्रद्धामें ऐसी सामर्थ है कि वस्तु न होते भये हू प्रकट करि देय है और विश्वास श्रीभगवान् कौ ही स्वरूप है। जाकौ विश्वास जितनौं दृढ़तम होयगौ, वह उतनौं ही अधिक उढ़तौ चल्यौ जायगौ।

'मैं इनकौ हूँ'—जाकी ऐसी मान्यता है, वह साधक और केवल ये ही मेरे हैं, जाकी ऐसी मान्यता है, वह है सिद्धावस्था। इनसौं कछु नहीं लैनौं और अपनौं सब कछु इनकूँ **(प्रभु कूँ)** ही दैनौं—यह है प्रेम। जो करै, केवल इनके ही ताँईं करै। अपने ताँईं कछु न करै।

यदि ये तीन बात हौयँ, तौ श्रीभगवत्-प्राप्तिमें कोई संदेह नहीं—

(१) श्रीप्रियतमके नाम और चिन्तन कौ अवलम्ब, (२) श्रीधाम कौ वास और (३) श्रीभगवान्‌के स्नेही जनन सौं स्नेह, सौख्य, सौहार्द।

साधक कूँ निरन्तर अपनी रहनी, स्वभाव, वृत्ति, आचरण, आहार, व्यवहार, साधन, श्रद्धा और लक्ष्य कौ निरीक्षण करते रहनौं चहिए। ये सब कामना और कुसंगके शिकार तौ नहीं बनि रहे हैं? यदि हाँ, तौ सावधान! इनकौ उत्तरोत्तर परिमार्जन हौंतौ रहनौं चहिए। इनके बिगारिवेवारी वस्तु, व्यक्ति, स्थान कौ तुरंत (तत्काल) परित्याग करि दे। अन्यथा तौ पतन निश्चित है।

श्रीभगवत्-प्रेमकी प्राप्ति ही जीवन कौ अन्तिम लक्ष्य है। श्रद्धा, भक्ति और प्रेम-प्राप्ति कौं सर्वोत्तम उपाय है।

नाममें आसक्ति अवश्य हौनी चहिए। नाम कौ नियमित जप करिवे सौं स्वयं आसक्ति है जाय है।

श्रीभगवत्-विग्रह-दर्शन, श्रीभगवत्-चिन्तन, श्रीभगवत्-गुणानुवाद, श्रीभगवत्-भक्तन कौ संग तथा इनकी सेवा करिवे सौं, अतिशीघ्र श्रीभगवत्-प्रेमकी प्राप्ति होय है।

जिह्वा पै श्रीभगवन्नाम होय, मनमें प्रियतमकी मीठी-मीठी याद होय, नेत्रनमें अश्रुधारा होय और हृदयमें अपने प्राणाधार श्रीप्रभु सौं मिलनकी चटपटी होय, यासौं बढ़िकैं साधक कौ और का सौभाग्य है सकै है अर्थात् यही परम सौभाग्यके लक्षण हैं—

रूप छके झूमत रहैं, तन कौ तनक न ध्यान।
नारायण दृग जल भरे, यहै प्रेम पहचान॥

आवेशमें आयकैं कोई काम न करि डारै। श्रद्धामें आवेश नहीं होय है। अविचल गम्भीरता और धैर्य होय है—

(१) आत्म-विश्वास, (२) श्रम करिवे कौ स्वभाव, (३) समय नष्ट न करिवेकी सजगता, (४) अनुशासनमें रहवे कौ अभ्यास और (५) लक्ष्यकी दृढ़ता—ये सब आध्यात्ममें सफलता पायवेकी कुंजी है।

यदि आप याही जीवनमें मुक्त हौनौं चाहौ हौ, यदि भगवत्-प्राप्ति करनौं चाहौ हौ और अपनौं परलोक बनानौ चाहौ हौ तौ—भूल जाऔ कि कोई आशीर्वाद दै देगौ और ईश्वर मिलि जायगौ, ज्ञान है जायगौ या समाधी लगि जायगी। हाँ, ऐसौ है तौ जाय है, परंतु वह निष्फल हो रहै है। वासौं कौई स्थाई लाभ नहीं होय है। अपने किये बिना जो कछु होयगौ अथवा जो कछु मिलैगौ, वह केवल धोखौ ही होयगौ। यह भूल ही जाऔ कि परमार्थ पायवे कौ कोई सरल छूमन्तर हू है। अपनौं सर्वस्व समर्पण किये बिना, अपनौं अस्तित्व मिटाये बिना परमार्थकी प्राप्ति न कबहूँ काहू कूँ भई और न कबहूँ काहू कूँ है सकै। भूल जाऔ कि सब कछु खाते हू रहोगे, सब कछु करते हू रहोगे और ज्ञान, भक्ति अथवा समाधीकी प्राप्ति हू है जायगी। आचरणकी शुद्धि बिना काहू साधन-मार्गमें सफलता नहीं मिलै है। आचरणकी शुद्धि सौं तात्पर्य है, प्रत्येक इन्द्रिय कौ शास्त्रोक्त संयमित आचरण और आहारकी शुद्धि। यदि जीवन सौं असत्य, असदाचरण दूरि नहीं भयौ तौ परमार्थमें प्रवेश नहीं है सकै है।

खुले नेत्र अथवा ध्यानमें अथवा स्वप्नमें कछु भगवज्जन्य वस्तु कौ दीखि जानौं अथवा सुनाई परि जायवे कौ ही नाम परमार्थ नहीं हैं। भले ही वह कोई ज्योतिस्वरूप या श्रीभगवान् ही क्यौं न हौयँ।

श्रीभगवत्-दर्शन कौ अर्थ—श्रीभगवान् कौ दीखि जानौं ही

नहीं है। तन-मनकी कोई अवस्था विशेष जो कछु काल रहकैं समाप्त है जाय, वाकौ नाम हू परमार्थ नहीं हैं। वाकूँ भले ही समाधि कहौ या साक्षात्कार अथवा और कछु। केवल बौद्धिक ज्ञान कौ हू नाम परमार्थ नहीं। भले ही वा ज्ञानके द्वारा वेद-उपनिषद्के कठिनतम ग्रन्थनकी व्याख्या हू क्यौं न करि लई जाय अथवा दूसरेन कूँ पढ़ाय हू क्यौं न दियौ जाय।

भगवत्-दर्शन कौ अर्थ है—जाके देखिवे, सुनिवे सौं अपने तन-मन-प्राण एक वा परमानन्दसिन्धुमें डूबि जायँ, जहाँ जायकैं संसारके सबरे सुख, भोग, नीरस, वेस्वाद लगिवे लगि जायँ तथा संसार और शरीरकी हू किंचित् स्मृतितक हू नहीं आवै। ऐसौ भयौ, तौ जानौं कि भगवत्-दर्शन भयौ। याही कौ नाम है परमार्थ।

समाधिकी सफलता तौ संसारके समस्त व्यवहारन सौं सदाँके ताँईं अरुचि है जायवेमें ही है। बहिर्मुखताकी सम्पूर्ण निवृत्ति है जायवेमें ही है। यदि ये सब जीवनमें सौं पूर्णरूपेण पलायन करि चुके हैं, तौ समाधि ठीक। अन्यथा तौ निद्राके समान निष्फल ही है।

ज्ञानकी सफलता तौ तब ही मानी जाय है, जब समस्त विषयन सौं आसक्ति एकदम टूटि जाय। वह ज्ञान कैसौ? जाके है वे पै विषयनके आसक्तिरूपी अन्धकारमें जीव भटकतौ ही रहै। जो समस्त विषयासक्तिन कूँ मिटाय दे, वही है ज्ञान।

परमार्थ है—व्यक्तित्व कौ मिटि जानौं।

परमार्थ है—देहासक्ति कौ निर्मूल है जानौं।

परमार्थ है—देह एवं देहके नामके ताँईं उठिवे वारी समस्त इच्छान कौ निर्मूल है जानौं।

परमार्थकी प्राप्ति योग सौं, भक्ति सौं और ज्ञान सौं है सकै है और होय है। परंतु ध्यान राखिवेकी बात है यह कि जो जा पथ कौ अधिकारी होय वाकूँ वही पथ अपनानौं चहिए—

(१) जो स्वस्थ, संयमी, नियम-निष्ठ हौयँ, वे योग कौ मार्ग अपनाय सकैं हैं।

(२) जो तर्क, कुतर्करहित बुद्धि, श्रद्धालु, भावुक हौयँ, उनकूँ ही भक्ति-मार्ग अपनानौं चहिए।

(३) जो अतिशय विरक्त, तर्कशील बुद्धि, सहज वासना-विमुख-स्वभाव, कठोर हृदय हौयँ, वे ही ज्ञान-मार्गमें सफलता प्राप्त करि पावैं हैं। सबनके ताँईं एक मार्ग है, जो अति सरल हू है और अति कठिन हूँ। अति कठिन यह है कि कोई परमार्थ पूर्ण महापुरुष पानौं होयगौ और अति सरल यह है कि ऐसे महापुरुषमें सच्ची आसक्ति करिवे सौं, उनके श्रीचरण-कमलनमें अपनौं पूर्ण समर्पण करिवे सौं, सहजहीमें काम बनि जायगौ।

श्रीभगवत्-प्राप्तिकी सबसौं बड़ी तीन बाधा हैं—

(१) **अहंकार,** (२) **आसक्ति** और (३) **असंयम।**

अहंकार—जाति कौ, रूप कौ, पद कौ, धन कौ, यौवन कौ, जानकारी कौ, विद्या कौ, बुद्धि कौ, साधन कौ, भजन कौ, सदाचार कौ और अपनी सरलता, विनम्रता, निरहंकारिता कौ हू एक अहंकार होय है, जो साधकमें भीतर-ही-भीतर घुनकी भाँति रात-दिन लग्यौ ही रहै है कि मैं बड़ौ ही विनम्र हूँ, बड़ौ ही सरल हूँ, बड़ौ ही निरहंकारी हूँ। ये सब प्रकारके अहंकारन कौ सर्वथा त्याग किये बिना आध्यात्म-पथमें प्रवेश है ही नहीं सकै।

आसक्ति—परिवारकी, स्वजनकी, शरीरकी, समाजकी और देशकी। जब ताँईं इन सबन कौ पूर्ण त्याग नहीं होयगौ, तब ताँईं आध्यात्ममें प्रवेश है ही नहीं सकै।

असंयम—वाणीमें, मनमें, इन्द्रियनमें, उपार्जनमें, भाषणमें, भोजनमें और समयमें काहू प्रकार कौ असंयम साधकके ताँईं पाप ही है। याके छोड़े बिना उत्थान सम्भव ही नहीं। परमार्थके पथमें चले भये ठीक-ठीक दो पग हू मिटैं नहीं है अर्थात् निरर्थक नहीं जायँ हैं। जो चलि रह्यौ है वह पहुँचैगौ अवश्य ही। भले ही समय कितनौं हू लगि जाय? अतः चलते ही रहनौं चहिए, रुकनौं नहीं चहिए।

श्रीभगवत्साक्षात्कार होय है, महापुरुषकी प्राप्ति सौं। बिना महापुरुषकी कृपाके यह पथ हाथ नहीं आवै है।

कोई होय, कैसौ हू होय, यदि भजन नहीं करै है, तौ धौखेमें ही है।

बिना भजनके अनर्थ-निवृत्ति नहीं है सकै है।

श्रीसद्गुरु-वाक्यमें कछु विचार नहीं करनौं चहिए, वह तो सर्वथा परिपालनीय ही है—

(१) मन ही कल्पना करै है, (२) मन ही देखै है, (३) मन ही छूवै है, (४) मन ही सेवा करै है, (५) मन ही बतरावै है, (६) मन ही सुनै है, (७) मन ही समीपता कौ अनुभव करै है और (८) मन ही विप्रयोग (विरह)-की कल्पना करै है। यह कल्पना-राज्य है। सब कछु कल्पना करनी ही परै है, मानौं ऐसौ है रह्यौ है।

कल्पनात्मक वस्तुके दो प्रकार हैं—(१) जो वहाँ जायकैं अर्थात् श्रीभगवत्-धाममें जायकैं करनौं है, वाकूँ अबही सौं स्मरण, चिन्तन, सेवा, पूजा, स्तवनके रूपमें मनके द्वारा करि चलैं। ये वर्तमान-कालकी क्रिया है, यासौं मृत्यु भई न कि पहुँचे लीलामें।

(२) जब जीवनधन मिलिंगे, उनकौ सांनिध्य होयगौ, तब यह करूँगौ, वह करूँगौ, ऐसौ होयगौ, वैसौ होयगौ, यह होयगौ, वह होयगौ, यह है भविष्य-कालकी क्रिया। यासौं कामना बनै है, प्रियतमके समीप रहवे की। सौचै इनकूँ, विचारै इनकूँ, देखै इनकूँ, सुनै इनकूँ, बौलै इनकूँ, छूवै इनकूँ, खावै इनकूँ, सोवै इनकूँ। इनके ताँईं करते-करते एक दिन सब कछु इनकूँ ही है जायगौ। अपने ताँईं कछु हू वाकी नहीं रहैगौ। यही है—'**मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।**' (गीता १२। ८)

सात बात—प्रतिदिन यही सोचनौं—(१) हमारौ मार्ग कितनौं तय भयौ? अपने जीवनधनकी ओर हम कल सौं आज कितने आगे बढ़े?

(२) श्रीप्राणबल्लभकी स्मृति अधिकाधिक रहनी चहिए। प्राणनाथ (अधिकाधिक) उत्तरोत्तर मीठे ही लगते रहने चहिए। इनकी चर्चा मीठी लगती रहनी चहिए। इनकी बात प्राणप्यारी लगती रहनी चहिए। संसारकी चर्चा कड़ुवी लगनी चहिए। तब समझनौं कि हम आगे बढ़ि रहे हैं।

(३) प्रतिदिन हम यह देखते रहैं कि अपने मन, इन्द्रिय सब श्रीभगवान्की सेवामें लगि रहे हैं अथवा नहीं। मनके लगिवे कौ अर्थ है—मनकी आँखिन सौं प्रभु कबहूँ सामने बैठे, तौ कबहूँ ठाढ़े, तौ कबहूँ बतरावँते ही दीखैं। इन्द्रियन कौ लगनौं यह है कि प्रत्येक इन्द्रियकी जो कछु चेष्टा होय, वह केवल श्रीजीवनधन (प्रभु)-के ताँईं ही होय। जिह्वा सौं इनकौ नाम अविरल और अबाधगति सौं निरन्तर सोते, बैठते, जागते, चलते, फिरते, हर स्थितिमें चलतौ ही रहै। साथ ही मन सौं ऐसौ अनुभव होय कि जीवनधन स्वयं कृपा करिकैं कह-कहकैं मोसौं अपनौ काम कराय रहे हैं। यामें इतनी सावधानी अवश्य रहै कि निषिद्ध कार्यके करिवेकी प्रभु हमसौं कबहूँ नहीं कहैं हैं। यदि मनमें

अशुद्ध,विकारजनित काऊ वस्तु कौ चिन्तन अथवा स्फुरण होय, तौ वह अपनौं आमन्त्रित ही समझनौं चहिए और जो विशुद्ध, विकाररहित तथा श्रीभगवत्-सम्बन्धी होय, वाकूँ श्रीभगवत्-प्रेरणा ही समझनौं चहिए। जब श्रीभगवत्-प्रेरित शुभ स्फुरणा उठैं, तब खूब आनन्दित हौनौं चहिए। साथ ही क्रियामें लायवेकी चेष्टा हू करनी चहिए। जब अशुद्ध विकारजनित स्फुरणा उठैं, तब खूब रोय-रोय कैं अपने श्रीप्राणाधार, प्रियतम प्रभु सौं प्रार्थना करनी चहिए कि हे मेरे जीवनधन! जब मैं आपकौं हूँ, तब फिर यह आपसौं दूरि करिवे बारी बात मेरे मनमें क्यौं उठि रहीं हैं? कृपानाथ! आपकौ हैवेके पीछैं हू इनसौं मेरी पिछाई नहीं छूटैगी का? ऐसौ करिवे सौं तत्काल शान्ति मिलैगी।

(४) जब-ही-जब प्रियतमकी स्मृति होय, तब-ही-तब यह समझनौं चहिए कि या स्मृतिके रूपमें मेरे जीवनसर्वस्व ही मेरे समीप पधारे हैं। आहा हा! कितनी कृपा है! यद्यपि पधारे तौ अपने मनसौं ही हैं, परंतु अब मैं इनकूँ छोड़ुँगौ ही नहीं। इनकूँ खूब कसिकैं पकरे राखै। इनसौं मन-ही-मन बात करतौ रहै, इनकी माधुरी छवि कूँ निहारि-निहारिकैं मुग्ध हौंतौ रहै। निरन्तर इनकी स्मृति बनी रहै। एक क्षण हूँ मन इनकूँ छोड़िकैं इत-उतमें न झाँकै। बस, यह है इनकूँ कसिकैं पकरनौं।

(५) जब आये भये प्रियतम प्रभु कौ हमारे द्वारा या प्रकारसौं स्वागत होयगौ, तौ ये बार-बार, शीघ्र-शीघ्र आयवे लगिंगे। जितनी बार ये आयें उतनी बार ही हम इनसौं अपने पास ही रहवेकी प्रार्थना करिंगे, तौ फिर श्रीप्राणवल्लभ हमारी प्रार्थना सुनिकैं, सदाँ-सर्वदाँ हमारे निकट ही रहिवे लगि जायँगे। फिर कबहूँ हमें छोड़िकैं जायँगे ही नहीं।

(६) मनमें काहू प्रकारकी कोई उलझन नहीं आवन पावै। यदि सावधानी बर्तिवे पै हू कोई उलझन आयवे सौं न रुकै, तौ प्राणधन सौं कहिकैं निश्चिन्त है जाय। ये स्वयं ही उत्तम प्रकार सौं वाकूँ सुलझाय लैंगे।

(७) मनमें सदैव ऐसौ दृढ़ निश्चय बनै कि श्रीजीवनधन केवल मेरे ही हैं और मैं केवल अपने श्रीप्राणनाथ कौ ही हूँ। जैसैं परस्पर मैया कौ अपने अबोध शिशु पै तथा शिशु कौ मैया पै, पति कौ पत्नी पै और पत्नी कौ पति पै, मित्र कौ मित्र पै सर्वाधिकार सुरक्षित होय है, वैसैं ही मेरौ अपने प्रियतम पै और श्रीजीवनधन कौ मोपै पूर्ण अधिकार है। एकमात्र ये ही मेरे हैं। मो सदाँ-सदाँके अपने सौं ये कछु हू काम लै सकैं हैं।

इन सात बातन कूँ बिचारते, सोचते रहिवे सौं साधक शीघ्रातिशीघ्र संसारके प्रपंचन सौं मुक्त है कैं, प्रियतमके प्रेम-राज्यमें प्रवेश करि जाय है।

अपने स्वरूपमें ही स्थित रहै—मन कूँ इन्द्रियन सौं हटाय कैं, चिन्तनमें लगावै। बिचारनके वेग कूँ रोकै। बिचारके उद्गम-स्थान कूँ खोजे, ढूँढे और वहाँ जाय कैं शान्त है जाय। तबही श्रीभगवत्-तत्त्व कौ बोध हो गयौ। याही अन्तर्मुखी अवस्थामें नेत्रनके सम्मुख श्रीभगवान् नाँचते दिखायी दिंगे। निरन्तर याही प्रकाशमें रहनौं चहिए। यही सर्वोत्तम प्रकाश है। हमारी आत्मामें ही परमात्मा कौ निवास है तथा और सबके हृदयमें हूँ वही एक वस्यौ भयौ है। जाकूँ बाहर खोजिवेकी अपेक्षा पहले अपने भीतर ही खोजनौं चहिए अर्थात् अपने अन्तःकरण कूँ देखै, वहाँ प्रभुकौ अनुभव करै। शान्ति, आनन्द, सौहार्द, स्वास्थ्य आदिक सबरी वस्तु अपनेमें विद्यमान हैं हीं।

अपने अन्तःकरणमें श्रीभगवान् बिराजमान हैं, याकौ विश्वास राखै। इनके अनुग्रह पै सदैव निर्भर रहै। बाहरी बिचारन सौं

निवृत्त है जाय। जो अन्तर्मुखी है कैं आत्म-जीवन व्यतीत करैं हैं, यथार्थमें वे ही संत हैं। भले ही वह ग्रहस्थ ही क्यों न हौयँ। जो मन कूँ इन्द्रियनके साथ घुमावै है, वह तौ अपने कूँ साधु दिखाते भये हू पामर ही है। तटस्थ है कैं देखै, संसार कूँ नाटक समझै, याकी ओर बिना आसक्तिके देखै। अन्तमें मानसिक प्रपञ्चन सौं रहित है कैं आन्तरिक प्रकाश कूँ ही देखै। तब वह दिव्य आनन्दकी वर्षा अपने ऊपर चारौं ओर सौं हौंती दिखायी परैगी। यही है सर्वोत्तम ज्ञान। याही कौ अनुभव करै। **[एक साधकके विचार]**

देखौ प्राण-प्रियतम ठाढ़े हैं। नख सौं शिरतककी कैसी अपूर्व शोभा है। श्रीमुखारविन्द, हस्त-कमल और पाद-पद्मन कौ तौ कहनौं ही का? सर्वांग कौ सौन्दर्य ऐसौ अपूर्व है कि जहाँ हू एक बार दृष्टि परि जाय है, वहीं अटकी ही रह जाय है। फिर हटनौं ही नहीं चाहै है। नवीन जलधरके समान श्यामगात पै पीताम्बरकी अद्भुत शोभा मानौ श्यामघन बिजली सौं ओत-प्रोत होय। माथे पै रतन-जटित मुकुट, जापै मोर-पंख कैसौ झोटा लै रह्यौ है? उन्नत ललाट पै मैयानें कितनौं सुन्दर शृंगार कियौ है। फिर धनुषाकार भृकुटीनकी शोभा, आकर्ण विस्तृत, कमल-दलके समान विशाल, सुन्दर-मनोहर नयन।

अमी, हलाहल, मद-भरे सेत स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जिहिं चितवत एक बार॥

अहा हा! नासिका कौ माधुर्य। नासाग्रमें वेसर हालि रह्यौ है। शान्त, गम्भीर नील-समुद्र जैसे सुन्दर कपोल, फिर दोऊ समतुल्य बराबर शंखके सदृश घुमावदार कर्णनमें मकराकृत दिव्य कुण्डलनकी दिव्य छटा, दिव्य कपोलन पै देदीप्यमान है रही है। तामें मनोहर कौस्तुभ मणिनकी माला और वैजन्ती माला

तथा पारिजात (कमल), कुन्द, तुलसी, मन्दार आदिक सुगन्धित पुष्पन सौं बनी भई, कबहूँ ना मुरझायबे वारी माला, विशाल वक्षःस्थल पै अति सुशोभित है रहीं हैं। मनोहर पीताम्बरकी फहरान, जाके दर्शनमात्र सौं ब्रज-बनितन कौ मन उनके हाथन सौं निकरि कैं भागि जाय है, कैसौ प्यारी लगि रह्यौ है। लम्बी-लम्बी भुजन पै अंगदकी शोभा, हस्त-कमलनमें वलयकी शोभा और छोटी अँगुरियन सौं पकरिकैं, अपनी त्रिभुवन कूँ मोहिवे वारी, प्राण-प्यारी अलौकिक रागन सौं भरी भई बाँसुरी कूँ लाल-लाल अधरन पै धरिकैं, अपनी त्रिभंगीमें ठाढ़े है कैं, अपनी मस्तीमें कैसे बजाय रहे हैं? तिरछी चितवन तौ रसिकनकी जान ही निकारे दै रही है और वंशीकी ध्वनि तौ मानौ काननमें अमृत-रस ही घोरि-घोरि कैं भरे दै रही होय।

श्रीमुखारविन्द कौ सौन्दर्य और माधुर्य नैंन भरिकैं निहारि लीजौ? और कर्णन सौं वंशी कौ अमृत-रस हू पान करि लीजौं? तौ अब श्रीचरणनकी शोभा निरखौं?

श्रीजीवनधन राज-सिंहासन पै विराजि रहे हैं। सहस्र-सहस्र कमल-दलन पै श्रीचरणकमल ऐसे सुशोभित है रहे हैं कि मानौ कमलनके ढ़ेर पै द्वै विशेष कमल अलौकिक शोभा पाय रहे हौयँ। अहा हा। कैसे दिव्य, अप्राकृतिक, चिन्मय हैं ये श्रीचरणकमल। जिनके स्पर्शमात्र सौं अष्ट सात्त्विक सम्पदा **(अश्रु, कम्प, पुलक, स्वेद, स्वरभंग, स्तम्भ, वैवर्ण्य, प्रलय)** स्वयमेव उदय है रहीं हैं। श्याम रंगके आकाशरूपी श्रीचरणनमें तेजोदीप्त नखमणिरूपी चन्द्रिका छटकि रही है। मानौ दस चन्द्रमा एक ही साथ उदय है रहे हौयँ। नख सौं ऐड़ीतक एकदम सुरख लाल श्रीचरणतल, कैसो अलौकिक शोभा है या लालीको? प्राकृतिक जीव तौ महावर और महँदी

लगाय कैं अपने पावँनके एड़ी तरूआ लाल करै है, बेरि-बेरि रचावै है, परंतु फिर हू, वो लाली स्थायी नहीं रह पावै है और यह लाली तौ नित्य सहज एकरस, अमिट, अपरिवर्तित, अविचल ही रहवे बारी है।

अब प्राण-प्रियतमके बरवस मन कूँ आकर्षित करिवे बारे लाल-लाल श्रीचरण-तलनके सुखद मंगलमय शुभ चिह्नन कौ दर्शन करौ? चिह्न हैं ये। श्रीप्राणबल्लभ, साधक भावन, साधक प्राण, साधक पाल, साधक बत्सल, साधक वांछाकल्पतरु, साधक भवभयहारी, साधक कल्याणकारी, अतएव ये चिह्न धारण किये हैं श्रीचरण-तलन में। अपने लाढ़िले साधक कौ कल्याण करिबेके ताँईं, साधक कूँ सुख दैवेके ताँईं, श्रीप्राणनाथके दक्षिण पादांगुष्ठके तलमें यव-चिह्न सुशोभित है रह्यौ है। यव (जौ) एक प्रकार कौ धान्य होय है। यहाँ धान्य कौ अर्थ है सम्पत्ति। यही यव-चिह्न साधक कूँ सबरी दैवी सम्पदा प्रदान करै है।

दैवी सम्पदा का है? श्रीभगवत्प्राप्ति कौ साधन, वाके श्रीसद्गुण तथा सदाचार, जैसें—श्रद्धा, रति, भक्ति, ज्ञान, तप, तितिक्षा, त्याग, वैराग्य, उपरति, विवेक, आत्मीयता, अव्यर्थत्व, आत्मनिरीक्षण, अप्रमाद, भाव, प्रेमरस, विरह, निरभिमानता, सरलता, सुशीलता, उदारता, क्षमा, नम्रता, सहिष्णुता, गम्भीरता, धृति, मुग्धता, मैत्री, मितभुक्त्वता, दक्षता, समता, सहानुभूति, सेवा, संतोष, भावुकता, आचरणशुद्धि, **'मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य'** वृत्ति-सुधार तथा अक्षोभ, आदि-आदि सब दैवी सम्पदा यह प्रियतमके श्रीचरणतल कौ यव-चिह्न साधकमात्र कूँ प्रदान करै है। दूसरो चिह्न है चक्र। जैसें प्रणतपाल अपने सुदर्शन चक्र सौं दैत्य, दानव, असुरन कौ संहार करिकैं अपने प्रणत-

जननकी रक्षा करैं हैं। वैसें ही प्रियतमके श्रीचरणतल कौ यह चक्र-चिह्न हूँ साधकके मनकी आसुरी सम्पदा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—इन षट् रिपुन कौ अथवा काम, क्रोध, मन, उदर, रसना, वाणी—इन छः औनके वेग कौ संहार करै है। राग-द्वेष, स्वार्थ, अहंकार, घृणा, ईर्ष्या, असूया, आलस्य, तन्द्रा, उपेक्षा, बार-बार भूलनौं, कटूक्ति, कठोरता, अपमान, रुक्षता, छल-कपट, दम्भ आदिक अनेकानेक जो आसुरी सम्पदा जन्म-जन्म सौं साधकके हृदयमें घर करिकैं बैठी हैं, इन सबकूँ ये चक्र-चिह्न विदीर्ण करतौ ही रहै है।

या प्रकार जब साधकके भीतरके शत्रुन कौ संहार है जाय है, तब बाहरी शत्रु कहाँ टिक पावैं? या प्रकार साधकके भीतरी-बाहरी सब शत्रुन कौ नाश भयौ कि साधक अजात शत्रु बन्यौ कि अविचल शान्ति आयी। यह कार्य करै है। यह है प्राणनाथके चरणतल कौ चक्र-चिह्न। याकी एक बगलमें वज्र-चिह्न हू अपनी अद्भुत छटा वर्षाय रह्यौ है। जैसें इन्द्र कौ वज्र विशाल-सौं-विशाल पहाड़न कूँ क्षणमें चूर-चूर करि डारै है, वैसें ही साधकके जन्म-जन्मके पापनके पहाड़न कूँ यह श्रीजीवनधनके श्रीचरणतल कौ वज्र-चिह्न क्षणमें ही चूर-चूर करि डारै है। जब साधकके पाप समूल नष्ट है जायँ हैं, तब साधक निष्पाप है कैं सत्त्वकी ओर अग्रसरित होय है। जब साधक सतोगुणके राज्यमें प्रवेश करै है, तब बुद्धि निर्मल बनै है। तब ही पवित्र विचार उठैं हैं और तब ही अन्तर्मुखी बनै है।

जब साधक अन्तर्मुखी है जाय है, तब ही विवेककी जाग्रति होय है, तब ही साधक जितेन्द्रिय बनै है तथा तब ही आत्मबल दृढ़ होय है। श्रीजीवनधनके श्रीचरणतलमें एक चिह्न है अंकुश। जो साधकके दुर्जय मन कूँ अपने अंकुशमें राखै है। जैसें वनमें

विचरण करिवे बारे मदमत्त गज कूँ अंकुश सौं ही बसमें कियौ जाय है, वैसें ही साधकके विषयरूपी वनमें स्वच्छन्द विचरण करिवे बारे मनकूँ प्रभुके श्रीचरणतलको यह अंकुश-चिह्न दर्शन करिवेमात्र सौं ही बसमें करि लेय है। मन या अंकुशकी मार सौं बहुत ही घबरावै है। या कारण याकूँ देखते ही अपनी सब चञ्चलता छोड़िकैं परम शान्त है जाय है। यही कारण है कि जब साधक प्रभुके श्रीचरणन कौ चिन्तन करिवे लगि जाय है, तौ जितने मांगलिक चिह्न हैं, वे सब श्रीचरणनके साथ ही साधकके मनमें आय कैं बिराजि जायँ हैं और फिर उनके भय सौं मनके समस्त विकार साधकके मन कूँ तुरंत ही छोड़िकैं भागि जायँ हैं। याही कारण प्रभुके श्रीचरणनके चिन्तन कौ विधान संत और शास्त्रनने बतायौ है। अब आयौ कमल-चिह्न कौ नम्बर। जैसें भ्रमर अन्य पुष्पन पै तबतक ही गुंजारतौ फिरै है, जबतक वाकूँ कमल कौ दर्शन नहीं होय है। जैसें ही कमल कौ दर्शन भयौ कि तुरंत ही अन्य पुष्पन कूँ छोड़िकैं धायकैं कमल पै जाय पहुँचै और फिर अपनी सब चञ्चलता कूँ छोड़िकैं कमलकी सुन्दरतामें ऐसौ मुग्ध है जाय है कि फिर वाकूँ छोड़िकैं अन्यत्र जाय ही नहीं है और सूर्यास्त होते ही कमल बंद है जाय है। या प्रकार कमल कौ रसिक भ्रमर हू साथ ही बंद है जाय है। ठीक वैसें ही साधक कौ मनरूपी भ्रमर तबतक ही विषयरूपी पुष्पनमें स्वाद लेय है, जब ताँईं याकूँ प्रभुके कमलरूपी श्रीचरणनकी शरण नहीं मिल जाय है। जैसें ही चिन्तन सौं श्रीचरण-कमलन कौ सांनिध्य मिल्यौ कि फिर तौ यह ऐसौ मस्त है जाय है कि याकूँ अपनी कछु सुधि-बुधि ही नहीं रहै है और तब ही श्रीजीवनधन याकूँ ऐसौ पकरि लेयँ हैं कि फिर यह इनकूँ छोड़िकैं भागि ही नहीं सकै है। तब ही साधक इनकौ ही है कैं

जीवै है और तब ये मुक्तकण्ठ सौं कहैं कि साधक मेरौ! मेरौ!! मेरौ!!! यासौ अधिक साधक कौ और सौभाग्य, परम सौभाग्य है हू का सकै है? तब श्रीचरणनकी शरण सौं साधकको विकारन पै विजय-पताका फहराय जाय है। विजय-ही-विजय होती चली जाय है, पराजय नहीं। कल्याण-ही-कल्याण हौतौ दिखायी परै है, अकल्याण नहीं।

ऐसें साधकको गाड़ी उन्नतिके शिखरकी ओर उत्तरोत्तर बढ़ती ही दिखायी परै है, विघ्न-बाधा आवैं ही नहीं। तऊ कबहूँ-कबहूँ आभास सौ तौ होय है। कबहूँ विघ्न-बाधा आवै हूँ हैं, किंतु हानि नहीं करि पावैं है। उलटी सेवा ही करि जायँ हैं। सहारौ ही लगाय जायँ हैं। जो सेवा करि जायँ, सहारौ लगाय जायँ, वह विघ्न कैसें? श्रीप्रियतमके श्रीचरणतल कौ ध्वजा-चिह्न यही सूचित करै है।

एक ही लाइनमें हैं चक्र-वज्र और ध्वजा। अब श्रीवाम-चरणांगुष्ठके नीचैं शंख-चिह्न अपनी निराली छटा छटकाय रह्यौ है। यह शंख-चिह्न साधक कूँ सबरी विद्या, ज्ञान और विज्ञान प्रदान करै है। फिर श्रीचरण सौ प्राप्त हैं भक्ति महारानी। भक्ति महारानी तौ साधक कूँ वैसें ही सब वेद-वेदान्त कौ सार, शास्त्र, पुराण, इतिहास कौ निचोर, तत्त्वज्ञान और सांख्य कौ मर्म प्रदान करैं हैं। तब वह सूक्ष्म-सौं-सूक्ष्म, कठिन-सौं-कठिन विषय कौ ज्ञाता है जाय है। मुक्त-संशय है जाय है।

श्रीप्राणनाथ कौ कैसौ अनुग्रह, कृपा तथा करुणा है कि निरन्तर साधक कौ कल्याण करनौं, सोचनौं, एक-एक चेष्टा साधकके ताँईं—**'कं वा दयालुं शरणं व्रजेम।'** आहा, हा! परमपूज्य ये श्रीचरण-कमल! कितने कोमल हैं? जैसें रुई कौ फोहा,मक्खन कौ लौंदा, सुकुमार इतने कि शोणित ऐसौ तम-तम

करि रह्यौ है कि अब फूट्यौ, अब फूट्यौ। डर लगै है कि कहूँ अँगुरिया न छू जाय। यदि छूइ गई, तौ लगि जायगी।

ब्रजबाला हू इन श्रीचरण-कमलन कूँ अपने वक्ष:स्थल सौं बड़ी डरती-डरती लगावैं हैं। जब ये परम-परम सुकुमारि ब्रजबाला हू लगिवेके भय सौं सशंकित रहैं हैं, तब और कौनकी सामर्थ्य कि इन श्रीचरणन कौ स्पर्श निश्चिन्तता सौं करि सकै, ऐसे हैं ये मधुरातिमधुर श्रीचरण, जिनमें नूपुरकी शोभा कैसी प्यारी-मनोहारी है, जो यक्ष, नाग, नर, गन्धर्व, किन्नर, सुर और सुरबालान कौ मन निरन्तर अपनी ओर आकर्षित करती ही रहै है। ये सब तड़फि-तड़फि कैं ही, मन मारि-मारि कैं ही रह जायँ हैं। परंतु इनकौ साहस ही नहीं परै है कि ये इन परम सुकुमार श्रीचरन-कमलन कौ किंचित् हू स्पर्श करि सकैं। ऐसे परम आकर्षक हैं ये श्रीचरण-कमल।

ब्रह्मलोकमें पितामह श्रीब्रह्माजी और वैकुण्ठमें जगज्जननी श्रीमहालक्ष्मी अहर्निश जिन श्रीचरण-कमलनकी सेवा करैं हैं। निरन्तर एक ही चिन्ता, कैसें ये सुखी रहैं? वे ही श्रीचरण-कमल हैं ये। कटि-लसित पीताम्बरीकी शोभा तौ देखते ही बनै है। बापै हू कटि काछनी और फिर ऊपर बँधी कौधनी मानौ सौनेमें सुगन्ध। पीपरके पत्ताके समान सुडौल त्रिवली-युक्त उदर, वामें गोल-गम्भीर नाभि, जो स्वाँस-प्रति-स्वाँस पै बार-बार बदलती आकृतिमें दर्शन दैकैं मन कूँ परमानन्दके सागरमें डुबाय रह्यौ है। विशाल वक्ष:स्थल, उदार वक्ष:स्थल मृगेन्द्र-शावकके समान विस्तृत वक्ष:स्थल पै श्रीवत्स-चिह्न ऐसौ शोभायमान है रह्यौ है, मानौ महामरकतमणिकी शिला पै स्वर्ण-कान्तमणि जुड़ी भई होय। दौनौं स्कन्ध मानौ सिंह-कन्धके समान अद्भुत हौयँ।

या प्रकार साधक कूँ अपने श्रीजीवनधनके समस्त मंगलमय

श्रीविग्रह कौ आस्वादन करनौ चहिए। मनमें यह मान लैनौं चहिए कि मोकूँ अब समस्त सम्पत्ति बिलसिवे कूँ मिलि गई। खूब भरि पेट बिलसै। चिन्तनके ताँईं एक आधारभूत सामग्री मिलि गई। अपनी श्रद्धा, साधन और लक्ष्यमें पूर्ण दृढ़ता रहनी चहिए। या प्रकार निरन्तर अपने जीवन-सर्वस्व कौ सांनिध्य ही करतौ रहै। लगि जाय पूरे मन सौं, पूरी तत्परता सौं, अप्रमादपूर्वक, बहानेबाजी न करे। यही अपनौं परम-कर्तव्य है, परम-धर्म है। याहीमें डूबतौ रहै। ऐसौ डूबै कि फिर संसारकी तौ का चलै, शरीरकी हू सब सुधि-बुधि खोय जाय। यहू पतौ नहीं चलै कि सूर्योदय पूर्व दिशामें भयौ है कि पश्चिममें।

या प्रकार डूबत-डूबत ऐसौ डूबि जाय कि अन्ततोगत्वा अपने प्राणधनकी नित्य सेवामें पहुँचि जाय। क्योंकि अध्यात्मकी समस्त उपलब्धि कृपा-साध्य ही मानी जायँ हैं, परंतु फिरि हू ऐसौ मानिकैं अपने कर्तव्य-पालनमें, अपने लगिवेमें, करिवेमें, किंचित् हू कमी नहीं छोड़ै। पूरी तत्परता सौं, पूरी सत्यता सौं, पूरी लगन सौं करते भये हू मनमें अवलम्बन राखै कृपा कौ ही।

मोह होय है धनमें, परिवारमें, शरीरमें और मान-प्रतिष्ठामें। मन जा वस्तु कूँ अपनी मानै है, वाहीमें मोह है जाय है तथा यही मोह जितने हू दुर्गुण हैं—रज, तम, क्रोधादिक विकारन कूँ बुलाय लेय है। कहवे कौ तात्पर्य है कि मोह ही शत्रुन कौ पोषण करै है। सारांश है, जबतक सबरे दुर्गुण अपनी जननी ममताके साथ नष्ट नहीं है जायँगे, तबतक श्रीभगवत्स्मृति नहीं है सकै है। असाध्य ही रहै है।

यह महामहावाक्य है—चारौं वेद, छहौं शास्त्र और सबरे पुराण यही उपदेश करैं हैं कि निन्दा काहूकी न करै। महावाक्य है—

'पर निंदा सम अघ न गरीसा॥'

(रा० च० मा० ७। १२१। २२)

परनिन्दाके समान भारी पाप नहीं है।

साधन-कालमें साधन कूँ कठोर आत्म-संयम, अदम्य इच्छा-शक्ति और दुर्जय आत्म-विश्वासकी आवश्यकता है।

साधक इन दोऊ बातन कौ बहुत ही ख्याल राखै—

१-शरीरकी स्वस्थता कौ और २-मनकी शान्ति कौ।

कैसी हू परिस्थिति आय जाय, किंतु अपनी शान्ति भंग न होय! यही मनुष्यता है, यही साधुता है। वस्तुतः यही परम कर्तव्य है।

जहाँ ताँई है सकै, हम सदैव शुभ कार्य करिवे कौ ही विचार राखैं। हमारे विषयमें लोग बहुत-सी आलोचना करिंगे, किंतु हमें चहिए कि हम काहूके विषयमें न कछु कहैं, न कछु विचारैं। प्रत्युत अपने सौं जो भूल है गई होय, वाकूँ भविष्यमें सुधरिवे कौ प्रयत्न ही करते रहनौ चहिए। बहुत ही बचै उत्तेजना सौं और अभ्यास बढ़ावै सरलता तथा दीनता कौ।

साधन-कालमें साधकके ताँई परमावश्यक है कि—
भजनकौ नियम निश्चित होय। प्राणपण सौं पालन होय। अप्रमाद, अनवधानता। उत्साह और प्रेमपूर्वक होय। बिना प्रयत्नके रसना नाम जपिवे लगै, ऐसौ अभ्यास होय। वाणीकौ सदुपयोग अधिक-सौं-अधिक नाम जपिवेमें ही समझै। शुद्ध-आचरण करै। यथाशक्ति बोलिवे सौं बचै। एकान्तमें लयके साथ नाम-जप करै। जैसैं दूध कूँ बड़े ही स्वाद सौं घूँटि-घूँटि कै पीवैं हैं, वैसैं ही सुस्वादपूर्वक श्रीनामामृतकौ पान करै। श्रीनाम जपते-जपते अति आनन्दित हौनौं।

भजनमें सहायक— श्रद्धा, शुद्धाचरण, शुद्धान्तःकरण, शुद्धतम विचार, अपरसमें रहनौं (बिकारन सौं स्पर्शरहित), पूर्ण साधुता, नम्रता, सुशीलता, मार्दव, निरभिमानता एवं सरलता, हित-मिताहार, एकान्त-वास, युक्त स्वप्नावबोध, चिन्ता-राहित्य, स्वच्छ वायु, स्वास्थ्य, भावावेश, भजनके बाधकन सौं सर्वथा बचनौ, परदोष-अदर्शनकौ पूर्ण अभ्यास, परचर्चा-राहित्य, स्त्री-सम्पर्कसौं सर्वथा बचनौं, अधिकाहारसौं सर्वथा बचनौं, भजन, अत्याहार, नियम-पालन तथा आहारमें सर्वथा संकोचकौ त्याग, संयमी, तपस्वी, नियमनिष्ठ, श्रद्धालु, भावुक, पवित्र तथा प्रेमी बननौं, नियम-पालनमें पूर्ण-दृढ़ता, दृष्टि-संभार, विजय तथा पराजयकौ नित्य चिन्तन करि लैनौं, समयानुसार नितान्त एकान्तमें आत्मनिरीक्षण करनौं और विचार करनौं कि—

आत्मनिरीक्षण— अद्यावधि श्रीभगवत्-कृपा है, तब फिर भविष्यमें हू होयगी। अपनी नीचता? अपनी प्रतिज्ञा? भजनमें रुचि कैसी है? नियम-पालनमें प्रमाद तौ नहीं? साधनकी दिन-ब-दिन अवस्था कैसी है? इन्द्रियनकी पवित्रता? मनकी स्वच्छता? श्रद्धामें कमी तौ नायँ आय रही? आत्मोत्थान कितनौं? लोक-रञ्जन तौ नहीं है रह्यौ है? एकान्तप्रियता है या नहीं? काहूँ कूँ देखिवेकी, मिलिवेकी, बोलिवेकी, साथ चलिवेकी तथा कैसैं हूँ सम्पर्क करिवेकी इच्छा तौ नायँ बनि रही? निरासाकौ सर्वथा अभाव? इष्ट-बलकी पूर्णता? संसारसौं मात्र व्यवहार? संसारसौं अनासक्ति? प्राण-नाथके अनुग्रहकौ स्मरण? अवशिष्ट जीवनमें सफलताकौ ध्यान? इष्ट-निश्चय इष्टकौ तात्त्विक स्वरूप चिन्तन करनौं? लीलाकौ रहस्य-चिन्तन करनौं? अपनौं स्वरूप-चिन्तन करनौं? संसारकौ स्वरूप-चिन्तन करनौं? ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, विवेक, त्याग, उपरति, तितिक्षा,

भाव तथा प्रेमकी प्रामाणिक व्याख्या विचारनी, श्रीब्रजवासमें दृढ़ता राखनी, श्रीब्रज-रज महिमाकौ चिन्तन करनौं।

निष्कर्ष—भजनानन्दकौ अनुभव करनौं, मनन करनौं, श्रीप्राणनाथकौ सांनिध्य, पूर्व नियमनमें दृढ़ता, विजय पराजय-विवरण, परदोष-दर्शन एवं परचर्चा राहित्य।

मौनकौ आशय—केवल बाणीके ही मौनसौं संतोष न करि बैठें। बाणीकौ मौन राख्यौ गयौ है, केवल श्रीभगवन्नामके जपके ताँईं। श्रीभगवद्गुणानुवाद गायवेके ताँईं। बाणी रोकी गयी है अन्य संसारी बातनसौं। याही प्रकार नेत्र, कान, हाथ, आदिकनकौ हू मौन राख्यौ जाय—आगे बढ़िवे पै मनकौ हू मौन करै अर्थात् संसारी चिन्तन हू न करै, यही है मनकौ मौन। न संसारी चर्चा और न संसारी चिन्तन ही करै। तौ खाली मन सौं का करनौं चहिए? मन तौ एक क्षण हू खाली नहीं रह सकै है? यह याकौ सहज स्वभाव है? तौ फिर का चिन्तन करनौ चहिए?

चिन्तन करै इनकौ—साधन-सम्बन्धी बिचार करनौं, श्रीनाम सुननौं, अपने नियमनकौ बिचार करनौं, अपनी त्रुटिकौ निरीक्षण करनौं, स्वास्थ्यकौ बिचार करनौं, श्रीजीवनधनकौ सांनिध्य करनौं, इनसौं वार्तालाप करनौं, इनसौं हँसनौं, खेलनौं और इनकी सेवा करनौं, अद्यावधि प्रभुकी करी भई कृपानकौ बिचार करनौं, भविष्यमें कृपाकी पूर्ण आशा, आत्म-निरीक्षण करनौं, स्वदोषनकूँ बड़ी गहराईसौं खोजनौं, साथ ही उनके निष्कासनकौ पूर्ण प्रयत्न करनौं।

सम्प्रति मनुष्यके कर्तव्य दो ही हैं—सेवा और श्रीभगवत्-स्मरण।

सेवामें निःस्वार्थता और निरहंकारिता। स्मरणमें अपने इष्टमें प्रगाढ़ आत्मीयताकी परमावश्यकता है। इनकूँ कछु न कहै। तुम तौ केवल इनकी कृपाकूँ ही स्वीकारौ, काममें लाऔ। कहौ कम, करौ अधिक, कहवेमें लगि जाऔगे, तौ करिवेमें कमी आवैगी ही। लगि ही रहे हौ, तौ फिर लगन सौं क्यों नहीं लगते? लगै रहौ।

प्रश्न— आत्मनिरीक्षण काहेसौ कहैं हैं?

उत्तर— करनी और कथनीमें कितनौं अन्तर है, यह देखौ? सेवा बहुत ही ऊँची वस्तु है। जासौं श्रीभगवान् रीझैं हैं, वाही अपने जनकूँ सेवा या विरह दैयँ हैं।

प्रश्न— सेवा बनि पाई है, यह कब मान्यौ जाय?

उत्तर— सेव्यके समस्त सद्गुण स्वभावतः अपनेमें उतरि आवैं। अन्तर्मुखी है कैं यह देखनौं होयगौ कि हमारी श्रद्धा इनके प्रति कितनी है?

श्रद्धा ही तौ अध्यात्मकौ मूल है। साधन किये बिना श्रद्धा ठहर नहीं सकै। श्रद्धाकूँ पुष्ट करै है सदाचार। शास्त्र या संतके वाक्यकूँ ज्यौं-की-त्यौं मान लैनौं ही श्रद्धा है। सीधे शब्दनमें अपनी बुद्धिसौं काम नहीं लैनौं। श्रद्धाकौ अन्तिम फल है श्रीभगवत्प्रेम या आत्म-बोध।

बनौ मत, तुमकूँ हौनौं हैं। करिवे सौं ही होय है। जो आज्ञा भयी है, वही करौ।

अब आवश्यकता है—निरन्तर श्रीनाम-जपकी तथा निरन्तर सावधानताकी। प्रतिदिन-प्रतिक्षण आगे ही बढ़ते चलैं, यही प्रयत्न रहै एवं ***'सबहि मानप्रद आपु अमानी।'*** (रा०च०मा० ७। ३८। ४)—ये धारणमें आ जायँ।

श्रीभगवन्नाम-जपकी विधि—अत्यन्त आदर और प्रेमके साथ, मन्द-मन्द ऐसी ध्वनिपूर्वक जो कान (श्रवण) सुनते रहैं, मनकूँ हूँ काननके साथ आनन्द लैवेमें लगानौं, श्रीनामके रसमें

डूबिवेकौ निरन्तर अभ्यास बढ़ानौं, अपने-आपकूँ कृतकृत्य माननौं, श्रीप्राणनाथकी कृपाकौ बार-बार आभार माननौं, जो मो जैसें छुद्र जीव सौं हूँ अपनौं परम पावनातिपावन नाम-जप करवाय रहे हैं, श्रीनामरसमें डूबिवेके पश्चात् अब कछु अवशेष नहीं रह गयौ है, ऐसौ अनुभव करनौं, याहीमें जीवनकी सफलताकौ अनुभव करनौं।

निरन्तर यह दृढ़ विश्वास रहै कि मेरे सिरपै श्रीगुरुभगवान्‌कौ वरद-हस्त है। अतः मौकूँ पूर्ण श्रद्धालु, पूर्ण संयमी, पूर्ण सदाचारी, सच्चौ साधक एवं पूर्ण भजन-परायण तथा पूर्ण प्रेमी अवश्य ही बननौं परैगौ। मोमैं पूर्ण साधुता आयकैं ही रहैगी। मेरे साधनके फलस्वरूप नहीं, बल्कि अपनी अहैतुकी कृपाके बलसौं ही श्रीप्राणनाथ मोकूँ अपनी ओर आकर्षित करि रहे हैं। मैं एक-न-एक दिन अवश्य ही प्रियतमके प्रेमकौ पूर्ण अधिकारी बनुँगौ। मोमैं अब एकहू दुर्गुण नहीं रह सकै है और एक हू श्रीसद्‌गुण मोसौं बचि नहीं सकै है अर्थात् या पथके पथिकके समस्त श्रीसद्‌गुण मोमैं आयकैं ही रहिंगे। इनकूँ अपनी अँखियनसौं देखतौ भयौ ही या शरीरकूँ विसर्जन करूँगौ।

अद्यावधि ऐसौ संयम, उत्साह, तप, लगन, नियम-पालन, सात्त्विकी वृत्ति, साधुता, स्वदोष-निष्कासन, साधनमें दृढ़ता, अव्यर्थत्व, आत्मनिरीक्षण एवं श्रीप्राणनाथकौ सांनिध्य कबहूँ नहीं भयौ होय, जो अब उत्तरोत्तर करूँगौ। ऐसौ उत्साह मनमें भर्‌यौ ही रहनौं चहिए।

साधनकालमें स्वस्थताकी अत्यन्त आवश्यकता है। तब ही साधन उचित रूपसौं बनि पावै है। आहार, निद्रा, शारीरिक श्रम, शुद्ध जलवायु, स्नान एवं प्रसन्नताकौ विशेष ध्यान राखनौं चहिए।

संयम—सहसा दृष्टि उठि जायवे कौ अभ्यास मिटानौं।

श्रुतिके विषयमें इतनौं ही पर्याप्त है कि कम, बहुत ही कम सुननौं। जो अनुकूल परतौ होय और जो स्वास्थ्यमें सहायक होय, ऐसौ ही आहार करनौं चहिए। उदरपूर्तिके और शरीरकी रक्षाके दृष्टिकोणसौं ही आहार करनौं चहिए, जिह्वाके स्वादकी दृष्टिसौं नहीं। रोगविवशतामें साधककूँ औषधि हू स्वीकार लैनी चहिए।

बहुत बढ़िया स्थान, अन्य बढ़िया वस्तुएँ तथा बहुत बड़े धनिक आदिकनसौं स्वार्थके अभिप्रायसौं सम्पर्क, ये सब ही सर्वथा त्याज्य हैं।

अपने नियमकी सूची बनाय लैनीं। सायंकालमें सूची देखि लैनीं। सब कार्य पूर्ण करिकैं तब शयन करनौं। इन कार्यनकी पूर्तिमें प्रमाद न हौन पावै।

मनकूँ शनैः-शनैः श्रीजीवनाधारके सांनिध्यमें पहुँचानौं। अन्यत्रसौं आसक्तिकूँ बचानौं। बंचनासौं बचिवेकौ पूर्ण प्रयास करनौं। भजनके समय आलस्य आवन ही न पावै। समयकूँ अधिक-सौं-अधिक बचायकैं भजनमें लगानौं। हमें चहिए कि, जब वाणीसौं बोलिवौ बंद है, तब मनसौं हू बोलिवौ बंद करैं। अति आवश्यकताके अतिरिक्त कोई बात मनसौं हूँ न बोलै। दृष्टि-संयम। वाणी-संयम। मन और इन्द्रिय-संयम।

इनमें एक बार हू प्रमाद न हौन पावै। एक ही सूत्र सबरौ दृष्टि-संयम कराय देगौ।

कितनौं सरल उपाय मिलि गयौ। दृष्टि उठिवे सौं पूर्व या सूत्रकौ स्मरण करि लियौ जाय, तौ सहज ही दृष्टि-संयम बनि जायगौ। जहाँ-जहाँ श्रीभगवान्‌के सम्बन्धकी कोई वस्तु होय वहाँ-वहाँ ही दृष्टि उठै।

मार्मिक बात केवल एक—काम-विकारके भावसौं दृष्टिकूँ बहुत ही सँभारै। क्यौंकि काम-विकारकूँ दृष्टिसौं पूरौ आहार

मिलै है। अतएव दृष्टि-संयम प्राणपणसौं पालन करनौं चहिए। भजन करनौं ही सबसौं बड़ौ कार्य है। जा कामके ताँईं आये हो, वह पहलें पूरौ करि लेउ।

सौभाग्य एक—केवल भजन ही सुहाय।

दुर्भाग्य यह कि—भजन छोड़िकैं अन्य कामनमैं लगनौं।

भजन करते-करते जिएँ, भजन करते-करते मरैं। अगले जन्म का करिंगें? भजन।

पूर्ण विश्वास राखौ कि श्रीप्राणनाथ तुम्हैं बुलाय रहे हैं। तुम्हैं इनकी नित्य सेवामें सम्मिलित हौनौं ही परैगौ। हाँ, यदि कछु विलम्ब है, तौ केवल अपने दृढ़-सर्कल्पकौ ही।

साधुके ताँईं यहू परम आवश्यक है कि वह अपने आचरण पवित्रतम बनावै।

श्रद्धा एवं सदाचारसहित भजन करनौं चहिए।

यदि यह इच्छा होय कि याही जीवनमें भजनकौ फल मिलि जाय, तौ श्रद्धा और सदाचारकूँ दृढ़तासौं पकरे रहौ।

यदि दीर्घकालपर्यन्त पूर्ण विश्वासके साथ यह त्रिपुटी (श्रद्धा, साधन, सदाचार) सधते बनि गयी, तौ स्वल्पकालमें ही सफलता हस्तगत है जायगी।

श्रद्धा, साधन, सदाचार तथा वैराग्यमें संतोष न हौन पावै।

जो मृत्युके समय करनौं परै है, या मरे-पीछे करनौं परै है, वाकूँ याही क्षणसौं करि चलौ।

संसारकी ओरसौं आँखि मूँदकैं, अन्त:करणमें श्रीजीवनधनकी सतत स्मृतिमें मन-बुद्धि ऐसे डूबि जायँ कि संसार और शरीरकी स्मृति ही न रहै। यही तौ उत्तम मृत्यु है।

कौन कहै यह मृत्यु है अथवा अमरत्व।

संसारमें जो कुछ है रह्यौ है, हौन देउ, तुम तौ अपने लक्ष्यपै डटे रहौ। संसारके सुधारकौ काम उनकूँ सौंपौ जिननें या संसारकी रचना करी है तथा याके जो स्वामी हैं। तुम तौ अपने सुधारकी धुनमें लगौ।

प्रमादरहित हैकैं पूर्ण योगसौं साधनमें डटे रहैं। साध्य तौ साधनकौ फल है।

साधक विषयनकी ओर मुड़ परै, यह पतन तौ है ही, किंतु संसारके सुधारिवेकौ बीड़ा उठाय लैनौं, यह कोई कम पतन नहीं हैं।

साधककौ उद्धार तौ वाही क्षणसौं होयवे लग गयौ, जा क्षणसौं वह पूर्ण तत्परताके साथ भजनमें जुटि पर्‌यौ।

बहुत जानकार बनिवेके चक्करमें न परै, कर्तव्य-परायण बनै।

कहवौ कम, सुनिवौ कम, करिवौ अधिक।

इन्द्रिय तथा मनसौं सदाँ सावधान रहियौं। इनकूँ जीति लियौ है, ऐसौ मत मान बैठियौ।

तदेव करणीयं हि संविचार्य विवेकिना।
सद्भिराचरितं यत् स्यात् सर्वथा शास्त्रसम्मतम्॥

साधककी चार अवस्था हैं—विषय-सेवनके विषयमें हम अति-वृद्ध हैं, साधु हैं। साधुके ताँईं विषयनसौं बचनौं परमावश्यक है।

साधन करिवेमें तथा नियम-पालनमें पूर्ण युवा हैं।

भोरेपनमें, सरलतामें, निश्छलतामें, निर्दाम्भिकतामें और निर्विषयतामें बालक हैं।

जिज्ञासामें, दूसरे बड़े साधकके समक्षमें, श्रद्धामें तथा प्रेम-पथमें अबोध शिशु हैं।

साधकमें चारौ वर्ण

ब्राह्मण—तपोनिष्ठ, सदाचारी, इन्द्रियजित्, विद्वान्, मर्मज्ञ, तत्त्वज्ञ एवं कर्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ और आदर्श होय है। या विषयमें हम ब्राह्मण हैं।

क्षत्रिय—शूरवीर, जितेन्द्रिय, निर्व्यसनी, सतर्क, शत्रुदमनमें परम दक्ष, संग्राममें पूर्ण सावधान, विजयेच्छु, कबहूँ कैसी हू परिस्थितिमें हतोत्साही न हौनौं तथा पूर्ण उद्योगशील होय है। या विषयमें हम क्षत्रिय हू हैं।

वैश्य—व्यापारके ताँईं देश-देशान्तरमें भ्रमण करनौं, व्यापारमें परम दक्ष, हानि सहवेमें असमर्थ, उन्नतिशील, निरालस्यी, सतर्क, पूँजी जोरिवेमें असंतुष्ट, व्यय करिवेमें अति सावधान, व्यापाराधिक्यमें, उन्नतिमें सदा प्रसन्न रहनौं और व्यापारकी कमीमें, घाटेमें खिन्न तथा दुःखी होय है। या विषयमें हम वैश्य हू हैं।

शूद्र—दीन, सेवापरायण, पूर्ण सावधान, अहंकार-शून्य, अति सहिष्णु, क्रोधरहित, अल्पभाषी, अति संयमी, स्वसुख-परित्यागी।

'सबहि मानप्रद आपु अमानी'। 'सरल सुभाव न मन कुटिलाई'।

गम्भीर, क्षमाशील, परम नम्र तथा सेव्य-सुखमें सुखी रहै है, या विषयमें गुरुजननके समक्ष हम हूँ शूद्रवत् हैं। चारौं वर्णनके धर्म, लक्षण तथा स्वभाव हम एकमें ही हौंने चहिए।

साधक-जगत्‌में चार (पुण्य और पाप)

पुण्य है—दृढ़तम महदाश्रय।

याकौ फल होयगौ यह कि सुख, शान्ति, साधनमें अभिरुचि, श्रद्धा, सदाचार-पालन, श्रीभगवत्‌की ओर झुकाव तथा त्याग और वैराग्य।

पाप है—स्वतन्त्र रहकैं साधन करिवेकौ विचार।

याकौ फल होयगौ यह कि साधनमें गड़बड़ी, एक निष्ठाकौ अभाव, दुःख, अशान्ति, साधनमें अरुचि, दम्भ, देहाध्यासकी वृद्धि तथा भोग-वासनामें रुचि।

पुण्य है—साधनकौ नियम बनायकैं पूर्ण प्रयत्नसौं पालन करनौं।

याकौ फल होयगौ यह कि प्रगतिमें वृद्धि तथा अनुभव-लाभ।

पाप है—नियमनके पालनमें प्रमाद-उपेक्षा।

याकौ फल होयगौ यह कि उद्वेग, उचाट, बुद्धिमें मलिनता, अश्रद्धा, साधनमें अकथ शिथिलता एवं पतनोन्मुखी वृत्ति।

पुण्य है—संयमपूर्ण जीवन।

याकौ फल होयगौ यह कि अन्तर्मुखी-वृत्ति-लाभ (तदनुसार चित्तमें अतुलित सुख, साधनमें गहराई, आन्तरिक आह्लाद, विषयनसौं अरुचि, श्रीप्रियतम-मिलनकी लालसा एवं लाभमें अतृप्ति)।

पाप है—बार-बार नियम, विचार तथा साधन-परिवर्तन।

याकौ फल होयगौ यह कि असंतोष, अविश्वास, नास्तिकताकी वृद्धि, महच्चरित्रनमें आलोचना, पतनोन्मुखी वृत्ति, विषयनमें रुचि, गुप्त कार्य तथा अन्तःकरणमें बेचैनी।

पुण्य है—आत्मनिरीक्षण।

याकौ फल होयगौ यह कि स्वदोष-दर्शन, विकार-असहन, उनके निष्कासनमें कटिबद्धता, श्रीजीवनधनके सांनिध्यकौ अनुभव तथा प्रेमालाप।

पाप है—सर्वथा वैपरीत्य।

अपने अहंकार कौ भाव, विधि-पथ, मन्त्र, नाम, ध्यान, ग्रन्थ तथा इष्टमें अनन्यताके स्थान पै अन्यता तथा असूयाकी वृद्धि।

याकौ फल होयगौ यह कि पाप-वहन, भयंकर अपराध, चिन्ता, द्वेष, स्वभावमें चिरचिरापन, बात-बातमें क्रोध, महदवज्ञा, गुप्त भाव सौं विषय-सेवन, इन्द्रिय-लोलुपताकी वृत्ति एवं अध:पतन। यदि श्री नामकौ शुद्ध तथा स्पष्ट उच्चारण होय और साथ ही श्रवणन सौ श्रवण होय, मनमें आह्लाद होय, तौ लय तथा विक्षेप आप ही समाप्त है जायँ हैं। इनकूँ अवसर ही नहीं मिलै है, भजनमें गड़बड़ी करिवे कौ। फिर यदि शक्ति लगायकैं भजन होय, तौ याकौ प्रभाव हृदय पै परै है। जो साधक कूँ बहुत ऊँचौ चढ़ाय देय है। जब साधक ऊपर उठै, तब कषाय तथा रसास्वादन-दोष नष्ट है जायँ हैं।

आज साधु-समाजमें हू छल, कपट, विरोध बढ़ि गयौ है, विलासिता हू बहुत बढ़ि गयी है, स्वार्थ हू बढ़ि गयौ है। अपने कूँ इनसौं बहुत ही बचानौं है। सादा जीवन ही जीवे कौ अभ्यास बनानौं हैं। अपनेमें स्वार्थकी गन्ध हू न रहै। बाहर-भीतर पूर्ण साधुता ही भरनी है।

कल्पनात्मक वस्तु—जो वहाँ जायकैं करनौं है, वाकूँ अबही सौं करि चलैं। वर्तमानकालकी क्रिया, जैसैं—स्मरण, चिन्तन, सेवा मनके द्वारा। यासौं मृत्यु भई न कि पहुँचे लीलामें।

चिन्तन करनौं कि यौं करूँगौ, यौं करूँगौ, यह करूँगौ, वह करूँगौ, ऐसौ होयगौ, वैसौ होयगौ—यह है भविष्यकालकी क्रिया, ऐसी कामना बनै।

परम मांगलिक दिवस। याकौ पूर्ण सदुपयोग।

कृपा तौ पूर्ण है ही। अब आवश्यकता है याके सँभारिवे की।

सर्वप्रथम लक्ष्य दृढ़ बनै। लक्ष्य दृढ़ बनिवे सौं जो कछु साधन कियौ जाय है, वह सब लक्ष्यमें ही लगै है। अन्यथा प्रपंच [illegible] है जाय है।

प्रेम—प्रेम केवल और केवल इनमें (प्रभुमें) ही। जो कछु करै केवल प्रेमके ताँईं ही करै। त्याग, वैराग्य, साधन, सम्बन्ध केवल प्रेमके ताँईं ही करै। प्रेममें परमावश्यक है—स्वभाव अति उत्तम, अति सरल, अति विनम्र होय, कठोरता छू न जाय।

रहनी अति उत्तम—साधु बनै, तौ पूर्ण साधुता निभावै, पूर्ण वैराग्य मनमें भर्‍यौ ही रहै। निरन्तर अपने-आपकूँ उठातौ ही रहै।

उत्थान का वस्तु है? श्रीभगवान्‌की ओर झुकाव सतत बढ़तौ ही रहै, यह है उत्थान और याके विपरीत संसारकी ओर झुकाव हो तौ जानौ ही है—पतन।

श्रीसद्‌गुरु-भगवान्। श्रीब्रजधाम। श्रीगिरिराजजी। श्रीब्रजरज। श्रीभागवतजी और श्रीरामायणजी तथा श्रीठाकुरजीमें उत्तरोत्तर आत्मीयता बढ़ती ही जानी चहिए। तब ही लाभ।

मन अति पवित्र बनै। चिन्तन बढ़ै। कल्पना बढ़ै।

मनके द्वारा निरन्तर वाही लोकमें निवास करतौ रहै। मन अति सूक्ष्म है। मनके द्वारा जो होय है, अति सूक्ष्म ही होय है। ऊँचे शास्त्र, ऊँचे संत, सबनने मन पै बहुत ही जोर दियौ है। मन सौं रहनौं ही साँचौ रहनौं मान्यौ गयौ है और मन सौं करनौं ही साँचौ करनौं मान्यौ गयौ है।

यदि मोह होय तौ केवल श्रीभगवान्‌में और श्रीभगवत्-भजनमें ही। भजन करोगे तौ भोग्य तौ आवैगौ ही। वासौं कैसैं हूँ अपने कूँ बचाय लेय। बड़े-बड़े प्रलोभन आमिंगे। धनिक लोग आमिंगे, प्रार्थना करिंगे कि श्रीभगवन्! यदि आपकी रोटी कौ प्रबन्ध यहीं है जाय तौ आप निश्चिन्त है कैं भजन करि लैयंगे। यदि आपके ताँईं एक कुटिया बनि जाय तौ आपकूँ बड़ी सुविधा रहैगी। या प्रकारकी अनेकन बात आमिंगी। देखिवेमें तौ

सुविधा-सी प्रतीत होय है, परंतु है महाबाधक। काऊ एकके हाथ बँधि जानौं पतन कौ कारण है, जो कदापि उचित नायँ। समस्त शास्त्र, संत और आचार्यनने आज्ञा करी है कि साधु कूँ तौ भिक्षान्न सौं ही निर्वाह करनौं चहिए। मान, प्रतिष्ठा और पूजा सौं सदाँ सावधान रहनौं चहिए।

श्रीकृष्णमें प्रेम—याहीके ताँईं साधन, भजन, चिन्तन, नियम, संयम अर्थात् जीवन ही याहीके ताँईं।

अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

मनकी चंचलता मिटायवे कौ उपाय—मनकी चंचलता बढ़ै है राग-द्वेष सौं। राग-द्वेष होय है कामना सौं। अतएव कामना कूँ ही मिटानौं है। इतर कामना मिटै है केवल श्रीभगवत्-कामना सौं। कामना नष्ट भई न कि राग-द्वेष मिटे। राग-द्वेष मिटे न कि मन शान्त, स्थिर, सुस्थिर भयौ।

यदि याही जीवन में भगवत्प्राप्ति करनी है तौ,
यदि याही जन्म कूँ अन्तिम जन्म बनानौ है तौ,

—इन चार बातन कौं पालन करनौं ही परैगौ।

श्रद्धा, पवित्रतम जीवन, श्रीसद्गुरु-प्रदत्त साधन, कामनान कौ पूर्ण अभाव और पाँचवीं वस्तु है प्रेम। सो तौ इन चार्यौंनके फलस्वरूप स्वतः ही प्राप्त होयगौ। इन चार्यौंन कूँ हम ठीक पालन करि रहे हैं, याकी पहँचान है कि हमारौ स्वभाव उत्तरोत्तर अति सरल बनतौ ही जाय रह्यौ है। स्वभावमें सरलता आयी तौ ठीक। नहीं तौ कछु ठीक नहीं। रज, तम छू न जाय। सतत सत्त्वकी ही वृद्धि होती रहनी चहिए।

मन-संयम—मन कौ विषय अति गहन है। यामें एक बड़ी भारी कठिनता है कि यह हठीलौ है। अतएव याके निग्रह करिवेमें बड़े-बड़े योगी हू अधीर है जायँ हैं। वास्तवमें यह हठी

है, दुर्जय है, अति प्रबल है, धोखेबाज है, अकर्मण्य-प्रिय है, विषयलोलुप है, एक प्रकार सौं यह विश्व-विजेता है। ये सब बातें तथ्य एवं सत्य हैं। तथापि श्रीप्राणनाथने श्रीगीताजीमें याके निग्रह करिवेके ताँईं दो निर्देश किये हैं—अभ्यास और वैराग्य।

पहली बात है अभ्यास—जब मन इत-उतमें भागै, तब याकूँ लौटाय-लौटाय कैं साधनमें अथवा साध्यके सांनिध्यमें बैठावै। बार-बार यही करतौ रहै। यही अभ्यास है। या उपाय सौं मन सधिवे लगै है। भागिवौ कम होतौ जाय है। धीरे-धीरे भागिवेमें यह संकोच करिवे लगै है।

दूसरी बात है वैराग्य—जब-जब मन श्रीभगवान्‌के अतिरिक्त अन्य संसारी संकल्प, विचार, कामना बनावै, तब-ही-तब याकूँ इनकी असारता दिखाय-दिखाय कैं इनसौं घृणा और उपेक्षा ही करामतौ रहै। इनकूँ मनमें टिकन ही न देय, यही वैराग्य है।

इन दोऊ युक्तिन सौं मन शान्त होयवे लगै है। स्वच्छ होयवे लगै है। एक बातकी बहुत ही आवश्यकता है कि यह विचार ही न उठन पावै कि यह वशमें है ही नहीं सकै। सदैव यह विश्वास राखै कि मेरौ मन वशमें है कैं ही रहैगौ। समय चाहैं भले ही कितनौं हू लगि जाय, किंतु मनकी हठ मिटाय ही दैनीं है। याकूँ मैं श्रीसद्गुरु-आश्रयके बल सौं निश्चय ही अपने कहेके अनुसार ही चलायकैं रहुँगौ। श्रीमहदाश्रयके बल सौं कोई कार्य असाध्य है ही नहीं। हाँ, कष्टसाध्य अवश्य है। जो कार्य कष्टसाध्य जानि परै, वा कार्यमें बड़े वेग सौं, बड़ी सतर्कता सौं, प्रमाद-रहित हैकैं लगै, तौ वही कष्टसाध्य कार्य अति सुगम, अति सरल सौ प्रतीत हैवे लगैगौ।

संकल्पके अतिरिक्त मन स्वतः तौ कछू करि नहीं सकै है। जो कछु करै है इन्द्रियनके द्वारा ही करै है। या कारण साधकके

ताँईं परम आवश्यक है कि वह इन्द्रियनमें पूरौ संयम राखै। प्रमाद न होन पावै, तौ धीरे-धीरे मन आपही संयत होयवे लगैगौ। यह अति आवश्यक है। याके बिना मन:संयम असम्भव है। यदि मन कूँ संयमी बनानौ चाहै तौ नीचें लिखी बातन कूँ पालन करै—

(१) सर्वप्रथम प्रियतम सौं प्रगाढ़ सम्बन्ध जोरिले।

(२) एकहु इन्द्रिय स्वाद ग्रहण न करन पावै।

(३) इन्द्रियन पै पूरौ नियन्त्रण राखै।

(४) या विषयमें एकहू बार प्रमाद न हौन पावै।

(५) याके ताँईं कष्ट सहनौं, यही तप है।

(६) इन्द्रिय-संयमके ताँईं जो नियम बनाय लिये जायँ, उनकूँ पूर्ण रूप सौं पालन करै, यही व्रत है।

(७) नियम-पालन पुण्य है तथा नियम-भंग करनौं पाप है।

(८) नियम-पालन, श्रद्धा-वर्द्धन, एकान्तवास, मौनावलम्बन, व्यर्थत्व कौ सर्वथा निराकरण तथा निष्कामता—ये मन:संयमके परम सहायक हैं।

(९) विषय-सेवन, विषय-चिन्तन, परदोष-दर्शन, विवाद, कलह, क्षोभ, चिन्ता, लौकिक कार्य-बाहुल्य, मेला, तमासे, नशीली वस्तु, अधिक उत्तेजक एवं उष्ण पदार्थ तथा अधिक सम्पर्क—ये सब मन:संयमके भयंकर विघ्न हैं। अतएव साधक इनसौं सदैव बचतौ ही रहै।

(१०) श्राद्ध, मृतक कार्य, जन्मोत्सव, विवाह तथा अशुद्ध दूषित अन्न सौं सदैव बचतौ ही रहै।

सम्प्रति मन सौं तीन कार्य कराने हैं—

एक तौ—अश्लील चिन्तन एवं दुर्गुणन कौ त्याग।

दूसरौ—समस्त सद्‌गुणन कूँ अपनेमें धारण करनौं।

तीसरौ—त्रिगुणातीत ह्वैवेकी लालसा अर्थात् प्रियतमके प्रेम-सिन्धुमें डुबिवेकी पूरी लालसा। येन-केन-प्रकारेण निरन्तर प्रियतमके सांनिध्यमें ही रहनौं। मनके विषयमें सदैव धैर्य सौं ही काम लैनौं चहिए। बिस्वास राखनौं चहिए कि एक-न-एक दिन हमारे मनकी स्थिति बहुत ऊँचाई पै होयगी। सर्वप्रथम यह प्रतिज्ञा करै कि कोई इन्द्रिय ऐसे विषय कूँ सेवन न करन पावै, जासौं मनमें उत्तेजना उत्पन्न होय और विकार फिर प्रफुल्लित ह्वै उठैं। यह केवल कहवे कूँ प्रतिज्ञा बनिकैं ही न रह जाय। बल्कि निरन्तर सावधान रहकैं या प्रतिज्ञा कौ पूर्णरूपेण पालन करै। साथ ही नैंकहू विचलित ह्वैवे पै दण्डविधान हूँ करतौ रहै। याही विषय कूँ सोचतौ-विचारतौ रहै। पुन:-पुन: संघर्ष चालू रहै।

मनके विषयमें बड़ी सुन्दर बात है यह कि यह बुद्धि सौं बहुत संकोच करै है। जा समय बुद्धि सतर्क रहै है वा समय तौ मनकी अवस्था परम योगीनकी-सी परम शान्त, निर्विकार, स्थिर, अमल एवं परम प्रेमीकी-सी प्रतीत होय है। यह तौ निश्चित है ही कि मन सात्त्विक बुद्धिके समझायवे पै रुक जाय है। विकारन सौं हटि जाय है तथा विकारन सौं घृणा हू करिवे लगै है।

'मन: स्वबुद्ध्यामलया नियम्य।'

अतएव बुद्धि कूँ सदैव बलवती बनायवे कौ ही प्रयत्न करनौ है।

बुद्धिके बलवती बनायवेके साधन ये हैं—

(१) दृढ़तम महदाश्रय।

(२) इन्द्रियन कूँ अर्थ सौं पृथक् राखनौं।

(३) तपोमय तथा वैराग्यमय जीवन।

(४) श्रीभगवदाराधन।

(५) पुण्य कार्य।

(६) प्रेमांकुरोपादन श्रीप्रियतम-प्राणनाथमें।

एक बात और स्मरण राखिवेकी है कि जबतक मनमें रहवे बारी कामनान कौ सर्वथा अभाव न है जायगौ, तबतक बुद्धि स्थिर नायँ है सकै।

जब ताँईं मन विषयन कौ चिन्तन करै है, तब ताँईं न तौ ये श्रीभगवान्‌में अच्छी तरह एकाग्र है सकै और न इन्द्रियन कूँ विषयन सौं ही खैंचि सकै है। विषय-चिन्तन करनौं, याकौ अनादि-काल कौ अभ्यास है। याकूँ चिर अभ्यस्त विषय-चिन्तन सौं हटाय कैं, श्रीभगवान्‌में लगानौं हैं। याकौ यह स्वभाव है कि याकूँ जा वस्तुमें लगिवे कौ अभ्यास है जाय है, वामें तदाकार है जाय है। वासौं सहजमें हटनौं ही नहीं चाहै है।

हटायवेके उपाय हैं कि—याके पूर्वाभ्यासके विरुद्ध नयौ तीव्रतम अभ्यास करानौं तथा बलवती (कबहूँ न हटिवे वारी), स्थिर (लक्ष्यके निश्चय पै दृढ़ता सौं डटी रहवे वारी),धीरज भरी तथा सत्त्व-सम्पन्न बुद्धिके द्वारा वाकूँ फुसलाय कैं, डाटि कैं, रोकि कैं और समझाय कैं नये अभ्यासमें लगानौं। धीरज छोड़िवे सौं या जल्दी करिवे सौं, काम नहीं चलै है। यदि बुद्धि दृढ़ रहै और अभ्यास जारी रहै तौ कछु कालमें ही मन अपने पूर्व विषय सौं सर्वथा हटि कैं नये विषयमें तदाकार है जायगौ। फिर यासौं वैसें ही नहीं हटैगौ, जैसें अबही अपने पूर्व अभ्यस्त विषय-चिन्तन सौं नहीं हटि रह्यौ हो। विवेक तथा वैराग्य-युक्त बुद्धिके द्वारा मनकूँ सांसारिक-भोगनकी अनित्यता और क्षणभंगुरता समझाय कैं और भोगनमें फँसि जायवे सौं प्राप्त होयवे वारे बन्धन तथा नरकादिक यातनान कौ भय दिखाय कैं, विषय-चिन्तन सौं सर्वथा रहित करि दैनौं चहिए। यही शनैः-शनैः उपरति कौ प्राप्त होनौं है। जबतक मन विषय-चिन्तन कौ सर्वथा त्याग न करि देय, तबतक साधक कूँ चहिए कि—

(क) वह पहले इन्द्रियनकूँ बाह्य विषयन सौं रोकै।

(ख) फिर स्थिर बुद्धि सौं शनैः-शनैः मन कूँ विषय-चिन्तन सौं रहित करिवेकी चेष्टा करै और याके साथ-साथ ही याकूँ अपने इष्टदेवमें स्थिर करतौ रहै।

जबतक श्रीभगवत्प्राप्ति नहीं है जाय, तबतक यह कोई आवश्यक नहीं कि यह मन निरन्तर ध्येय वस्तुमें हीं लग्यौ रहैगौ। याकौ विश्वास न करि बैठै। याही कारण तीव्रतम अभ्यासकी आवश्यकता होय है। जा समय साधक मन कूँ प्रभु-सांनिध्य कौ अभ्यास करायवे लगै वा समय ऐसौ सावधान रहै कि मन दूसरे विषयनमें जाय ही न सकै। साधककी यह सजगता अभ्यास कूँ दृढ़ करिवेमें बड़ी ही सहायक होय है। जैसें-जैसें अभ्यास बढ़तौ जाय, वैसें-वैसें ही मन कूँ और हू सावधानीके साथ विशेष रूप सौं, विशेष कालतक प्रभु-सांनिध्यमें ही राखै।

मन बड़ौ ही चंचल है, यह सहजमें कहूँ हूँ स्थिर नहीं होनौं चाहै है और नये अभ्यास सौं तौ बहुत ही घबरावै है। साधक मनकूँ बड़े ही प्रयत्न सौं भगवान्‌में एकाग्र करै है, वह सोचै है कि मन लग्यौ है। परंतु क्षणभर पीछें ही देखै है तौ पतौ चलै है कि ना खबरि वह अपने मार्ग सौ कहाँ कितनी दूर चल्यौ गयौ है। याही कारण साधक कूँ सावधान रहनौं चहिए। क्योंकि सावधान रहते भये हू नैंक अवसर मिल्यौ कि यह निकरि भाग्यौ और भागै हू तौ ऐसौ भागै है कि कछू समयतक तौ साधक कूँ पतौ ही नहीं चलि पावै है कि मन कबकौ कहाँ जाय भाग्यौ है। साधककी दृष्टि सौं याकौ प्रधान कारण है, विषय-चिन्तन कौ चिरकालीन अभ्यास। अतएव साधक कूँ ज्यौं ही पतौ चलै कि मन अन्यत्र विषयनमें गयौ, त्यौ ही बड़ी सावधानी और दृढ़ताके साथ वाकूँ पकरि लावै है और श्रीभगवान्‌में लगावै है।

या प्रकार बार-बार विषयन सौं हटाय-हटाय कैं श्रीभगवान्में लगायवे कौ अभ्यास करै है। मनकी एकहू न सुनै, चाहै हजार अनुनय-विनय करै, कितनौं हू लोभ, प्रेम, डर दिखावै। याकूँ नैंकहू ढील मिली कि याकी उच्छृंखलता बढ़ी। सावधानी ही साधन है। अतएव साधक कूँ खूब ही सावधान रहनौं चहिए और मन कूँ पुनः-पुनः विषयन सौं हटाय कैं साध्यमें लगानौं चहिए।

अभ्यास, चित्तरूपी नदीकी धारा कूँ श्रीप्राणनाथकी ओर लै जायवे वारौ सुन्दर मार्ग है और वैराग्य, वाकी विषयाभिमुख गति कूँ रोकिवे वारौ बाँध हैं। ये दोनौं एक-दूसरेके परम सहायक हैं। अभ्यास सौं वैराग्य बढ़ै है और वैराग्य सौं अभ्यासकी वृद्धि होय है।

जा क्षण श्रीप्राणनाथकौ स्मरण होय है, वा क्षण यह महा चञ्चल मन बड़ौ सूधौ सात्त्विकी बनि जाय है। विकार तौ वा समय कहूँ रहै ही नहीं। अतएव या क्रियाकूँ बढ़ातौ जाय।

व्यवहारमें यदि काहूके प्रति दुर्भाव न होय, तौ परदोष-चिन्तन तथा व्यर्थ चिन्तनकी सम्भावना ही नहीं रहै है अर्थात् कुभावकौ अभाव अनिष्ट चिन्तनकूँ नष्ट करै है।

मृत्यु का है? यह तौ परीक्षा ही है।

अपने-आपकूँ सदैव देखतौ रहै कि हम श्रीभगवत्-राज्यमें हैं या प्रकृति-राज्यमें।

अपनी एक-एक चेष्टा विवेक पूर्ण ही हौनी चहिए।

कैसी हू परिस्थितिसौं मनमें काहू प्रकारकौ क्षोभ नहीं हौनौं चहिए। कबहूँ नहीं हौनौं चहिए। मनकूँ समझायवेसौं सबरे विघ्न दमन है जायँ हैं। मनके मानिवेसौं ही तौ विघ्न हैं और भलौ-बुरौ मानिवौ हू याहीकौ काम है।

राग-द्वेषसौं सर्वथा बचतौ रहै।

निष्ठापूर्वक एकान्तवास करै।

श्रीभगवान् एकान्तमें ही दर्शन देयँ हैं।

श्रीभगवान् हमकूँ अपनायवेके ताईं सदैव दौनौं हाथ फैलाये तैयार ठाढ़े हैं।

सदाँ-सदाँसौं संसारकौ चिन्तन करते आये हैं या कारण संसार मिल्यौ है। अब यदि श्रीभगवत्-चिन्तन करिंगे तौ श्रीभगवान् मिलिंगे।

भजनके बाह्य विघ्न हैं—वार्तालाप और निद्रा।

आन्तरिक विघ्न हैं—हिंसा (कायिक, वाचिक और मानसिक)।

संसारके सुधारकी बात ही छोड़ि दे। अपनौं सुधार करिवेमें ही लग्यौ रहै।

दीनतामें विकार नहीं। अहंकारमें विकार भरे हैं। अहंकार ही पतनकौ द्वार है।

अन्त:करणकौ उत्थान हौनौं चहिए। यदि नहीं है रह्यौ है तौ भजनमें गड़बड़ी है। श्रीसद्गुरुदेवसौं नाड़ी दिखाऔ?

त्यागसौं शान्ति।

श्रद्धास्पद हैं श्रीसद्गुरुदेव और प्रेमास्पद हैं श्रीभगवान्।

जब ताँईं श्रीभगवान्कूँ अपनी भगवत्ताकौ ध्यान है, तब ताँईं वे मिलिवेके नायँ। उनसौं मिलिवेके ताँईं उनकी भगवत्ता भुलानी परैगी। उनकी भगवत्ता हमारे निष्काम भजन करिवेसौं ही भूली जायगी।

कोई एककूँ पकरौ। आजन्म वाहीकूँ पकरे रहौ।

सतत अपने कर्तव्यकौ ही ध्यान राखै।

कितने दिना साधन करते है गये, याकौ इतनौं महत्त्व नहीं, जितनौं महत्त्व है वृत्तिमें परिवर्तन हैवेकौ।

प्रेम-प्राप्तिके ताँईं संसारकूँ पूर्णरूपेण भूलनौं ही परैगौ।

भोगसौं राग-द्वेष-बुद्धि। भोगसौं संसारबुद्धि। भोगसौं तप-क्षीण।

सत्त्वसौं श्रद्धाकी वृद्धि और बुद्धि शुद्ध होय है। रजसौं श्रद्धाकी शिथिलता। तमसौं श्रद्धाकौ अभाव।

रुचिमें ही करिवेकी शक्ति है।

साधु सदाँ अपने स्वरूपानुसंधानमें ही लग्यौ रहै, लोगनमें रहते भये हूँ उनसौं अलग ही रहै।

केवल अपने साधनकूँ ही सोचै। जहाँ-जहाँ विचार जाय, वहाँसौं लौटावै। कदापि दूसरेके विषयमें न सोचै।

श्रद्धा, साधन, सदाचार। याग, साधन, वैराग्य। निष्कामता, साधन, अनुराग—ये तीनौ त्रिपुटी चालू ही रहैं।

आवश्यकता, साधन, अवकाश।

यदि साधन-कालमें साधकके पास आवश्यकता और अवकाश रहैगौ तौ वह निश्चितरूपसौं साधनविमुख ही रहैगौ। यासौं साधककूँ इन दोऊनसौं सावधान ही रहनौं चहिए। ना तौ आवश्यकता ही कोई होय और ना ही एक क्षणकौ अवकाश ही रहै। अपनौं साधन इतनौं बढ़ाय देय कि एक क्षण हू रिक्त न रहै।

यदि श्रीभगवान्‌सौं मित्रता करनी होय तौ अकेलौ ही रहै। यदि दूरि करने हौयँ तौ संसारसौं मित्रता करै।

अपनी कमी सदा देखनौं, बस यही उत्थानकौ सहज उपाय है।

बाहरी बातनपै जोर देनौ संसारकूँ रिझानौं है और आन्तरिक बढ़ानौं प्राण-प्रियतमकूँ रिझानौं है।

लाख बातनकी एक बात—जो करै, पूर्ण तत्परतासौं। पूर्ण लगनसौं। पूर्ण सत्यतासौं तथा पूर्ण उत्साहसौं ही करै।

स्वस्थ मन ही नियम-पालनमें दृढ़ रह पावै है।

पवित्रताकौ प्रभाव मनपै परै है, जासौं मन श्रीभगवान्‌में लगै है।

दूसरेके कर्तव्यकूँ अपनौं अधिकार। दूसरेकी उदारताकूँ अपनौं गुण। दूसरेकी कृपाकूँ अपनी योग्यता। दूसरेकी निर्बलताकूँ अपनौं बल न मान बैठे।

साधकके यहाँ फल है ही नहीं।

साधक वही है, जो केवल अपने साधनमें ही मरणपर्यन्त लग्यौ रहै। अन्यत्र मनकूँ न चलावै, वहाँ फलकी चर्चा हू नहीं।

जो साधक अपने साधनकौ फल चाहिवे लगि जाय है, वही पथ-च्युत है जाय है। यदि कछु फल मिलि गयौ तौ साधन शिथिल है जाय है।

जौ दीर्घकाल ठीक-ठीक भजन करिवेकी इच्छा होय तौ शरीरकूँ सँभारते भये भजन करिवेकौ ही विचार राखै। हाँ, देहाध्यास न बढ़ाय बैठे। क्योंकि—

'तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥'

(रा०च०मा० ७। ९६। ५)

वस्तुत: साधक वही है, जो नियम-पालनमें तत्पर रहै है।

उत्तम साधककौ यही श्रेयस्कर है कि वह अपनी इच्छा और आवश्यकतानकूँ मिटावै। कर्तव्यकौ पालन प्राणपणसौं करै।

इच्छा होते ही मनकी शान्ति मारी जाय है। मन चंचल एवं उद्विग्न है जाय है। जो साधकके ताँईं सर्वथा अहितकर है। इच्छा-वासना तौ रहन ही न पावैं। इनकौं निर्मूल करनौं साधककौं परम-कर्तव्य है तथा परमावश्यक हू है।

हमारौ साधन कैसौ चलि रह्यौ है? याकी परीक्षा है कि साधनमें दिनौदिन उन्नति होय। वामे रुचि बढ़ै। अतृप्तिकौ

अनुभव होय। साधनमें जो विघ्न जानि परैं, उनके निष्कासनमें पूर्ण प्रयत्न होय तथा जो-जो सहायक प्रतीत हौयँ, उनके पालन एवं सम्बर्द्धनमें अत्यन्त तत्परता होय। साथ-ही-साथ चित्तमें प्रफुल्लता होय, उत्साह रहै।

अनवधानता अत्यन्त अखरै। विषयनसौं अरुचि होती जाय। संसारसौं उदासीनता बढ़ती जाय। अन्तःकरण श्रीजीवनधनके सांनिध्यके ताँईं लालायित होयवे लगै। इत्यादि-इत्यादि।

श्रद्धा—साधनकौ आधार, सिद्धावस्थाकी कुंजी तथा भाव-प्रेमकौ उद्गम है।

साधारण-साधनकौ साधारण-फल। उत्कट-साधन। रात-दिन एक। खूनकौ पानी।

'वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्॥'

(पातञ्जलयोग० २। ३३)

मिलिवेकी उत्कट-लालसा ही तौ मिलिवौ है।

मिलिकैं फिरका करौगे? तुम तो सदैव विलखते रहौ।

समय दुस्तर है। आवश्यकता है सावधानीकी।

अपनौं दुर्गुण ही शत्रु है तथा अपनौं सद्गुणही मित्र है।

समय है—श्रद्धाकौ, साधनकौ, भावकौ, प्रेमकौ, सेवाकौ, तन्मयताकौ, विरहादिकनकौ।

साधनकौ फल भाव। भावकी ही प्रगाढ़ताकौ नाम है प्रेम, अनुराग, सांनिध्य आदि।

राग-द्वेष तौ साधनके विरोधी भाव हैं।

साधक तौ सदैव—सरल, सुशील, नम्र, निरभिमानी और दम्भरहित होय है।

साधक वह, जाकूँ साधनमें रुचि होय।

साधक वह, जाकूँ साधनमें तन्मयता है जाय।

साधक वह, जो साधनकूँ सर्वस्व मानै।

साधक वह, जाकूँ साधन अपनाय लेय।

साधक वह, जाकूँ साधन सुधारिवे लगै।

तितिक्षा, सहनशीलता, क्षमा—ये सद्गुण हैं।

स्वाध्यायकौ फल मनन। मननकौ फल धारण। धारणकौ फल समयपै ठीक-ठीक क्रियाकौ हौनौं।

विरहकौ महत्त्व या कारण अधिक है कि निरन्तर अपने प्रेमास्पदकौ चिन्तन स्वयमेव होतौ रहै है, करनौं नहीं परै।

अत्यन्त आवश्यकता है, एकाग्र चित्तकी।

एकाग्र चित्त तब ही होयगौ, जब मन खाली होयगौ। वैराग्य कियौ जाय है, मनकूँ खाली करिवेके ताँईं। याही कारण याकौ महत्त्व है।

यथार्थ वैराग्यकी परिभाषा है—एकदम मन खाली।

खाली मनकूँ ही शास्त्रनमें निर्मल मन कह्यौ गयौ है।

—यह अभ्यास-साध्य है—प्रगाढ़ श्रद्धा तथा श्रीप्राणनाथकौ सांनिध्य—ये विकार-शमनकौ हू सर्वोच्च उपाय हैं।

पाप न करनौं ही संसारकी भलाई करनौं है।

अपने पापनकूँ प्रकट करिवेसौं मन स्वधर्ममें दृढ़ होय है। दूसरेके पापनकूँ प्रकट करिवेसौं मन अधर्म, परधर्म और विधर्ममें दृढ़ होय है।

जो कोई अपने नेत्रनकूँ रोकैं रहै है, वाहीके हृदयमें भजनकौ रहस्य प्रकट होय है।

जैसें उपस्थके द्वारा कामकौ भोग होय है, वैसें ही नेत्रहू कामोपभोगकौ साधन है।

ईश्वर क्रिया नहीं देखै है, केवल अपनेसौं मिलिवेकी छटपटाहट और प्यास ही देखै है।

जब अपने दोष आप ही दीखन लगि जायँ तथा उनके निष्कासनकौ प्रयत्न चालू है जाय है, तब ही उत्थान होय है।

जब पीछें न लौटै, आगे ही बढ़तौ जाय, तब ही होय है—उत्थान।

विचार, नियम, अभ्यास, अभ्यस्त-क्रमशः।

क्रिया, तत्परता, स्मृति-चिन्तन-क्रमशः।

दृढ़तम श्रद्धा, दैन्य,आत्मीयता, निष्कामता और अपनौ अस्तित्व मिटानौ—ये पाँच उत्थानके सूत्र हैं।

खूब अभ्यास करै, अधिक पढ़िवे-सुनिवेके चक्करमें न फँसै।

जो दूसरेके ताँईं उदार और अपने ताँईं संयमी है, वही समाजमें सबकौ आदर्श रूप है जाय है।

जब-जब, जहाँ-जहाँ, जैसें-जैसें श्रीभगवत्कृपा भई वाकूँ सतत स्मरण करनौं। प्रेमालाप और विनोद आदिसौं सांनिध्यमें प्रौढ़ता होय है।

कृपा-चिन्तनसौं हृदय इनकी ओर बढ़ै है। प्रेमालापसौं आनन्द होय है। विनोदसौं आत्मीयता होय है तथा बढ़ै है।

जो कर्म करै वह जीव। जो कर्म न करै वह ईश्वर। जो कर्ममें गड़बड़ी करै वह माया।

मायाकौ पहलौ काम दम्भ।

दम्भके आते ही कार्यकी सत्यता, तत्परता तथा श्रद्धा और आज्ञा-पालन सब दुबकि जायँ हैं।

अशान्ति होय है फलकी चिन्ता करिवेसौं। जो सदा कर्तव्य-पालनमें डटे रहै हैं, वह सदा शान्ति लाभ करैं हैं।

साधककौ काम केवल साधन करनौं, कर्तव्य-पालन करनौं।

फलकी चिन्ता करनौं अनधिकार चेष्टा है। यासौं साधन शिथिल होय है।

श्रीसद्गुरुभगवान्‌की आज्ञा-पालन करिवेसौं उनके श्रीचरणार-विन्दनमें जो अनुरक्ति होय है, वह साधककी मान-प्रतिष्ठा आदिक सबरे विघ्ननसौं रक्षा करै है।

निरभिमानता या दीनता ही मुक्तिकौ हेतु है।

आवश्यकता है कठोर आत्मसंयमकी, अदम्य इच्छा-शक्तिकी तथा दुर्जय आत्मविश्वासकी।

साधक उपद्रवसौं क्षुब्ध नहीं होय है। वस्तुतः आत्मदृष्टि ही समस्त विपत्तिनसौं बचिवेकौ एकमात्र साधन है।

जबतक आसक्ति है, माया तबतक सत्य-सी ही प्रतीत होय है। वास्तवमें माया असत्य है।

संसारी लोग जाकूँ अर्थ कहैं है, वाकूँ अनर्थ ही समझै।

संतनकी उपासनासौं दम्भ, अहंकारादिक समस्त विकारनपै विजय प्राप्त होय है अर्थात् श्रीसद्गुरु-आराधनासौं विकारनपै अति शीघ्र, अति सुगमतासौं विजय प्राप्त होय है। श्रीभगवत्प्राप्ति तौ महत्-उपासनाकौ फल है। निद्राकूँ सात्त्विक भोजन, सात्त्विक संग तथा सात्त्विक स्थानके सेवनसौं जीत्यौ जाय सकै है।

सतोगुणद्वारा रजोगुण तथा तमोगुणपै और उपरतिद्वारा सतोगुणपै विजय प्राप्त होय है।

साधक कैसी हू परिस्थितिमें अत्याहार न करै।

साधकके ताँईं प्रमाद भयंकर शत्रु है। यासौं बहुत ही सावधान रहनौं चहिए। प्रमादसौं वचिवेको उपाय है—जो कार्य करनौं होय, बाकूँ वाही समय करि डारै।

साधन-कालमें परमावश्यक है कि साधक अपने जगिवेसौं सोयवेतककी समस्त क्रिया-कलापनकौ नित्य ही आत्म-निरीक्षण

करि ले। जो दोष-दुर्गुण दृष्टिपथमें आवैं, उनकूँ तुरंत निकारिवेमें तत्पर है जाय। अपनौं आत्म निरीक्षण पूरी सत्यतासौं करै।

स्वस्थ शरीरसौं ही साधन सुचारु रूपसौं बनि पावै है, या कारण साधककूँ शरीरके स्वास्थ्यपै विशेष ध्यान दैनौं चहिए। यदि अपने प्रमाद अथवा उपेक्षा-बस स्वास्थ्य बिगरै है तौ यामैं साधककूँ अपराधी मान्यौ जाय है।

दृष्टिके सबरे दोष सर्वथा त्याज्य हैं। अभ्यास बढ़ावै कि दृष्टि बहुत धीरेसौं आगे कूँ अथवा ऊपरकूँ उठै।

जहाँ जराई कामिनी, तहँ जनि जाहु कबीर।
उड़ि भभूति अंगन लगै, सूनौ करै शरीर॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध के, हम चरनन की खेह॥

यह स्मरण रहै कि दृष्टिकी चंचलता मनकूँ चंचल बनायवेमें परम सहायक है तथा मनकी गतिकी सूचिका है।

यदि इनहीं नैननसौं श्रीजीवनधनके दर्शन करिवेकी इच्छा होय, तौ इन नेत्रनकूँ अपवित्र स्थाननमें विचरिवेसौं पूर्ण प्रयत्नके साथ रोकै ।साथ ही नितान्त एकान्तमें श्रीप्राणनाथकी मिलन-चटपटीमें कछू आँसू बहायकें इनकूँ धोयले। पवित्र बनाय ले।

वृद्ध पुरुषनकूँ देखिकें शरीरकी परिणामशीलताकौ अनुभव करै।

श्रीभगवत्-गुणानुवाद सुननौं।

अवसर मिलिवेपै संतनकौ सदुपदेश सुननौं।

कृपा करिकें कोई अपने हितकी बात कहै तौ वाकूँ प्रेमसौं सुननौं।

अधिक आहार रोग उपजावै है, जठराग्निकूँ विकृत करै है या कारण अत्याहार करनौं पाप है।

अधिक आहार ब्रह्मचर्य-पालनमें बाधक है।

अत्याहारसौं सतोगुणकौं ह्रास होय है।

जहाँतक बनै नियमित समयपै ही आहार करि लेय। भोजन खूब चबायकें धीरे-धीरे करनौं चहिए।

काहू प्रकारकी हड़बड़ीमें भोजन न करै।

साधककूँ बार-बार ही खायवेसौं बचनौं चहिए।

चटोरपनसौं बहुत ही सावधान रहनौं चहिए।

यदि उचित मात्रामें सात्त्विकी आहार कियौ जाय तौ भजनमें बड़ी सहायता मिलै है।

मेरे श्रीसद्‌गुरुदेवमें दृढ़ श्रीभगवद्भाव हैवेके कारण ही मोकूँ सब संतनमें, सब शास्त्रनमें और समस्त चराचरमें भगवान्‌के दर्शन हौयँ है अर्थात् पहले अपने श्रीसद्‌गुरुभगवान्‌में दृढ़तम भगवद्भाव करिलै तौ याके परिणाम-स्वरूप सबमें श्रीभगवान्‌कौ दर्शन होयवे लगैगौ।

दृष्टिके संयम सौं मन शान्त होय है और चित्तकी एकाग्रता होय है।

जबतक नेत्र प्राकृतिक वस्तुन कूँ देखिवेमें रस लेयँ हैं, तबतक श्रीभगवद्दर्शन कहाँ? दर्शनके ताँईं तौ अत्यन्त पवित्र नेत्रनकी आवश्यकता है।

पवित्र नेत्र वह जो अपवित्र वस्तुन कूँ न देखैं और श्रीभगवद्दर्शन कूँ ललकैं, अश्रु बहावैं तथा आप ही आपकूँ पवित्र करैं।

काम कौ मूल है रूप और रूप है विषयचक्षु कौ। सहज स्वभाव बस चक्षु रूपकी ओर ही धावैं हैं। इनकूँ संसारके रूप सौं हटाय कैं श्रीभगवान्‌के रूपमें लगानौं हैं।

याके मुख्य उपाय हैं—

सहसा दृष्टि न उठै।

कदाचित् काऊ अपवित्र वस्तु पै भूल सौं दृष्टि परि जाय, तौ फिर दुबारा दृष्टि न उठन पावै।

स्त्रीके देखिवेके विचार सौं तौ दृष्टि उठै ही नहीं।

नित्य प्रातःकाल सौं शयनपर्यन्त यह स्मरण रहै तथा चिन्तन करतौ रहै कि दृष्टि-संयम करनौ हैं।

सतत दृष्टि नीची राखनीं।

मार्गमें चलते समय दृष्टि बीच-बीचमें यत्किंचित् उठायकैं, आगे कौं मार्ग देखिकैं, पुनः अपने पैरन माऊँ दृष्टि करिकैं ही चलै।

जा समय जो काम करते हौयँ, वा समय दृष्टि वाही काम माऊँ रहै।

जब दृष्टि उठै, तब विचारि कैं ही उठै कि कोई दोष तौ नायँ।

दोषकी जैसैं ही आशंका होय, तत्काल सावधान है जानौं।

मानसी परिक्रमामें हूँ दृष्टि पूरी तरह संयमित ही रहै।

दृष्टि कूँ उतनी ही दूरि फैकैं, जितनी आवश्यकता होय।

मनकी चाल कूँ सदा रोकते रहनौं, याकी चालाकी, हठ आदि कूँ देखते रहनौं।

मनके विचारन पै पानी फेरते रहनौं, जासौं यह निर्बल परतौ जाय।

निरन्तर भजन करते रहनौं चहिए।

विषय-चिन्तन सौं सदाँ मन कूँ हटाते रहनौं। दोष दिखाय कैं बचाते रहनौं चहिए।

साधुता पालन करिवेमें पूर्ण दृढ़ता रहै। यदि साधुता कौ ठीक-ठीक पालन है जाय, तौ सबरे अनर्थ स्वयं ही निवृत्त है जायँ है।

वृत्तिके सुधारिवेमें बहुत ही सावधानता बरते।

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्याद्
वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधात्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात्
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः।

× × ×

चक्षुर्भ्यां हसते विद्वान् दन्तौष्ठैश्च मध्यमः।
अधमा अट्टहासेन न हसन्ति मुनीश्वराः॥

साधु ऐसा चाहिए, दुखै दुखावै नाँहि।
फूल पात तोरै नहीं, रहै बगीची माँहि॥
बालकपन ते हरि भजै, जग ते रहै उदास।
तीरथ हू आशा करै, कब आवे हरि दास॥

कैसी हू परिस्थिति आय जाय, किंतु स्वभावमें उत्तेजना न उपजन पावै।

दिन-व-दिन स्वभावमें सरलता बढ़ती ही जाय।

काहू बात कौ अहंकार न उपजन पावै।

स्वभावमें कोई दोष दीखि जाय तौ वाकूँ तत्काल निकारि फैंकै।

'स्वभावविजयः शौर्यम्'।

एक-एक क्षण श्रीप्राण-प्रियतमकी आराधनामें ही व्यतीत होय, या बात कौ बहुत ही ध्यान रहै।

जहाँ ताँई है सकै, अन्य आवश्यक कार्यनमें समय बहुत ही अल्प मात्रामें लगावै।

श्रीभगवत्-आराधनामें हूँ श्रीनाम और चिन्तन ही प्रधान रहै। याहीमें समय अधिक लगावै।

जितनौं नियम नित्य कौ बनाय लेय, वासौं अधिक भजन तौ भले ही है जाय, परंतु कम कैसैं हूँ न हौन पावै।

भजनके ताँईं ही श्रीजीवनधनने संसार सौं बचायकैं यहाँ बसाये हैं। अतएव हमें चहिए कि प्राणपण सौं भजन करिवेमें ही लगे रहैं।

कामना-वासना केवल भजनकी ही होय।

आहार, शयन तथा आरोग्यता आदिकनकौ विचार केवल भजनके ताँईं ही होय।

जहाँ भजन करिवेमें बाधा दीखै, ऐसे व्यवहार कूँ तथा संकोच कूँ सर्वथा त्याग दैनौं चहिए।

श्रीनाम-जप कौ इतनौं अभ्यास बढ़ावै कि बिना प्रयत्न किये ही जिह्वा स्वत: ही श्रीनाम-जपमें लगी रहै। शयनके समयमें हूँ श्रीनाम-जप होयवे लगै।

जहाँ जायवे सौं, जहाँ बैठिवे सौं भजनमें बाधा परती होय, वहाँ सौं अपने कूँ बचाय लैनौं चहिए।

साधुके जीवनमें व्यवहार प्रधान नहीं, केवल भजन ही प्रधान हौनौं चहिए। याकौ अर्थ यह नहीं कि व्यवहारमें रूक्षता बरती जाय। नहीं, नहीं कदापि नहीं। भक्त कौ व्यवहार कबहूँ कटु और रूक्ष नहीं होय है। अति सरल, अति सरस और अति मधुर होय है।

समय कौ लोभ भजनमें परम सहायक है।

नित्य प्रात:काल यह संकल्प करै कि आज मैं पूर्ण रूप सौं भजन करूँगौ, प्रमाद नहीं हौन पावैगौ।

नित्य सायंकाल शयन सौं पूर्व, द्वै बातन कौ विचार अवश्य करि लेय कि आज नियमन कौ पालन कैसौ भयौ तथा भजन करिवेमें कैसी तत्परता और कैसी लगन रही? ये दौनौं कार्य नित्य ही करि लेय।

भजन करिवेमें कौन-कौन सहायक है तथा कौन-कौन

बाधक है? यह सूक्ष्मताके साथ विचारते रहनौं। सहायकनकी वृद्धि एवं बाधकन कौ त्याग करते रहनौं चहिए।

यही प्रयत्न करनौं, जासौं भजन निर्वाध रूप सौं होतौ रहै।

एकान्तवास भजन करिवेमें परम सहायक है। यासौं विशेष रूप सौं एकान्तवास ही करै।

श्रीसद्‌गुरु-भक्ति, एकान्तवास, सात्त्विक आहार, निश्चिन्तता, आरोग्यता, नियम-पालन, निरपराधता, तप, संयम, प्रसन्नता, वैराग्य, श्रीप्राण-प्रियतममें प्रीति—ये सब भजनमें परम सहायक हैं।

एकान्त स्थल पै बैठिकैं यथाशक्ति निश्चेष्ट हैकैं, शान्तिके साथ जिह्वा सौं, श्रीनाम कौ शुद्ध उच्चारण होय, साथ ही श्रवणहू सुनैं और मन सौं श्रीजीवनधन कौ चिन्तनहू होय तथा सांनिध्य कौ अनुभव हू होतौ रहै, ऐसौ भजन बनै, ऐसौ प्रयत्न करनौं। या समय काहू आसन सौं बैठि सकै तथा कछु क्षण मेरुदण्ड सूधौ रहै तौ उत्तम ही है।

ऊँघते भए, निद्रा कौ सुख लेते भए भजन करनौं महापाप है। यासौं सर्वथा अपने कूँ बचाय लैनौं चहिए।

चाहैं कछु हू होय, ऐसौ भजन तौ करनौं ही नहीं।

भजनके समय बार-बार जँभाई लैनौं, यहू भजनमें तमोगुण उपजावै है। अतएव यासौं बहुत ही बचनौं।

यासौं वा स्थान पै अशान्ति बढ़ै है। मन कूँ चंचल बनावै है।

इनकूँ सहन करि लैनौं, यह कैसैं हूँ उचित नहीं। भजन होय, साथ ही पूर्ण विधि सौं होय, यही कर्तव्य है।

काहू दोष कूँ सहन कर लैनौं, वामें वृद्धि करनौं हैं। इनके हटायवेमें प्रमाद करनौं पाप करनौं हैं।

यह स्मरण रहै कि उत्तम विधि सौं श्रीनाम-जप होय, ऐसौ ही प्रयत्न करनौं।

मुख्य है आलस्य त्यागि कैं भजन करनौं। बैठनौं ही मुख्य नहीं।

अपने अनुकूल युक्ति सोचै, काममें लावै, किंतु बचै सर्वथा आलस्यके आक्रमण सौं।

जहाँ ताँईं है सकै, बचै भोगन सौं। सरल तथा साधारण ढंग सौं जीवन-यापन करिवे कौ ही विचार राखनौं।

रजोगुणी नहीं बननौं।

बढ़िया वस्त्र एवं बढ़िया स्थान—ये सत्त्वगुणमें बाधा करैं हैं। अतएव साधारणता कूँ ही अपनाते रहनौं चहिए।

अति सूक्ष्मता सौं यह देखते रहनौं कि हमारे विचार स्वत: कैसैं उठि रहे हैं। यह अति आवश्यक है कि सदैव सत्-विचार ही उठैं तथा इनकूँ ही बढ़ाते रहनौं चहिए।

असत्-विचार उठन ही न पावैं। यदि कदाचित् असत्-विचार नैंकहू उठिवे लगैं, तौ तत्काल ही इनकूँ दबाय दैनौं।

श्रीसद्गुरुदेवकी शरणागति प्राप्त करनौं साधु कौ सर्वप्रथम कर्तव्य है।

श्रीसद्गुरुदेवमें अधिक-सौं-अधिक श्रद्धा-भाव राखनौं।

दिन-व-दिन श्रद्धा बढ़ाते रहनौं।

अपनी बुद्धिमता कौ त्याग करिकैं इनकी आज्ञाके अनुसार अपनी धारणा बनानौं।

इनकी आज्ञाके विरुद्ध कोई काम नहीं करनौं।

समस्त साधन तथा साध्य-प्राप्ति कौ मूल है—श्रीसद्गुरु-भक्ति।

ऐसे उपाय करते रहनौं, जासौं श्रीगुरु-भक्ति बढ़ती ही रहै।

साधनके विषयमें जो कछु समझनौं, सुननौं होय वह अपने श्रीसद्गुरुभगवान् सौं ही समझनौं, सुननौं चहिए। फिर जानिवेकी इच्छा ही न रह जाय, जो फिर कहुँ अन्यत्र जिज्ञासा करनी परै।

जब ताँईं पूर्ण बोध न है जाय, तब ताँईं पूछिवेमें संकोच न करै।

श्रीसद्गुरुभगवान्‌में मनुष्य-भाव राखनौं पाप है।

बिना विचारे, बिना तर्क किये, इनकी आज्ञाका पालन करनौं ही साधु कौ परम कर्तव्य है।

शीघ्रातिशीघ्र साधन-सम्बन्धी समस्त विषयन कूँ समझि लैनौं उचित है।

प्रथम प्रेम-प्राप्तिके उपक्रममें

इतने बड़े विश्वमें हमारौ एकहू शत्रु न होय, फिर प्रधान वस्तु है **'प्रेम'**।

लक्ष्यमें दृढ़ता

केवल और केवल श्रीभगवान्‌में ही प्रेम होय, याहीके ताँईं साधन, भजन, चिन्तन, नियम, संयम हौयँ। समस्त जीवन ही याहीके ताँईं होनौं चहिए।

याके ताँईं आवश्यक हैं—श्रद्धा, पवित्रतम जीवन, कामनाकौ अभाव और प्रेम-प्राप्तिकी उत्कट उत्कण्ठा—ये चारयौं ठीक-ठीक पालन है रही हैं, याकी पहचान है अपने स्वभावमें दिन-व-दिन सरलता आती जाय रही है।

रजोगुण छू न जाय, सतत सत्त्वमें ही डूब्यौ रहै।

मोह होय केवल श्रीभगवान्‌में और श्रीभगवत्-जननमें।

अपने कूँ सदाँ उठातौ ही रहै।

चिन्तन बढ़ै, कल्पना बढ़ै मनके द्वारा वाही लोकमें। सतत श्रीभगवान्‌की ओर झुकाव बढ़तौ ही रहै। यही है उत्थान।

संसारकी ओर झुकाव बढ़नौं ही है पतन।

संसारी प्राणिनके साथ व्यवहारमात्र ही पालन करै।

आसक्ति कहूँ न हौन पावै, साथ ही सब यही समझैं कि हमसौं बड़ौ स्नेह करैं हैं।

सबकौ मूल उद्गम-स्थान है दृढ़तम श्रद्धा।

सतत इष्टदेवकी याद करनौं स्मरण है।

प्रथमावस्थामें इन्द्रियनके द्वारा श्रीभगवत्-सम्बन्धी वस्तुन कौ सादर ग्रहण करनौं श्रीभगवत्-स्मरणमें ही मान्यौ जाय है। यथा—

जिह्वा सौं लयके साथ श्रीनाम-जप होय।
श्रवण सुनै, मन आनन्द कौ अनुभव करै॥

यह श्रीभगवत्-स्मरण ही है। कारण कि नाम और नामी एक ही वस्तु मानी जाय है। स्थूल रूपमें यदि हाथ श्रीप्राणनाथकी सेवामें लगे हौयँ, तौ यह श्रीभगवत्-स्मरण ही मान्यौ जायगौ। यद्यपि हस्त कर्मेन्द्रिय हैं और इनकौ कार्य साधारण ही मान्यौ जाय है। तथापि श्रीभगवान् एक ऐसी विलक्षण वस्तु है कि वहाँ साधारण ही प्रधान है जाय है।

श्रीनाम कौ श्रवण श्रीभगवत्-स्मरण सौं हूँ कछु अधिक समझनौं। लयके साथ सप्रेम श्रीनामोच्चारण तथा श्रवण-सौं-श्रवण, साथ ही मनमें आह्लाद, यह अवस्था समाधिके तुल्य ही है।

देह तथा देह-सम्बन्धी वस्तुन कूँ भूल जानौं, मनमें अपार आनन्दरस कौ प्रवाह बहनौं, यह श्रीप्राणनाथ कौ सांनिध्य ही तौ है। वस्तुतः सांनिध्य ही है।

श्रीनामाश्रय ही समस्त साधनन कौ चरम फल है। यही श्रीप्राणनाथकी प्राप्ति है और मिलन है।

परमपूज्य श्रीपण्डितजी महाराजकी स्पष्ट महावाणी—
जो हम करैं सो मत करौ। जो हम बतावैं सो करौ।

जो साधक मन लगाय कैं साधन करैं हैं, उनके ताँईं प्रेममें प्रवेश करिवे कौ मार्ग अन्यकी अपेक्षा सुलभ है जाय है। कारण साधन तौ करि ही रहे हैं। अब इनकूँ तौ स्मरण-चिन्तन तथा

सांनिध्य कौ अभ्यास करनौं है। ये कार्य मनके द्वारा ही हौयँ हैं। जितने कार्य हैं, सब मन ही तौ करै है। मन ही की कल्पना है। यामैं सब वस्तुनकी कल्पना ही करी जाय है। यह है कल्पना-राज्य। अतः कल्पना बढ़ानी चहिए। फिर या मार्गमें बाधा हू तौ बहुत हैं। विचारपूर्वक देखिवे सौं ज्ञात होय है कि सब बाधन कूँ कामना ही तौ पोषण करै है। बढ़ाय है। अतः कामना कूँ मिटावै।

याकौ सार है—प्रेम-प्राप्तिके ताँईं एक ही सूत्र, कल्पना बढ़ावै और कामना मिटावै।

श्रीसद्गुरु—भक्ति कौ नाम ही श्रद्धा है।

श्रीसद्गुरुभगवान्की आज्ञा कौ पालन करनौं ही श्रद्धा कौ स्वरूप है।

इनके वाक्यन कूँ ज्यौं-की-त्यौं मान लैनौं तथा बुद्धि कूँ तोरि-मरोरि कैं धरि दैनौं ही श्रद्धाकी क्रिया है।

सर्वप्रथम यह समझ लैनौं कि अध्यात्ममें जितनी हूँ ऊँची-सौं-ऊँची प्राप्य वस्तु हैं, प्रेम-विरहतक, वह सब श्रद्धा ही सौं मिलैं है।

जितनी श्रद्धा दृढ़ होयगी, उतनी ही शीघ्रता सौं मार्ग तय होयगौ, नहीं तौ विलम्ब लगैगौ।

साधनके अनेक अंग हैं, सब करणीय हैं।

पूर्ण तत्परता सौं मन लगाय कैं, रात-दिन एक करि दे। अधिक-सौं-अधिक साधन करै। ऐसौ करते भये हू अपनेमें दैन्य ही बढ़ातौ रहै। अपने कूँ कछू मान न बैठै। सतत यही सोचै कि मैं का करि सकूँ? याही धरातल पै अपने पूर्वाचार्य जो भजन-साधन करि गये तथा आज हू जो करि रहे हैं, मैं तौ उनके सम्मुख मच्छरके बराबर हू नहीं हूँ।

या प्रकार साधक अपने साधन कूँ बढ़ातौ जाय है। तब जैसें-

जैसें साधन बढ़ै है, वैसें-वैसें ही साधक कूँ भगवान्‌की महत्ता और अपनी क्षुद्रता दीखिवे लगै है। तब वह सोचिवे लगै है कि कहाँ मेरे श्रीप्राणाधार—श्रीभगवान् और कहाँ मैं एक क्षुद्र जीव। मैं अपने बल सौं इनकूँ पाय सकूँ? कदापि नहीं। हाँ, यदि ये ही कृपा करिकैं मोकूँ अपनाय लैं, तब ही सम्भव है। तब यह कृपा-कृपा चिल्लायवे लगै है। ये तौ अकर्मण्यता है। कछू करनौं चाहै नहीं, परिश्रम सौं दूर रहै और चाहै श्रीभगवान् कूँ। यह तौ बंचना है। अत: अपनौं पूर्ण प्रयास होय, साथ ही कृपा कौ पूर्ण अवलम्बन होय, तब ही साधक कूँ लक्ष्यकी प्राप्ति होय है। ऐसौ साधक ही अपनी दीनतावश समस्त उपलब्धिन कूँ कृपा-साध्य मानै है। याही सौं उत्थान होय है।

सबसौं भारी अवगुण तौ यह है कि हम दूसरे कूँ ही देखैं हैं, अपने कूँ नहीं देखैं। यदि अपने कूँ देखिवे लगि जायँ, तौ दूसरेकी ओर विचार करिवे कौ अवकाश ही नहीं मिलैगौ।

दूसरेकी ओर देखिवे सौं लाभ का? हानि-ही-हानि है। न हम काऊके गुरु, न मालिक। जो सुधरिवेके ताँईं कहैं। साधककूँ अपनौं सुधार करनौं है। याहीसौं सब कछु होयगौ। हाँ अपने आचरण शुद्ध बनावैं। ऐसे बनावैं कि, आदर्श बनि जाय। सबकूँ वामेंसौं शिक्षा मिलै, जो चाहै वाके अनुसार अपने आचरण बनाय सकै। यदि काऊकौ दोष दीखि हू जाय, तौ वाकूँ देखिकैं मनमें यही विचार आवै कि श्रीभगवान्‌ने इनकूँ ऐसौ बनायौ है, तब ही तौ ये ऐसौ करि रहे हैं। यदि हमकूँ ऐसौ बनाय दियौ होतौ, तौ हमहूँ यही करि रहे होते। जीवमात्रमें दोष-गुणकौ मिश्रण भर्‌यौ है। जब दूसरे लोग हमारे अवगुणनकूँ सहन करि रहे हैं, तब हमकूँ हूँ दूसरेनकी बुराई सह लैनी चहिए। हमारौ नियम है, परदोष-दर्शन तथा परचर्चासों सर्वथा बचनौं। तब हम यासौं क्यौं नहीं बचैं? परदोष-

दर्शन ही विरोधकौ मूल है। याहीसौं द्वेष बढ़ै है, शत्रुता बढ़ै है तथा पतनकौ मार्ग तैयार होय है। आजकल साधु-समाजमें हूँ स्वेच्छाचार बहुत बढ़ि गयौ है। साधु जो चाहै सो खावै है, जो चाहे सो बोलै है, जो चाहे सो करै है, याहीमें अपनौ गौरव मानै है, बड़प्पन मानैं है। हमें यासौं सतत सावधान रहिकैं शिक्षा लैनी है कि जबतक हम सब कछु खाते रहेंगे, सब कछु करते रहेंगे और सब कछु बोलते रहेंगे, तबतक हमारौ लक्ष्य हमसौं कोटिन कोस दूर ही है। ये रहनी लक्ष्यकूँ दृढ़ नहीं हौन देगी। प्रत्युत शिथिल ही करैगी। शिथिल करते-करते एक दिन लक्ष्यसौं पूर्णरूपेण विमुख करि देगी। अतएव स्वेच्छाचारसौं बहुत ही बचनौं है। पूरौ बचनौं है। आचरणशुद्धिकी बहुत ही आवश्यकता है।

आचरणशुद्धिमें मुख्य है—१-जिह्वाकौ बोलनौं, २-भोजनकी शुद्धि और ३-उपस्थकौ संयम। साथ-ही-साथ ये हू स्मरण रहै कि अध्यात्ममें सबसौं बड़ी बाधा है—अहंकार, आसक्ति तथा असंयम।

प्रेम चाहै है बलिदान—यदि प्रेमकी लालसा है तौ करौ बलिदान अपनेकूँ तथा अपने सर्वस्वकूँ, अपनी सम्पूर्ण कामना-वासनानकौ उन्मूलन। निर्वासनिक हृदय, एकदम खाली। कोई विचार नहीं, कोई संकल्प-विकल्प नहीं, कोई आशा-तृष्णा नहीं तथा कोई लालसा, इच्छा हू न रहन पावै। बस, एक ही कामना, एक ही वासना कि कब अपने श्रीप्राणप्रियतमके प्रेमसिन्धुमें डूबूँ? और कब इनकी स्नेहपूरित हृदयसौं सेवा करूँ? याके ताँईं निरन्तर भजन। जिह्वा, यन्त्रकी भाँति श्रीनाम-जप करती रहै। याके साथ-साथ श्रीप्राणनाथके सांनिध्यकौ अनुभव करतौ रहै। हृदय मृदु बनैं, कठोरता छू न जाय।

अन्तर्दृष्टि—याके ताँईं प्रयास।

प्रयास का है?

जो प्रेम-प्राप्तिमें सहायक होय, वाकूँ अपनावै, जीवनप्राण बनावै और जो बाधक होय, वाकूँ दूर सौं ही फैंकि देय।

सहायक हैं—श्रद्धा, निरभिमानता, क्षमा, उदारता, नम्रता, प्रपंचराहित्य, सरलता, विकारनकौ अभाव, सतत सावधानता तथा महदनुग्रहकी आकांक्षा।

बाधक हैं—तर्क, रूक्षता, प्रपंच, स्त्री, बालक, कायरता, उत्साहहीनता, अकर्मण्यता तथा मनकी चंचलता।

हम प्रेम-पथके पथिक हैं। प्रेम प्रियतमके समान ही पावन है। यासौं हमकूँ हूँ परम पवित्र बननौं होयगौ।

कृपाचिन्तन, प्यार तथा आत्मीयतासौं मनकूँ इनमें ही जुटातौ रहै; क्योंकि प्रेमपथमें प्रधान है—आत्मीयता। 'इतनी बड़ी सृष्टिमें केवल श्रीजीवनधन ही एक मेरे हैं और दूसरौ कोई मेरौ है ही नहीं।' जब यह धारणा दृढ़ बनि जायँगी, तब-तौ जो कछु क्रिया, विचार, संकल्प हौयँगे, वे सब सहजहीमें स्वभावत: इनके ताँईं ही हौयँगे। करने नहीं परिंगे। बिना प्रयासके ही त्याज्य वस्तुनकौ स्वत: ही त्याग है जायगौ। प्रेमपथके पथिकके ताँईं जा बलिदानकी परमावश्यकता है, वही बलिदान बिना प्रयासके स्वयमेव है जायगौ। करनौं नहीं परौगौ। यासौं सर्वप्रथम या धारणाकूँ ही दृढ़ करि लेय, तौ अन्य वस्तु तौ याके फलस्वरूप स्वयमेव प्राप्त है ही जायँगी। अपने इष्टकी सतत याद करनौं ही स्मरण है और इनके रूप, गुण, लीला और धामकूँ सौचनौं ही चिन्तन है। ये दोऊ सांनिध्यके ही अंग तौ हैं। सांनिध्यकी ही प्रक्रिया तौं हैं ? जब हम कबहूँ काहूकौ चिन्तन करिवे लगै हैं, वह चाहैं कोई वस्तु होय, चाहैं कोई स्थान होय, चाहैं कोई व्यक्ति होय। तब वाकौ रूप, गुण, स्वभाव सब-कौ-सब ज्यौं-की-त्यौं हमारी आँखिनके सम्मुख साकारसौ ही आयकैं ठाढ़ौ है जाय है। यह वासौं कोसन दूरि रहते

भये हू वाकौ सांनिध्य ही तौ है। अतएव सांनिध्य प्रधान वस्तु है। जैसैं साधन-प्रक्रियामें नामाश्रय प्रधान वस्तु है, वैसैं ही सांनिध्य हू प्रधान वस्तु है। यदि श्रीनामाश्रयके साथ-साथ सांनिध्यकौ हू अभ्यास निरन्तर बढ़तौ चलै, तौ लक्ष्य अतिशीघ्र हाथ लगि जाय है। निरन्तर अपने जीवनधनके नाम, रूप, लीला और गुणनकौ ही चिन्तन-मनन होतौ रहै। भाँति-भाँतिसौं सेवाके संकल्प, कामना, अन्त:करणमें गूँजती ही रहैं। यही श्रीप्राण-प्रियतमकौ सांनिध्य करनौं है। यही सांनिध्य एक दिन पूर्णरूपेण साकार है जायगौ। जो साधककौ एकमात्र प्राप्तव्य है। जब हमारी समस्त इन्द्रियनकौ विषय एकमात्र श्रीभगवान् ही बनि जायँगे तथा जब यह बात पूर्णरूपेण अभ्यासमें आय जायगी। तब हमकूँ केवल श्रीभगवान् ही दीखेंगे। तब दर्शन करै इनके, सुनै इनकूँ, बोलै इनकूँ और विचारै इनकूँ। चिन्तन-स्मरण करै इनकौ ही। याहीकूँ भगवदाकारवृत्ति या तदाकारवृत्ति कहैं हैं तथा याहीकूँ भगवद्दर्शन कहैं हैं।

साधककी प्रशंसा या बातमें नहीं कि ये इतनौं अधिक भजन करै है। साधककी प्रशंसा तौ या बातमें है कि याकौ कितनौं कम समय व्यर्थ जाय है अथवा किंचित् हू व्यर्थ नहीं जाय है। अपनौं पूरौ समय श्रीप्रियतमकी यादमें ही खर्च करै है। २३ घंटा भजन करिकैं, यदि १ घंटा अपनी मनमानी बहिर्मुखतामें खर्च करै है, तौ या २३ घंटाके भजनकी अपेक्षा वा १ घंटाके भजनकौ अधिक महत्त्व है, जो १ घंटा भजन करिकैं २३ घंटा वाके वृद्धिके चिन्तनमें, वाके सुरक्षित करिवेमें लगावै है। वास्तविक भजन तौ यही है। आवश्यकता तथा अवकाश ही भजनमें अन्तराल लावै है। जाकूँ जितनौं अधिक अवकाश होयगौ, वह उतनौं ही अधिक प्रपंच करैगौ। ठालो तौ बैठ नहीं सकै, कछु-न-कछु तौ करैगौ ही। जाकी जितनी आवश्यकता बढ़ी हौयँगी, वह उतनौं ही धनिकनकी गुलामी

करैगौ, उनके पीछें डोलैगौ ही। जो श्रीभगवान्कूँ छोड़िकै संसारकी गुलामी करैगौ, वाकी का दशा बनैंगी, यह तौ सब जानैं ही हैं, कछु कहवेकी बात ही नायँ।

हमकूँ यह कबहूँ नहीं भुलानौ चहिए कि वैराग्य ही अध्यात्मकौ स्तम्भ है। कोई हू मार्ग होय, ज्ञान या भक्ति। वामें सफलता तौ वैराग्य सौं ही मिलै है। ज्ञानके ताँईं तौ वैराग्य आवश्यक है ही, बिना वैराग्यके ज्ञान है ही नहीं सकै। वैसें ही भक्तिमार्गमें हूँ वैराग्यकी परमावश्यकता है। भक्तिमार्गके जितने हू साधन हैं, उनकौ संवर्धन हू तौ वैराग्यसौं ही होय है तथा सब याही सौं पुष्ट हौयँ हैं। भगवत्प्राप्ति हू यही करावै तथा प्रेममें हूँ यही डुबावै है। प्रेममें डुबिवेके ताँईं साधन है—मनकूँ शुद्ध करनौं। मन खाली करनौं। खाली मन ही भगवान्में लगै है और प्रेममें डूबै है। अत: वैराग्यकी यथार्थ परिभाषा है—खाली मन। मनकूँ कोई वासनिक कर्तव्य न होय, कोई भार न होय, कोई चिन्ता न होय, कोई कामना न होय, यह है—मन खाली। इनके अतिरिक्त मनमें कोई चाह न होय। अन्त:करणके काहू कौनेमें कोई चाह न दुबकी होय। केवल और केवल इनकी ही चाह, इनकी ही कामना, वासना होय। यही तौ है—मनकौ खाली हौनौं। याहीकौ नाम है—वैराग्य।

पाषाणके समान शीतकालकौ घृत अग्निके सांनिध्यसौं पिघलिकैं बहवे लगै है। अपनी कठोरता त्यागिकैं द्रव है जाय है। रूप बदल जाय है। स्थिति हू परिवर्तित है जाय है।

पतिव्रता चिरविरहिणी अबला अपने प्राणनाथके आगमन-मात्रसौं विरहाग्निसौं मुक्त है जाय है। अन्त:करण खिल उठै है। दर्शन करिकैं, सेवा करिकैं तथा बोलि बतरायकैं कैसी है जाय है? अनुभव करिवेके योग्य हैं ये स्थितियाँ।

चिन्तनके विषय—कितनी कृपा भई है? हम याकौ सदुपयोग करि रहे हैं या नहीं? श्रद्धामें शिथिलता तौ नायँ है रही? काहू बातकौ अहंकार तौ नहीं है रह्यौ है? काहूमें आसक्ति तौ नायँ करि बैठे? काहू सौं विरोध तौ नहीं है रह्यौ है? सदाचार कैसौ पालन है रह्यौ है? साधनमें रुचि कैसी है? विलासिता तौ नायँ बढ़ि रही? इनके अतिरिक्त मनमें कोई इतर कामना तौ नायँ बनि रही? लीलानकौ चिन्तन। जापै कृपा भई होय वाके विचार, रहनी, लगन, लालसा, श्रद्धा, विश्वास तथा प्रेम देखनौं-विचारनौं। यथा—शबरी, गीध, यशोदा, नन्द और गोपी। कबहूँ मैं हूँ ऐसौ बनूँगौ? काहूके दोषनकौ विचार नहीं करनौं कि वे ऐसे हैं—

'सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥'

व्यर्थ चिन्तन न हौन पावै। शास्त्र-वाक्यनकौ चिन्तन करनौं। दुर्गुणन सौं अपने कूँ बचाय लेनौं तथा श्रीसद्गुणन कूँ धारण करि लैनौं। राजनीति सौं दूर रहनौं। इनसौं ही सुखी और इनके बिना दु:खी हौनौं। स्त्री, धन, धरणी तथा अहंकार—इनसौं बचिवेकौ पूर्ण-चिन्तन। कछु है जाय, किंतु क्रोध न उपजन पावै, यह चिन्तन परमावश्यक है। स्वभाव सुधारनौं। अपने दोषन कूँ सहन नहीं करनौं। शीघ्रातिशीघ्र मिटाय दैनौं। जो कह देय, वाकौ पूरौ पालन करनौं। गरम परि जानौं, भड़क उठनौं तथा चंचलता सौं सावधान रहनौं। शान्त, गम्भीर, उदार तथा शीलवान् बननौं। गुरुजननमें समान श्रद्धा-भाव राखनौं।

साधन करिवे सौं ख्याति तौ होय ही है। यदि याके पचरेमें आय गये, तौ पतन अवश्यम्भावी। अत: यासौं बचनौं।

बचिवेके उपाय हैं—सर्वप्रथम तौ ख्यातिकी चाह ही न होय। दूसरौ याके ताँईं चेष्टा हू न करै। यदि ख्याति होय, तौ

अपने कूँ मान न बैठे। सब खेल तुम्हारौ ही है मेरे जीवन-धन! मैं तौ जो हूँ, सो तौ तुम सब जानौं ही हौ।

माया सौं बचिवेके ताँईं तथा सर्वविघ्न-शान्तिके ताँईं एक ही उपाय है कि—लक्ष्य और महदाश्रय दृढ़ होय, साथ ही कृपाकी स्मृति हू रहै।

अध्यात्मकौ मूल है श्रद्धा। श्रद्धा जितनी बढ़ैगी, काम-उतनौं ही शीघ्र बनैगौ। सात्त्विकी श्रद्धा सौं श्रीसद्गुरुभगवान्‌की आज्ञा-पालनमें लगि जानौं चहिए। फिर तौ जो प्राप्त होयगौ, सँभारनौं कठिन है जायगौ। याही कारण श्रद्धा कूँ बढ़ाते रहनौं चहिए। हाँ, श्रद्धामें हौनी चहिए सत्यता।

अध्यात्म-पथकी सत्यता है श्रद्धा। सत्यताके साथ पवित्रतम जीवन बनाते भये अध्यात्म-पथमें आगे बढ़ै। फिर तौ दुर्लभ कछु है ही नहीं।

श्रद्धा ही भक्ति-मार्गमें मुख्य है। श्रीसद्गुरुके सत्संग और सेवा सौं याकौ बार-बार सिंचन करते रहनौं चहिए। श्रद्धा इतनी हलकी वस्तु है, जैसें कपूर; पतौ नहीं यह कब उड़ि जाय? श्रद्धामें कुसंग बड़ौ बाधक है। भूलि कैं हूँ अश्रद्धालु और श्रीभगवद्विमुख लोगनकौ संग न करै। श्रद्धालुनकौ ही संग करै।

केवल श्रद्धासहित श्रीसद्गुरुभगवान्‌की आज्ञाकौ ज्यौं-की-त्यौं, बिना कछु सोचे-विचारे, बिना परिणाम देखे, अक्षरश: पालन करिवे सौं एक ही जन्ममें उद्धार है जायगौ। अपनी बुद्धि न लगावै, नहीं तौ पतन है जायगौ।

श्रद्धाकौ यही तौ प्रताप है कि, वह कैसौ हू संदेह नहीं रहन देय है।

श्रद्धा ही सब काम बनावै है। यदि श्रीसद्गुरुभगवान्‌में दृढ़ श्रद्धा है, तौ पवित्रतम जीवन तौ बनैगौ ही समस्त कामनानकौ नाश हू

स्वत: ही है जायगौ तथा श्रीभगवत्-प्रेमकी ऊँची-सौं-ऊँची अवस्था अनायास ही प्राप्त है जायगी। इनके ताँईं प्रयत्नकी आवश्यकता है ही नहीं। श्रद्धालुके ताँईं तौ एक ही कर्तव्य है कि वह निरन्तर उत्तरोत्तर अपने श्रीसद्गुरुभगवान्‌में अपनी श्रद्धा कूँ बढ़ातौ ही रहै। अपनौं पूरौ प्रयत्न तौ केवल श्रद्धाके ताँईं ही हौनौं चहिए। श्रद्धालुके ताँईं अध्यात्मकी ऊँची-सौं-ऊँची उपलब्धि आनुषंगिक है। अत: यही प्रयत्न रहै कि श्रद्धा दिनौदिन बढ़ती ही रहै।

श्रद्धा दृढ़ है, याकी पहचान है कि वह पाप नहीं करि सकै। श्रद्धा पाप नहीं बनन देय है और श्रीसद्गुरुमें हू श्रीभगवद्भाव दृढ़ बनाय देय है। जासौं उनमें दोष दीखैं ही नहीं हैं।

श्रद्धा सौं हृदयमें प्रकाश होय है और माया सौं अन्धकार। श्रद्धा सौं सदाचार, निष्कामता, समता, निरहंकारता, सरलता आदिक सब आनुषंगिक हैकैं हृदयमें आय विराजैं हैं।

श्रद्धा दौनौं ओर काम करै है। एक ओर सौं साधक कूँ संसार सौं छुड़ाय कैं श्रीभगवान्‌की ओर लै जाय है तथा दूसरी ओर सौं श्रीभगवान् कूँ साधककी ओर लैकैं आवै है।

श्रीसद्गुरुदेव—श्रीसद्गुरुकी प्राप्ति कठिन है। यह तौ वाही कूँ प्राप्त हौयँ हैं, जाकूँ नटखट (प्रभु)अपनानौं चाहै है। श्रीसद्गुरु प्राप्त हैवे पै यत्र-तत्र न भटकै। इनके आज्ञानुसार साधन करिवेमें लगि जाय। वस्तुत: शिष्यकौ कल्याण करिवेके ताँईं स्वयं श्रीभगवान् ही श्रीसद्गुरुके रूपमें आवै हैं।

श्रीसद्गुरु साधक कूँ तब ही मिलैं हैं, जब साधककौ अन्तिम जन्म होय है। जैसें दूधमें पानी मिलि जाय है, वैसें ही वह शिष्य अपने श्रीसद्गुरुकी रहनी, स्वभाव तथा आचरणमें घुल-मिल जाय है। श्रीसद्गुरु सौं शिष्यकौ अस्तित्व अलग ही नहीं रहै है। गुरुकी रुचिमें ही शिष्यकी रुचि, गुरुकी प्रसन्नतामें ही शिष्यकी प्रसन्नता,

गुरुकौ प्राप्तव्य ही शिष्यकौ प्राप्तव्य, गुरुकी आज्ञाकौ पालन ही शिष्यकौ परम-कर्तव्य, गुरुकी सेवामें ही शिष्यकौ प्राणार्पण रहे है। निरन्तर श्रीसद्गुरुकी रहनी, स्वभावकौ चिन्तन करते-करते शिष्य श्रीसद्गुरुकौ ही प्रतिरूप बनि जाय है। यही वास्तविक दीक्षा है। यथार्थ शिष्य वही, जो गुरु सौं एकरूप है जाय।

मैं भले ही रह जाऊँ। मैं अपने विषयमें इनसौं (प्रभुसौं) पीछें बात करि लुंगौ। परंतु यह जो मेरी शरणमें आयौ है, याकौ उद्धार तौ याही जन्ममें है जानौं चहिए। मोहूँ सौं पहलें याकौ कल्याण है जाय, जाकी ऐसी भावना है, वही है श्रीसद्गुरु अर्थात् शिष्यकूँ संसार सौं सर्वथा छुड़ायकें प्रभुके हाथमें हाथ पकराय दे—वही है श्रीसद्गुरु।

शिष्य गुरुदेवकौ चिन्तन करिकें वैसौं ही बनि जाय हैं अर्थात् श्रीसद्गुरुके समस्त श्रीसद्गुण चिन्तनके माध्यम सौं शिष्यके अन्त:करणमें अनायास ही आय जायँ हैं। श्रीसद्गुरुकी आज्ञाकौ पूरौ-पूरौ पालन करनौं ही सच्ची सेवा है।

भजन—भजन केवल भजनके ताँईं ही होय। कामना, भजन कूँ चाटि जायँ हैं। यासौं भजन कूँ सँभारिकें राखिवेकी आवश्यकता है। वासना मिटायकें भजन करिवे सौं दिन-ब-दिन वृत्ति उठती ही जाय है।

समस्त इन्द्रियन कूँ बसमें करिकें जो भजन कियौ जाय है वास्तवमें तौ वही भजन है। याके करिवे सौं जो प्राप्त होय है, वह बड़ौ ही दुर्लभ है ।

भजन मन लगायकें हौनौं चहिए। भजनमें बेगार टारिवे सौं तौ मरनौं उत्तम है।

भजन करिवेमें नींद आवै है, किंतु हमने नहीं सुन्यौं कि काहू कूँ बढ़िया भोजन करिवेमें नींद आई होय। भजनमें नींद आनौं,

भजनके प्रति उपेक्षा और रुचिकी कमी हौनौं ही है। याकूँ हम अपराध मानैं हैं।

साधन—मन, बुद्धि, चित्तकूँ श्रीभगवान्‌की ओर लगानौं ही साधन है।

अस्वस्थावस्थामें विवशतावश साधनकौ जौ नियम पूरौ नहीं है पावै, वाकी पूर्ति स्वस्थ, हैवे पै अवश्य करि लैनी चहिए; नहीं तौ साधनमें प्रमाद भयौ मान्यौ जायगौ। जा जीभ सौं श्रीभगवान्‌कौ नाम-जप करै, वासौं परनिन्दा, चुगली, झूठ, व्यर्थ बात न करै। यह पथ्य है। तौ फल तौ प्राप्त होयगौ ही। यदि नहीं है, तौ फल प्राप्त नहीं होयगौ।

शारीरिक-श्रमके साधन सौं इतनौं लाभ नहीं, जितनौं मन कूँ इनमें लगायवे सौं होय है। अपने साधनकौ बल न मान बैठे।

साधन करनौं इतनौं कठिन नहीं, जितनौं साधनकौ पचाय लैनौं कठिन है। साधनकौ फल तब ही बचि पावै है, जब काहू संतमें गहरी श्रद्धा होय।

साधन ही साधक कूँ बढ़ावै है।

साधन ही साधक कूँ सुधारै है।

साधन ही साधक कूँ साध्य सौं मिलावै है।

हाँ, साधन होय काऊ संतकी आज्ञा सौं बतायौ भयौ। अपने मनसौं कियौ भयौ ऊँचे-सौं-ऊँचौ साधन अहंकार बढ़ायकें और अधिक मायामें फँसाय देय है। संसार सौं छुड़ायकें साधककौ उद्धार नहीं करि सकै है।

पहले लक्ष्य दृढ़ बनावै, तब फिर साधन करै अर्थात् साधन करिवे सौं पूर्व ही इनकूँ समर्पण करिकें ही साधन करै। साधनमें यही सावधानी राखनी है। तब कहूँ जायकें उत्थान होयगौ।

ऊँचौ पद पायकें साधन नहीं है पावै है। यह पथ बहुत ही

सरल है तथा बहुत ही कठिन हू है। जो श्रीसद्गुरुके बताये भये मार्ग सौं ही दृढ़-श्रद्धापूर्वक चलि रहे हैं, उनकूँ तौ अत्यन्त ही सरल है और जो अपने मन सौं चलि रहे हैं तथा जिनकी श्रद्धा शिथिल है, उनके ताँईं यह पथ अत्यन्त ही कठिन है।

संत—संत सौं सांसारिक वस्तु नहीं माँगनी चहिए। संत सौं सांसारिक वस्तु माँगनौं, डाहिन सौं पुत्र माँगनौं-जैसौं ही है। यदि सहनशीलता आय जाय, तौ वह संत है गयौ।

संत वही जो शान्ति सौं भोग भोगि ले और अपनी वृत्ति कूँ दिनौंदिन संसार सौं उपरत करिकैं इनमें लगातौ जाय। कोई कछु करै, कोई कछु कहै, कबहूँ दूसरेकी ओर नहीं देखै। सदैव अपनी ओर ही देखै। संसार सौं कोई प्रयोजन ही नहीं।

संत नये पाप नहीं बनन दैयँ हैं। पुराने पापन कूँ भोगिवेकी शक्ति प्रदान करैं हैं। शरणागत जीवके पूर्वकृत पापन कूँ भुगवाय कैं, नष्ट करवाय कैं, जीवकूँ तन-मन-वचन सौं निर्मल करिकैं जीवनधनके प्रेम कौ अधिकारी बनावैं हैं।

जबतक जीवमें चाह है, कामना है, तबतक श्रीभगवान् सौं प्रार्थना होय है। चाह समाप्त होते ही जीवभाव मिटि जाय है।

श्रीभगवान् सौं करी भई प्रार्थना कबहूँ व्यर्थ नहीं जाय है। भोग्य उपस्थित हैवे पै श्रीभगवान् सौं आर्त हैकैं यही प्रार्थना करै कि 'हे नाथ! मैं अपने प्रारब्धके भोग शान्ति सौं भोगि लऊँ। मेरौ भजन, चिन्तन और आपकी याद न छूटै। ऐसी शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करौ।'

श्रीभगवान् सौं रोय-रोय कैं प्रार्थना करै कि 'प्रभु कबहूँ मोहू कूँ या माया सौं छुड़ाओगे? मैं हूँ कबहूँ तिहारौ भजन करि पाऊँगौ?'

हे जीवनधन! जैसैं-जैसैं या शरीरकी आयु और दुर्बलता बढ़ती जाय, वैसैं-वैसैं ही आपकौ स्मरण, चिन्तन-भजन हू बढ़तौ जाय। ऐसी कृपा करौ।

श्रीभगवान्‌कौ प्रेम स्वयं श्रीभगवान् नहीं दै सकैं हैं। प्रेम तौ काहू भगवत्प्रेमी महापुरुष सौं ही मिलै है।

श्रीभगवान् तीन बातनमें स्वतन्त्र है—

दर्शन दैवेमें, कृपा करिवेमें तथा अपनाय लैवेमें।

हाँ, हम अपनी ओर सौं श्रीभगवान्‌कौ भजन निष्कामभाव सौं केवल श्रीभगवान्‌के ताँईं ही करैं। काहू कामना सौं नहीं करैं। निरन्तर इनके ताँईं ही जीवन बनावैं। पूरी सत्यता सौं इनकी चाह होते ही ये मिल जायँगे।

अहंकार सौं बचनौं। तनिक हू अहंकार न है जाय, नहीं तौ माया फँसाय लेगी।

सत्संग सौं व्यक्ति कूँ सरलता, विनम्रता, कोमलता, निरहंकारिता प्राप्त होय है, जो प्रभु-मिलनमें परम सहायक सिद्ध होय है।

कामना सौं बचै, बहुत ही सावधान रहै, कोई कामना न बनि जाय। या समय बड़ौ ही दुस्तर समय चलि रह्यौ है।

भजनके साथ-साथ श्रद्धा, संयम, सदाचार, निष्कामता तथा तत्परता अधिकाधिक बढ़ती रहै, यही कर्तव्य है।

केवल प्रतिमा-पूजन सौं ही कोई लाभ नहीं, यह तौ बहुत ही सरल है। लाभ तौ संतकी आज्ञा-पालन सौं ही होय है। आज्ञा-पालन करनौं कठिन परै है।

जीवन पवित्रतम होय और निरन्तर श्रीभगवत्-चिन्तन होतौ रहै, तौ और कछु हू करिवेकी आवश्यकता नायँ। सब याही सौं सुलभ है जायगौ।

अपनी चतुराईने ही मनुष्य कूँ संसारमें नाना प्रकारकी यौनि भोगिवे कूँ विवश करि दियौ है। यदि यही चतुराई श्रीभगवान् सौं मिलिवेमें लगि जाती, तौ कल्याण है जाँतौं।

साधक केवल आज्ञा-पालन यथावत् करै तौ तीन वर्षमें ही सिद्ध है जाय है।

स्त्री, धन, मान-प्रतिष्ठा—ये साधकके महाकाल हैं।

सांसारिक कामन सौं अरुचि हैवे पै संसार धीरें-धीरें छूटि जायगौ।

सहनशीलता और दयाभाव हैवे पै साधक सबसौं मिलिकैं रह सकै है।

भगवान् श्रीरामकूँ रावणके मारिवेके ताँईं त्याग और तप करनौं पर्‌यौ हो, राज्य-सुखन कूँ छोड़िकैं वन-वन भटकनौं पर्‌यौ हो, तब कहूँ जायकैं रावण-वध करि पाये। यासौं साधक कूँ हू या भवसागररूपी शत्रु कूँ जीतिवेके ताँईं तप और त्यागकी परमावश्यकता है।

आज-कल साधु बननौं आवश्यक नहीं, वेष बदलिवेकी आवश्यकता नहीं, घर छोड़िकैं कहूँ जायवेकी आवश्यकता नहीं, सर्वत्र प्रपञ्च है। आवश्यकता है प्रपञ्च सौं सर्वथा बचिकैं भजनमें लगिवेकी। कोई हू क्षण व्यर्थ न खोवन पावै। जहाँ कहूँ रहै अपने कूँ सत्ययुगमें ही राखै। श्रीभगवत्-प्रेमके अतिरिक्त कोई कामना छू न जाय। सुख, शान्ति, आनन्द अपने मनमें हैं। सतत सत्त्वगुणकी वृद्धि, निष्कामता और भजनमें वृद्धि, निष्प्रापञ्चिकता सौं ही होय है। सतत श्रीभगवत्-प्रेममें ही मस्त रहै।

जीव कूँ श्रीभगवत्-कृपा ही प्रेम-पथमें लगावै है। यह पथ बड़ौ ही कठिन है। माया-राज्य सौं ऊपर उठनौं बड़ौ ही दुस्तर है। श्रीसद्गुरु मिल जायँ, तौ सब सुलभ है जाय है। परंतु जीव माया कूँ छोड़नौं ही नहीं चाहै है।

लालसा संसारकी और प्रयत्न श्रीभगवान्‌कौ, यह कैसें है सकै है?

सुग्रीवजी कूँ और विभीषणजी कूँ राज्य दियौ, परंतु श्रीहनुमान्‌जी कूँ कहूँ एक गाँव हू भेंटमें नहीं दियौ। कारण, सुग्रीव और विभीषण शरणमें आये कामना लै कैं और श्रीहनुमान्‌जी आये निष्काम-भाव सौं, तौ इनकूँ निरन्तर साथ रहकैं सेवा कौ सौभाग्य प्राप्त भयौ। निष्काम कूँ ही यह दुर्लभ वस्तु प्राप्त होय है। आज जितने मन्दिर श्रीहनुमान्‌जीके हैं, उतने काऊ और देवताके नहीं मिलिंगे।

संसार कूँ सुधारिवेमें जौ लगैगौ, वह अपने-आपकूँ धोखौ देगौ।

संसारमें रहवेके दो प्रकार हैं। एक तौ हंसकी भाँति नीर-क्षीर-विवेकी और दूसरौ कमलकी भाँति जलमें रहते भये हू जल सौं निर्लेप। हंसकी रहनी साधककी रहनी है। कमलकी सिद्धावस्था है।

उठिवे कौ क्रम है—संत कौ आश्रय, इनमें श्रद्धा, इनके आज्ञानुसार साधनमें लगनौं, इनके अनुसार रहनी, आचरण, स्वभाव कौ निर्माण, तब संसार सौं उपरति, भगवत्-प्रेमकी उत्कट लालसा, तब भाव, तत्पश्चात् प्रेम।

भाव तरल घीकी भाँति है और प्रेम जमे भये ठोस घीकी भाँति है।

एक-एक इन्द्रिय कौ अलग-अलग संयम करनौं बहुत ही कठिन परै। एक इन्द्रिय कौ पूर्णरूप सौं जीति पानौं हू अशक्य ही है। हाँ, जैसें घरमें एकके कहे अनुसार सब चलैं, तब ही घरकी उन्नति होय है; याही प्रकार एक श्रीसद्गुरुके आज्ञानुसार ही समस्त इन्द्रियन कूँ चलायवे सौं सरलतापूर्वक समस्त इन्द्रियग्राम वशमें है जायँ हैं। समस्त दोष-दुर्गुण, विकारनके मिटायवे कौ, समस्त इन्द्रियन पै विजय पायवे कौ, एकमात्र उपाय है, श्रीसद्गुरुभगवान्‌की श्रद्धापूर्वक आज्ञा-पालन करनौं।

श्रीमद्भागवत (७। १५। २५)—में कहा है—

'एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्॥'

श्रीभगवान् सौं कछु न माँगै। माँगै तौ केवल इनके ताँईं ही माँगै। हे जीवनधन! मेरौ जीवन अब केवल तुम्हारे ताँईं ही है। देखैं तुम कबतक न मिलौगे? तुम्हारी शपथ, मैं तुम्हैं पकरिकै ही रहुँगौ। कितने हू भागौ? पर अब मैं तुम्हारौ पीछौ नहीं छोडुँगौ।

सिद्धान्त है—शिष्यको अपने श्रीसद्गुरुमें पूर्ण श्रद्धा होय और गुरु अपनाय लैं, तब ही पूरौ काम बनै है। संसारी लोग आवैं हैं, अपनौ कर्म-फल भोगिवे और संत आवैं हैं, जगत्के जीवन कौ उद्धार करिवे।

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥

यदि रोग कूँ श्रीभगवत्कृपा ही मान ले, तौ शोक, दुःख, चिन्ता कौ कोई काम ही नहीं रह जायगौ। श्रीभगवान्के विधान सदैव मंगलकारक ही हौयँ हैं। श्रीप्राणनाथ जीवके साथ कबहूँ अमंगल काम नहीं करि सकैं हैं। रोगके द्वारा बहुत-से पाप कटि जायँ हैं।

अब परम-कर्तव्य है—काहूमें मोह न रहै। काहू सौं बैर-भाव न रहै।

'सब के प्रिय सब के हितकारी।'

बहुत ही आवश्यक है एक बात कि श्रीजीवनधन सौं कबहूँ भूल सौं हूँ कछु न माँगै। केवल प्रेम ही चाहै, बस।

अब संत नहीं बनि पाय रहे हैं। सब प्रचारमें ही लगि रहे हैं। ऊपरी बातें बहुत बढ़ि रही हैं। ठोस बातें उठती जाय रही हैं। यदि श्रद्धा दृढ़ होय, तौ पाप नहीं बनि पावैंगे। श्रद्धालु चाहते भये हू पाप नहीं करि सकै है। यदि पाप बनि रहे हैं तौ श्रद्धाकी

कमी है। गुरु कौ बहानौं मात्र है। यदि हम काऊ कूँ कष्ट न दें तौ दुःख आवैगौ ही नहीं।

पुनर्जन्म कामना सौं होय है। धनकी, वैभवकी, संसारकी, कुटुम्बकी, मान-प्रतिष्ठाकी, सांसारिक सुख-भोगनकी कामना कूँ मनमें स्थान न दे। जब-जब कामना उठै, तब-तब हटातौ जाय तथा लक्ष्य-प्राप्तिके ताँईं सतत पाठ, भजन, सत्संगमें पूरौ-पूरौ लग्यौ रहै। अपनी ओर सौं कमी न राखै। जो जहाँ है, वहीं श्रीसद्गुरुके आज्ञानुसार दृढ़ता सौं लग्यौ रहै। शेष कमी स्वयं श्रीभगवान् पूर्ति करि दिंगे। साधन करै ऐसौ मानिकैं कि मैं तौ कछु करिवेके लायक ही नहीं हूँ। प्रभु जो कराय लें वही करि पाऊँ हूँ। यासौ अहंकार नहीं रहैगौ।

सिद्धान्त यह है कि पाप और पुण्य दोऊन कौ क्षय भये बिना परमपद नहीं प्राप्त है सकै है।

पाप—निन्दा, रोग, अपमान और अभाव भोगिकैं नष्ट हौयँ हैं।

पुण्य—प्रशंसा, सुख, सुविधा, सम्मान और पूजा, प्रतिष्ठा सौं नष्ट हौयँ हैं। जब ये दोऊ नष्ट है जायँ, तब परमपद कौ अधिकारी होय है। भक्तके समस्त कर्म केवल श्रीभगवत्प्रीत्यर्थ ही हौयँ हैं। न वासौं पाप ही बनैं और न वह पुण्य-प्राप्तिकी भावना सौं ही कोई काम करै है। थोरे हू पाप बनिंगे तौ दुःख अथवा नरक भोगनौं परैगौ ही और यदि पुण्य बनिंगे तौ वाके परिणामस्वरूप सुख या स्वर्ग भोगिवेके ताँईं जानौं ही परैगौ। कर्मकौ फल तौ भोगनौं ही परैगौ। कर्म-फल मिटायौ नहीं जाय सकै। उदाहरण दियौ श्रीजगन्नाथपुरीके भक्त श्रीमाधवदासजी कौ। चमत्कारके चक्करमें न परै। अपने काममें ही लग्यौ रहै। धाम कौ वास, श्रीसद्गुरुकी प्राप्ति, श्रीसद्गुरु कौ दृढ़ आश्रय यह सब अपने मन कूँ समझाय दे। इन्द्रियन कूँ आहार न दे।

इन्द्रियन कूँ आहार न दैवे सौं मन दुर्बल है जाय है। सात्त्विको बुद्धिके द्वारा बार-बार मन कूँ समझायवे सौं दुर्बल मन बहिर्मुख हैवे सौं रुकै है। मन कौ पूर्णतया रुकनौं तब ही बनैगौ, जब पूर्ण श्रद्धा होयगी। सदाचार कौ पूर्ण पालन होयगौ तौ मन पवित्र बनैगौ। मनके न लगिवे पै हू नियमित रूप सौं निरन्तर साधन करतौ ही रहै। कारण कि जैसैं भोजन करिवेके समय पै यदि मन कहूँ हूँ रहै, तऊ पेट तौ भरि ही जाय है। भूख हू बुझि जाय है। वैसैं ही बिना मन लगे यदि भजन-साधन कियौ जाय तौ एक-न-एक दिन मनकी चंचलता मिटि कैं ही रहैगी। अचल शान्ति मिलैगी ही। याही कारण नित्य नियमित रूप सौं भजन करतौ ही रहै। हतोत्साह न होय। एक दिन वह आवैगौ, जब मन प्रेममें डूबि जावैगौ। आनन्दकी बाढ़ छाय जायगी। श्रद्धा-विश्वास दौनौं साथ-साथ चलते रहैं हैं।

दृष्टान्त दियौ— श्रीशबरी सौं श्रीमतंग ऋषिजी कह गये कि बेटी! तेरे यहाँ याही कुटियामें श्रीराम आमिंगे और तोकूँ दर्शन दिंगे।

अपनौं काम समय रहते बनाय लेय। जीवन कौ कोई भरौसौ नहीं। गृहस्थ रहते भये इन बातन कौ पालन करिले, वह संन्यासी ही है तथा वाकूँ घर बैठे ही श्रीभगवत्प्राप्ति है जायगी। यदि वाकूँ घर बैठे ही कन्हैयाँ न मिलै तौ हमारी जबान जप्त। जी आवै जो करिकैं देखिलेय।

बात हैं ये— अपनी गाढ़ी परिश्रमकी कमाई सौं जीविकोपार्जन। जाकौ पाणिग्रहण कियौ है, पूरे संसारमें वही अपने ताँईं स्त्री है अर्थात् एकपत्नी-व्रत कौ पूरौ पालन।

यथाशक्ति दीन, दुःखी, रोगी, अभावग्रस्तनकी सहायता अर्थात् परोपकार।

परधन छू न जाय। परस्त्री छू न जाय।

काहू कौ अहित करनौं तौ दूरि, मन सौं हूँ चिन्तन न करै तथा न काहू कूँ काहू कौ अहित करिवेकी सलाह ही दे। काहू महापुरुष कौ दृढ़ आश्रय।

साथ ही इनके आज्ञानुसार कछु थोरौ-सौ भजन। श्रीगुरुजननकी सेवा।

सत्यता कौ पालन करै।

यदि ये बातें पालन है जायँ तौ सहजहीमें सब खेल बनि जाय है।

मुमुक्षु साधक कूँ चहिए कि वह कोई काम बन्धन कौ नहीं करै। यदि ऐसौ भयौ तौ संसारमें फिर आनौं परैगौ। प्यासे कूँ जल पिवाय दे, परंतु प्याऊ न खोलै। भूखे कूँ रोटी खवाय देय, परंतु अन्नक्षेत्र न खोलै। सतत सावधान रहै। काहू प्रपंचमें न परै।

अपने सौं कोई पाप बनि जाय तौ श्रीभगवान् सौं दण्ड भोगिवेकी प्रार्थना करै। क्षमा न माँगै।

पूर्ण समर्पणके साथ भाग्य विदा है जाय है। जीव मुट्ठी बाँधि कैं आवै है और खोलि कैं जाय है। याकौ अर्थ है कि जो कछु कमाय कैं लायौ हो, वह सब या संसारमें खोय कैं, गमाय कैं ही जाय है।

धामवास तथा श्रीसद्गुरु-प्राप्ति करिकैं हूँ लोग प्रपंचमें ऐसे फँसे रहैं हैं कि जहाँ सौं चले हते, आज हू वहीं-के-वहीं हैं। एक पग हू आगे नहीं बढ़ि पाये हैं। यदि अपनौं काम पूरौ नहीं करैगौ तौ अपराध बनैगौ ही। जो काम करै, पूरी सत्यता सौं, पूरी तत्परता सौं करै। कामना-वासना छू न जाय तथा अपने मन सौं न करै। काहू महदाश्रय सौं, उनके आज्ञानुसार ही करै। तब ही उत्थान है सकै है। माया सौं महदाश्रय ही बचाय सकै है।

माया सिद्धनतक पै हाथ-पै-हाथ मारै है, निरन्तर साधनमें ही लग्यौ रहै। प्रपंच तथा व्यर्थत्व कौ अवकाश ही न रहै। जब अकेले एकान्तमें रहै, तब श्रीभगवत्-स्मरण (भजन) ही करै। जब द्वै चार हौयँ, तब श्रीभगवत्-गुणगान करै और जब काहू संतके समीप हों, तौ श्रीभगवच्चर्चा ही सुनै।

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

बस संसार छूटि गयौ। रोवै तौ इनके ताँईं, हँसै तौ इनके ताँईं, प्यार करै तौ इनसौं, लड़ैं तौ इनसौं ही। मानौं हमारे ताँईं संसारमें इनके अतिरिक्त कहूँ कछू है ही नहीं।

मन जन्म-जन्म कौ बिगर्‌यौ भयौ है। धीरें-धीरें शान्त होयगौ। सब उपाय मनके निरोधके ताँईं ही हैं। अपने कूँ पूर्ण मानिकैं आलसी न बनि जाय, मनमानी न करिवे लगि जाय, साधन न छोड़ि बैठै।

मनकूँ हठसौं नहीं, पुचकारिकैं, समझायकैं ही मार्ग पै लावै। इन्द्रियाँ ही मनकूँ आहार देयँ हैं। इन्द्रियनसौं ही मन चंचल और बहिर्मुखी बनै है। यासौं सतत सावधानीपूर्वक अपनी समस्त इन्द्रियनकूँ संयमित ही राखै। कुसंग सौं बचै, तौ विलम्ब भले ही लगै, मन बसमें हैकैं ही रहैगौ। अपनी ही कमी है। कमी खोजै। इनकूँ दूरि करिवेकी पूरी सत्यता सौं चेष्टा करै। सफलता अवश्य ही मिलैगी। दृढ़ बन्धनके पश्चात् ही मुक्ति सम्भव है।

अधिकतर महापुरुषनके नित्य सांनिध्यमें रहवे वारे साधक महापुरुषकी आध्यात्मिक सम्पदासौं वंचित ही रह जायँ हैं और दूरि रहवे वारे श्रद्धालु साधक पूरौ लाभ उठाय लेयँ हैं। कारण, ये लोग परस्परमें तेजोमय द्वेष, धन और मान-प्रतिष्ठाका शिकार बनि जायँ हैं। साथ ही अति सामीप्यसौं महापुरुषके प्रति महत्त्व-बुद्धिकौ अभाव है जाय है। यासौं संतके समीप बड़ी सावधानीसौं

रहनौं चहिए। या संसारसौं अपने-आपकूँ चुपके सौं बचायकैं निकारि लै जाय। अकेले ही आये हैं और अकेले ही जानौं है।

ब्रजकी रहनी—काहूसौं क्रोध-विरोध न करै, काहू की निन्दा-स्तुति न करै। कोई पाप न बनै इसलिये बार-बार अपने मनकूँ संसारसौं हटायकैं इनमें लगावै। फिर देखौ आनन्दकी बाढ़ छाय जायगी। जो कछु करै पूरी सत्यता-सौं करै। पूरी सत्यता-सौं वृत्तिकूँ इनमें लगावै, साथ ही निरन्तर इनकौ नाम-जप करते-करते इनकी यादमें तड़फि-तड़फिकैं, रमतौ रहै, जैसें इनके मथुरा चले जायवेके पीछे ब्रजबाला, ब्रजवासी, इनकूँ तड़फि-तड़फिकैं, रोय-रोयकैं जीये, वैसें ही जीवै, यही है ब्रजकी रहनी। बिना रहनीके धामकौ वास्तविक स्वरूप समझमें नहीं आवै है।

जन्मदिन अथवा काहू विशेष उत्सव, पर्व, त्यौहारके मनायवेकौ यह उद्देश्य हौनौं चहिए कि वा दिनसौं श्रीजीवनधनको स्मरण-चिन्तन पूर्वकी अपेक्षा अधिक बढ़नौ चहिए।

संकल्प तौ बनिंगे ही। भले ही संसारके ताँईं बनैं अथवा इनके ताँईं बनैं। अब अपनौ परम कर्तव्य है कि संकल्प बनैं केवल और केवल इनके ताँईं हीं। काहू प्रेमीको जीवन पढ़ै तौ पढ़िकैं यही संकल्प बनावै कि कबहूँ मैं हूँ ऐसौ प्रेमी बनूँगौ का? गोपीनकौ विरह देखिकैं संकल्प बनावै कि कबहूँ मोहूकूँ ऐसौ विरह प्राप्त होयगौ का? यशोदा मैयासौं माँगै कि आपकी कृपासौं हमारौ हू कन्हैयामें ऐसौ प्रगाढ़ प्रेम होयगौ का?

पाँच पुरुषार्थ—(१) दृढ़तम श्रद्धा, (२) कामना-नाश, (३) पवित्रतम जीवन (अपनेकूँ निरन्तर सत्ययुगमें राखनौं), (४) सतत साधनमें जुटे रहनौं और (५) लक्ष्यकी श्रीभगवत्प्रेमकी प्राप्ति।

—या पथके ये ही पाँच पुरुषार्थ हैं। श्रीभगवान्ने कृपा करिकैं यह अलभ्य वानिक बनायौ है, तौ अब न चूकैं।

ये दौनौं बातें जीवनमें उतरि जानी चहिए—

(१) लक्ष्यकी श्रीभगवत्प्रेमकी प्राप्ति। यह जीवन केवल श्रीभगवत्प्रेमके ताँईं ही होय (२) दवा रोगकी है, भोगकी नहीं। भोग तौ भोगनौं ही परै है।

श्रद्धा माँ है। जो माँकी गोदमें हैगौ, वाकूँ काहू कुत्ता, बंदर आदिक दूसरेसौं कोई भय नहीं रहैगौ। हाँ, यदि माँकी उँगली छोड़ि देउगे, तौ सब भय आय जायँगे। श्रद्धा दृढ़ रहते सब श्रीसद्गुण स्वतः ही आय जायँगे। या मार्गमें मुख्य है श्रद्धा। श्रद्धा ही मूल है, श्रद्धा ही साधन है, श्रद्धा ही साध्य है। '**श्रद्धया सत्यमाप्यते।**' (वेद) '**श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्**' (श्रीगीताजी)। श्रद्धासौं अहंकारकौ नाश होय है, साथ ही दैन्यकी प्राप्ति होय है। उपासनामें दैन्य ही प्रधान है।

प्रेम छिपायवेकी वस्तु है, प्रकट करिवेकी नहीं।

दूर रहकैं चिन्तन करिवेसौं जितनौं भाव बढ़ै है उतनौं समीपमें रहकैं नहीं।

महात्मा गाँधीके जीवनमें सत्य और अहिंसाकी प्रधानता है। इन दोऊ बातननें ही इनकूँ इतनौ ऊँचौ उठाय दियौ। यही बात प्रेम-पथमें है। यहाँ हूँ सत्य और अहिंसाकी परमावश्यकता है।

कुछ बातें और हैं, जैसैं—

(क) या पथमें लगै तौ पूरी सत्यता सौं ही लगै।

(ख) काहू महापुरुषकी आज्ञासौं लगै अपने मनसौं नहीं।

(ग) जो कछू करै केवल इनके ताँईं ही करै, संसारी कामनासौं नहीं। बस इतनेसौं ही काम बनि जायगौ।

स्त्री, धन, मान-प्रतिष्ठा और बढ़िया भोजनमें ही जीव फँसे है। जबतक साधक इनसौं ऊपर नहीं उठै है, तबतक आगे नहीं बढ़ि सकै है। श्रीभगवान् सत्यरूप हैं। उनकी प्राप्तिके ताँईं सत्य-रूप साधनकी ही आवश्यकता है। श्रीभगवान् पै युगकौ प्रभाव लागू नहीं होय है। श्रीभगवान् बदलैं नहीं हैं। जो श्रीभगवान् सत्ययुगमें प्रह्लादके ताँईं हैं, वे ही आज हैं। हाँ, आवश्यकता है सच्ची चाहकी।

हमतौ कर्म पै बहुत विश्वास करैं। जैसैं अपने कर्म हुंगे, वैसौ ही फल भौगनौं परैगौ। चमड़ी और दमड़ी जीव कूँ ऊपरसौं नीचै खैंचि रहे हैं। इनसौं सर्वथा बचतौ रहै। संसारी कामना और अहंकार ही संसारमें भ्रमणके मूल हैं। ये अपनेकूँ छू न जायँ।

प्रश्न—सबरे संत और शास्त्र श्रीभगवद्दर्शन (श्रीभगवद्भाव) करिवे पै जोर दैयँ हैं। किंतु आपके श्रीमुखसौं यह बात कबहूँ कहते नायँ सुनी?

उत्तर—यह तौ एक अवस्था है जो करनी नायँ परै, होय है। सर्वत्र श्रीभगवद्भावकी प्राप्ति होय, याके ताँईं प्रारम्भिक साधन है—सबके प्रति प्रेम, सेवा, सहानुभूति, हित तथा सुखकी भावना। काहूके प्रति वैर-विरोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और क्रोध न रहै। तथा श्रीसद्गुरु भगवान्के आज्ञानुसार पूरी सत्यता, पूरी तत्परतापूर्वक जीवन पवित्रतम बनाते भये निष्काम भजन करते-करते एक अवस्था आवै है, जहाँ पहुँचिकैं स्वयमेव सर्वत्र श्रीभगवद्भाव दृढ़ बनि जाय है, करनौं नहीं परै है।

साधकके ताँईं परम आवश्यक निर्देश—जो नियम अभ्यासमें आय गये हौयँ, उनमें प्रमाद न हौन पावै। प्रत्युत आगे बढ़िवेकौ ही प्रयत्न रहै। जो नियम कष्टसाध्य प्रतीत हौयँ, उनमें अधिक प्रयत्न करनौं, निराश नहीं हौनौं। असाध्य तौ प्रतीत हौन ही न पावैं, वस्तुतः असाध्य तौ कछु है ही नहीं। श्रीगुरु-कृपा, श्रीप्राणनाथकी कृपा तथा अपनौं पूर्णप्रयत्न—इनसौं असाध्यताकौ अभाव ही है जाय है।

हाँ, सबसौं कठिन प्रत्युत असाध्य-सम है विचार।

किंतु यहू अनुभव भयौ कि प्रतिपक्ष-भावनासौं थोरौसौं जोर लगाते ही विचारधारा मुड़ि परै है, समझायवेसौं तथा प्रतिपक्ष-भावनासौं निकृष्ट विचार रुकि जायँ हैं। ऐसी प्रतीति होय है। याकूँ विशेष देखतौ रहै। वास्तवमें बात तौ यही है कि जा क्षण पूर्ण प्रयत्नसौं वाणी, श्रवण तथा मन—ये सबरे-के-सबरे भजनमें लगि जाय हैं, ठीक-ठीक भजन तौ वाही क्षण होय है। अब हमें यही प्रयत्न बढ़ानौं चहिए कि या विधिकौ भजन दिनमें विशेष मात्रामें होय। बस केवल याही विधिके पालनसौं इन्द्रियनपै विजय तथा मनः-संयम—ये दौनौं आनुषंगिक होवै लगिंगे। हाँ, परमाह्लादकौ लाभ होयगौ, वह ब्याजमें। वास्तवमें इन्द्रिय-संयम ही तौ मनः-संयम है। यद्वा मन संयमकौ मूल है।

श्रीसद्‌गुरुभगवान्‌कौ महावाक्य है कि—

'जो लोग मनकूँ तौ संयमी बनानौं चाहैं हैं, किंतु इन्द्रियनकूँ मनमानौं छोड़ि दैयँ हैं, वे बड़ी भूल करैं हैं।'

साधककूँ प्रतिक्षण, प्रति चेष्टामें सावधान रहनौं चहिए। समस्त क्रियाएँ संयमके अन्तर्गत ही हौनी चहिए।

आहार, चलनौं, फिरनौं, बोलनौं, संकेत करनौं, लिखनौं एवं विचार उठानौं—ये समस्त संयमके साथ ही बर्ते जायँ, सोऊ सुदीर्घ काल—तब सत्त्वगुण स्थायी होय है, तदनन्तर क्रमशः उत्थान। प्रथमावस्थामें—इन्द्रियनके द्वारा—श्रीभगवत्सम्बन्धी वस्तुनकौ सादर ग्रहण करनौं श्रीभगवत्स्मरणमें ही मान्यौ जाय है। यथा—जिह्वासौं लयके साथ नाम-जप होय, साथ ही श्रवण सुनैं तथा मन आनन्दकौ अनुभव करै। यह श्रीभगवत्स्मरण ही है। कारण कि—नाम और नामी एक ही वस्तु मानी जायँ हैं। स्थूलरूपमें यदि हाथ श्रीप्राणनाथकी सेवामें लगे हौयँ, तौ यह श्रीभगवत्स्मरणमें ही मान्यौ जायगौ। यद्यपि हस्त कर्मेन्द्रिय हैं एवं इनकौ कार्य साधारण ही मान्यौ जाय है, तथापि श्रीभगवत् एक ऐसी विलक्षण वस्तु है, जहाँ साधारण हू प्रधान है जाय है। श्रीनामकौ श्रवण श्रीभगवत्स्मरण सौं हूँ कछु अधिक ही समझनौं। लयके साथ श्रीनामोच्चारण तथा श्रवणसौं श्रवण, साथ ही मनमें आह्लाद होय, तौ या अवस्थाकूँ मैं समाधिके तुल्य ही मानूँ हूँ। देह तथा देह-सम्बन्धी वस्तुनकूँ भूलि जानौं, मनमें अपार आनन्द-रसकौ प्रवाह बहनौं, यह श्रीप्राणनाथके सांनिध्यके समान ही तौ है। वस्तुतः सांनिध्य ही है। बुद्धिकौ निश्चय है कि, श्रीनामाश्रय ही समस्त साधननकौ चरम फल है। यही श्रीप्राणनाथकी प्राप्ति है—मिलन है। समस्त साधननकौ फल श्रीप्राणनाथकौ सांनिध्य, सांनिध्यकौ फल विप्रयोग।

साधककौ परम कर्तव्य साधन, ताकौ फल सिद्धि—श्रीभगवत्प्राप्ति, ताकौ फल विप्रयोग।

साधककी कर्तव्यता—साधनमें,
सिद्धिकौ परम फल—सांनिध्य,
सिद्धि परवरके ताँईं—विप्रयोग।

या तत्त्वके जानकारनने सबकौ चरम फल विरह मान्यौ है। संत श्रीकबीरदासजीके शब्दनमें—

विरहा विरहा मत कहौ, विरहा है सुलतान।
जा घट विरह न संचरै, सो घट जानु मसान॥

श्रीप्राणनाथकी अन्तिम दैन है अपनौं विरह।

हम लोगनकौ धनतेरस उत्सव—भजन है जानौं। नियम-पालन है जानौं। संयमपूर्ण हौयँ। तदनन्तर श्रीप्राणवल्लभकी ओर अन्तर्वृत्ति। तदनन्तर श्रीप्राणनाथकौ सांनिध्य। प्रेमालाप। संसार-विस्मृति। प्रेमपूर्वक सेवा। तब विरह।

कब दुखदाई होयगौ, मोकूँ विरह अपार।
रोय रोय उठि धाइहौं, कहि कहि नन्द कुमार॥

या दोहाकी एक माला जप नित्य ही करनौं।

हमारे पूर्वजनने या बात पै बहुत ही जोर दियौ है कि नाम, रूप, लीला तथा धाम—इन चारनमें सौं कहूँ एक ठौर हू मन लगिवे लगै, तौ जीवनकी सफलता मानी है। काहू परम भाग्यवान् कूँ यदि चार्यौमें लगिवेकौ अभ्यास है जाय तौ कहनौं ही का है? श्रीनामकौ सांनिध्य, सांनिध्य ही है, नाम और नामीके अभेद सौं। हमें याहीकौ विशेष अभ्यास बढ़ानौं चहिए। याहीमें सबकी सफलता है। हमें यही विश्वास राखनौं चहिए। तथापि नाममें अनुराग होयवे लगै, सांनिध्यकी इच्छा होयवे लगै, तौ कोई हानि नहीं है। यह अवस्था श्रीनामकी कृपा सौं ही प्राप्त होय है। इनमें कौन छोटौ है, कौन बड़ौ है, या चक्र सौं हमें बचनौं चहिए—***'को बड़ छोट कहत अपराधू।'*** (रा० च० मा० १। २१। ३)

बात यही जँचै है—(यही तथ्य है, यह तौ नहीं कह सकैं)

यह केवल अपने ताँईं है कि श्रीब्रजभूमिमें निवास रहै। संत-महात्मनमें पूज्यभाव रहै। श्रीब्रजरजमें भाव रहै। जहाँ ताँईं है सकै, इन्द्रियन कूँ कुपथमें गिरिवे सौं बचाते रहैं तथा प्रयत्न करते रहैं, मनके संशोधनकौ।

सर्वतोभाव सौं दृढ़ताके साथ पूर्ण आश्रय रहै—श्रीनामकौ। विश्वास रहै कि याके आगे जो कछु होयगौ, वह परम कल्याणप्रद ही होयगौ।

हाँ, मनुआँ नहीं मानैं, श्रीदुलारे कन्हैयाँ सौं अटकतौ रहै, तौ सौभाग्य ही समझनौं चहिए।

स्मृति तथा सांनिध्य ये अन्योन्याश्रित हैं। हमारौ परम कर्तव्य है—स्मृति।

जा क्षण प्राण-प्यारे दुलारे कन्हैयाँ सौं कछु बतराय लेय है, विनोद करि लेय है, तौ ऐसौ जानि परै है कि अन्त:करण परमानन्दमें डूब जाय है। मन कछु हलकौ-सौ है जायै है।

सर्वतोभाव सौं हमारे विचार, नियम, साधन तथा क्रियाएँ सब ठीक ही हैं। यह तौ श्रीसद्गुरुभगवान् बूढ़े बाबा जानैं अथवा हमारौ छोटौ सौ मुनमुनियाँ, श्रीनन्दबाबाके आँगनमें ठुमुक-ठुमुक नाँचतौ भयौ जानैं, यशोदाजीकी आँखिनकौ तारौ, दुलारौ जानैं। ये मोकूँ जहाँ अटकाय देयँ हैं, मैं तौ वहीं अटक्यौ रहूँ हूँ।

प्रश्न—श्रीभगवत्-सांनिध्यकौ स्वरूप का है?

उत्तर—'श्रीप्राण-प्रियतम हमारे सम्मुख विराजि रहे हैं। भावुक अपनी भावना सौं यही कल्पना करै'।

समक्षमें ठाढ़े हैं अथवा उच्चासन पै आसीन हैं वा समय श्रीजीवनधनके श्रीमंगल-विग्रहके दर्शन करै।

दास-भावमें सर्वप्रथम तथा विशेषतया श्रीचरणारविन्दनके दर्शन और वात्सल्यभावमें प्रथम तथा विशेषतया श्रीमुखारविन्दके दर्शन। तदनन्तर समस्त भाव वारेन कूँ क्रमश: समस्त श्रीअंगनके दर्शन। श्रीहस्तकमल एवं वस्त्राभूषणादिकनके दर्शन।

भावुक अपने कूँ इनके सम्मुखकी भावना करै।

ये समस्त कार्य केवल मनके हैं—मन ही कल्पना करै, मन ही देखै, मन ही छूवै, मन ही सेवा करै, मन ही बतराय, मन ही समीप कौ अनुभव करै तथा मन ही विप्रयोगकी कल्पना करै। यह कल्पना-राज्य है। सब कछु कल्पना करनी परै है। मानौं ऐसौ है रह्यौ है। प्रदक्षिणामें जब हम मानसी प्रदक्षिणा करैं हैं, तब मनके द्वारा कल्पना ही तौ करनी परै है। सबरे स्थाननके दर्शन ज्यौं-की-त्यौं होयवे लगैं हैं।

याही प्रकार सौं सांनिध्य—कबहूँ-कबहूँ हम काहूके विषयमें

सोचिवे लगैं हैं, वह हममें बड़ी श्रद्धा करै है। वह हम सौं मिलै तौ है, किंतु याके काम दिखाऊमात्र हैं। वह हमारी पीछे सौं निन्दा करै है। वह हमसौं द्वेष करै है इत्यादि।

भिक्षानमें—हम आज जहाँ जायँगे, उनकौ घर, उनके घरके मध्यमें हम वा स्थान पै बैठेंगे। वे ऐसौ आसन बिछावैंगे। पत्तर या ढंग सौं परोसैंगे।

साग ऐसे बनैं हैं। रोटी ऐसी बनी है—वे या ढंग सौं कहि-कहिकैं बड़े आग्रह सौं एक-एक वस्तु देवैं हैं। वे धीरे सौं बड़े आदर सौं परोसैं हैं।

वे ऊपर सौं बड़े जोर सौं पटकि देयँ हैं। उनकौ भाव उत्तम है। वह करैं तौ हैं, किंतु, परंतु, लेकिन आदि-आदि—यही सांनिध्य है।

जब हम काहू स्थानके विषयमें सोचिवे-विचारिवे लगैं हैं, तब वह स्थान अथवा स्थानकी सबरी वस्तुएँ समक्षमें ही आय जायँ हैं। यद्यपि न हम वहाँ गये और न वह स्थान हम पै उठिकैं आवै। केवल कल्पना ही तौ है।

जब हम काहू व्यक्तिके विषयमें कछु सोचिवे लगैं हैं, तब वह व्यक्ति ज्यौं-की-त्यौं दीखन लगि जाय है। वाकी प्रकृति, मुद्रा तथा वस्त्रादिक सबनकी कल्पना मनुआँ करिवे लगि जाय है।

काहूके विषयके चिन्तन सौं अन्त:करण वाके माऊँ बहिवे लगै है। वाकौ हित चाहिवे लगै है—यह राग है।

काहूकौ स्मरण आते ही मनुआँ मुँह फेरि लेय है। देखनौं नहीं चाहै, बोलनौं-बतरानौं नहीं चाहै है। वा समय अन्त:करण कठोर होयवे लगै है। यदि वा समय दर्पणमें देखैं, तौ अपनौं मुख उदास, फीकौ तथा कछु कठोरता लिये दीखैगौ—यह घृणा है। काहूके स्मरण आते ही चित्त क्षुब्ध है जाय है। वाके माऊँ देखनौं बुरौ लगै, वाकौ अनिष्ट सोचिवे लगै, वाकी प्रशंसा सहन नहीं

होय। प्रत्युत वाकी निन्दा एवं संकटकालीन अवस्था सौं नीच मनुआँ कछु प्रसन्नता मनायवे लगै है—इत्यादि द्वेष है। वास्तवमें हमारे समीप इनमें सौं कोई है नहीं, वह अपने स्थानमें है और हम अपने स्थानमें हैं तथापि मनुआँ सब एकत्रित करि लेय है—यही तौ सांनिध्य है।

हमें चहिए कि याही कल्पना कूँ केवल अपने श्रीजीवन-सर्वस्वमें करिवे लगैं।

प्रश्न—सांनिध्य-अनुभवके समय साधककी कैसी स्थिति रहै है?

उत्तर—याकौ ठीक-ठीक उत्तर तौ यही है कि सांनिध्य प्राप्त करिकैं देखि लेउ अथवा कम-सौं-कम वा स्थितिकौ अंशमात्र हूँ अनुभव करिकैं देखि लेउ, फिर देखियौ अपने अन्त:करणकी स्थिति, कैसी है जाय है? समस्त खेल ही परिवर्तित है जाय है, न यह सृष्टि रहै है, न ये हम ही रहैं हैं। नयी सृष्टि, नयी रचना, नयी उमंग, नयौ उत्साह—सब नवीन। हम हूँ नूतन ही बनि जाय हैं।

जब ताँईं हमारौ सम्बन्ध प्रकृति महाराणी सौं है, तबतक प्रकृतिके पदार्थनकौ ही अनुभव—सुख-दु:ख, मान-अपमान, लाभ-हानि एवं संयोग-वियोग आदिक द्वन्द्वनमें ही होतौ रहै है। प्राय: अशान्ति ही रहै है। यदि कदाचित् शान्तिकौ आभासमात्र हू यत्किंचित् प्रतीत होय है, तौ वह केवल अशान्तिकी स्थिरताकी दृढ़ताके ताँईं ही होय है। वस्तुत: प्रकृति-राज्यमें कहूँ कैसैंहूँ कबहूँ शान्तिकौ नामोनिशान नहीं। सर्वथा, सर्वदा उद्वेग, प्रपंच, क्रूरता, द्वेष, हिंसा तथा अपराध आदिक ही हाथ लगैं हैं। इनके विस्तारकी आवश्यकता नहीं, कारण कि ये तौ विश्वमें दसौं दिशानमें व्याप्त है ही रहे हैं। अब रही श्रीप्राण-प्रियतमके

सांनिध्यके अनुभव-समयकी स्थिति—कौ कहै? कौ सुनै? कौन मनन करै? कौन या आनन्द कूँ भोगै? तथा कौन भाग्यशाली मेरे दुलारे-कौ-दुलारे याके वियोगमें जरि मरै?

यह केवल अनुभवगम्य है—मेरे ऊधमीकी दैन है। मेरे प्राणाधारकौ प्रसाद है। मेरे खिलौनाकौ खेल है। भोगियौं समय आयवे पै। रोयियौं पेट भरिकैं और का धर्यौ है यहाँ? श्रीगरुड़-भगवान्‌के प्रश्नके उत्तरमें मेरे खिलौनाके खिलौना, श्रीकौवाजी (श्रीकाकभुशुण्डिजी) कहवे लगे—

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥

(रा०च०मा० ७। ११७। १)

हाँ, इतनौं तौ जान ही लैनौं चहिए, जासौं भविष्यमें उत्साह-संवर्धन होय कि या स्थितिमें परम शान्ति, परम सुख, परम आनन्द तथा परम उद्वेग होय है।

तन थिर मन थिर बचन थिर, और सुरति थिर होय।
कह कबीर ता पलक कूँ, कलप न पावै कोय॥

बस कबहूँ या स्थितिकौ लाभ उठायवेकी प्रबल उत्कण्ठा जगावै, लालसाकी तीव्रता करै, अप्राप्तिकी असह्यता बढ़ै। कहौ तौ सच्ची बात कह दऊँ? अपनी सबरी कमायी खर्च करि डारौ। सबरी अण्टी खाली कर डारौ।

हाँ, तब कबहूँ या हठीलेकी हठ हटैगी। यह बड़ौ हठी है, पूरौ ऊधमी है, यह कबहूँ मत भूलियौं। एकान्तस्थल, केवल एकाकी, नीरवता, मस्तिष्क चिन्तारहित, मनमें अधिकाधिक उत्साह या स्थितिके लाभकूँ—

तब शान्तिसौं शनैः-शनैः अपने मनकूँ श्रीगोकुल ग्राममें श्रीनन्दबाबाके आँगनमें पहुँचाऔ, एक बात मत भूलि जइयौं, या ग्रामकी शोभा हू देखते चलियौं? यहाँके निवासीनके दर्शनके

लाभसौं हूँ मत चूकियौं। या घरकी शोभा हू निहारते चलियौं। अब आयौ आँगन। बस वहीं खेलतौ भयौ।

छोटौ-सौ खिलौना—अनुभवकी रुचिके अनुसार सांनिध्यके अनेकन प्रकार है सकैं हैं। कल्पना करौ कि श्रीजीवनधनके मिलनकी आशा दीर्घकालसौं लगाये भये चलते आय रहे हैं। साधनके द्वारा या आशालताकूँ सिञ्चन करते आय रहे हैं—

अँसुवन जळ सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
(किंतु) **अब तो बेल फैल गई आणँद फल होई॥**

(पगली मीराँ)

क्रमशः यह आशा बाढ़में आयवे लगी, उत्कण्ठा प्रबल भयी, मिलन बिना, देखे बिना। तब अन्तःकरण तथा सौभाग्यशाली नेत्रनमें प्रबल ज्वाला बढ़िवे लगी—

'त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्'

अधीरता बढ़ी—श्रीप्राण-प्रियतम खिंचे भये चले आये। पधारे, श्रीचरणारविन्दके नूपुरकी ध्वनि सुनाई परी। प्रेमी अधीर है कैं श्रीचरणारविन्दनमें गिरि पर्‌यौ। अँसुवनकी धारा बही। श्रीप्राण-प्रियतमने उठायकैं चिपटाय लियौ, आँसू पौंछे। पागल, अनिमेष नेत्रनसौं दर्शन करि रह्यौ है। बहुत दिनानकी भूखी अँखियाँ निहारि रही हैं—अपने दुलारेकूँ। एक उच्चासनपै विराजि रहे हैं, मैं सेवा करि रह्यौ हूँ इत्यादि।

यह प्रसिद्ध है ही कि, कमलकौ मुख बंद रहै है, किंतु अपने परम प्रियतम श्रीसूर्यभगवान्‌के दर्शन करते ही विकसित है उठै है। प्रफुल्लित है जाय है। कुमुदिनी श्रीचन्द्रभगवान्‌के दर्शनसौं खिल उठै है। पाषाणके समान कठोर शीतकालकौ घृत अग्निके सांनिध्यमें पिघलिकैं बहवे लगै है। कठोरता त्यागिकैं द्रव है जाय है, रूप बदल जाय है, स्थिति हू परिवर्तित है जाय है। पतिव्रता

चिरविरहिणी अबला अपने श्रीप्राणनाथके आगमनमात्रसौं विरहाग्निसौं मुक्त है जाय है। अन्तःकरण कमलसौं खिल उठै है। दर्शन करिकैं, सेवा करिकैं तथा बोलि-बतरायकैं कैसी है जाय है? अनुभव करिवेके योग्य हैं ये स्थितियाँ।

प्रश्न—अनुभव कैसैं प्राप्त होय है?

अथवा

कैसैं कियौ जाय है?

उत्तर—माली वृक्षकौ आरोपण करै है। सिंचन करै है। सर्वप्रथम वृक्षके योग्य भूमि बनावै है, खाद देतौ रहै है। दीमक, बकरी तथा भैंस आदिकनसौं वृक्षके मूल, पत्र तथा समस्त अंगनकी रक्षा करतौ रहै है। उष्णकालमें तथा शीतकालमें सब प्रकारकौ बचाव करतौ रहै है। मालाकारके ये उपाय कार्य हैं।

वृक्षकौ संवर्धन, पल्लवित हौनौं, पुष्पित हौनौं तथा फलसौं सुशोभित हौनौं—ये सब स्वतः ही समय पायकैं हौयँ हैं। ये कार्य (फल) मालाकारके बसकी बात नहीं। हाँ, यही आशा वा विचारकूँ अपने कर्तव्यमें सावधान राखै है। प्रमादकौ अवसर ही नहीं आमन देय है।

एवमेव—मालाकार=साधक, वृक्षारोपण=साधनकौ प्रारम्भ, भूमि-संशोधन=गुरुजन-सेवा, पुण्य-दान तथा परोपकार आदिक। सिञ्चन=सत्संग, स्वाध्याय, खाद=सात्त्विक विचार, दीमक=अश्रद्धा और तर्क, बकरी=विषय-भोग यद्वा विषय-चिन्तन, भैंस=महदपराध, रक्षा=स्त्री आदिकनसौं सर्वथा बचाव।

प्रपञ्चनसौं पृथक् रहनौं। व्यर्थत्वकौ निराकरण आदिक।

ये कर्तव्य हैं साधकके—प्राणपणसौं प्रमादरहित हैकैं अपने परम कर्तव्य (साधन)-में निरन्तर जुट्यौ ही रहै।

वृक्ष-संवर्धन=साधनकौ दीर्घकालपर्यन्त उत्तरोत्तर उत्साहपूर्वक होते रहनौं।

पल्लवित=साधनमें रुचि, उत्साह तथा सुखकौ अनुभव।

पुष्पित=भाव-राज्यमें शनैः-शनैः प्रवेश—ये मेरे इष्ट हैं, पूज्य हैं, माननीय हैं, आराध्य हैं, सर्वस्व हैं, प्राणनाथ हैं, प्राणप्रियतम हैं एवं परम प्यारे दुलारे हैं, अपने ही हैं।

फलसौं सुशोभित=अन्तःकरणमें इनके मिलनकी चटपटी, यदा-कदा आह्लाद, खिन्नता, अन्तःकरणकौ इनकै माऊँ तीव्र बहाव।

यदा-कदा झलक मात्र ध्यान, स्मरण, चिन्तन, स्वप्नमें दर्शन, मिलनकौ आभास, समीपमें ही विराजि रहे हैं आदिक-आदिक। जो बात होयवेकी हैं, वह तौ समयपै ही हौयँगी—

'पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥'

—तब ही ठीक-ठीक सबरे प्रश्नकौ उत्तर मिलि जायगौ। जो काम श्रीप्राणवल्लभके करिवेकौ है, याकूँ ये जानैं, साधक तौ मालाकारकूँ आदर्श बनाय लेय।

यथाशक्ति-यथामति—साधन, नियम-पालन, उत्साह, पूर्ण आशा तथा शनैः-शनैः अन्तःकरणकौ लगानौं। इनमें ही जुट्यौ रहै।

वास्तवमें यह अवस्था लक्ष्यमें है। अपनौं विचार तौ सर्वथा (कर्तव्य-पालनमें तत्परता) यही रहै कि—कर्तव्य-पालनमें प्रमाद न हौन पावै। याहीसौं अन्तःकरण उठिवे लगै है।

अग्निम समस्त स्थितियाँ क्रमशः स्वतः ही उपस्थित हौयँ हैं।

साधककौ परम कर्तव्य केवल साधन है।

प्रस्तुत विषय है सांनिध्यकौ। यह स्मरण रहै कि ये क्रमशः पालन करने परिंगे तब ही ठीक बैठि सकिंगे।

व्रत—भूमिका (सावधानता)

व्रत—इन्द्रियसंयम (तिनमें हूँ विशेषता दृष्टि-संयमकी)।

व्रत—व्यर्थ संकल्प न उठन पावैं। विषय-सम्बन्धी संकल्प न उठन पावैं तथा अन्य व्यक्तिके विषयमें कोई संकल्प न बनन पावै।

व्रत—बुद्धि सदा मनकूँ सँभालती रहै। ये समस्त कार्य क्रमशः होवैंगे।

व्रत—यथा—सोपान आरोहण—तब यह अवस्था आवैगी ५वें व्रतकी।

पाँचवें व्रतमें—अपने सम्मुख अपने श्रीप्राणाधारके विराजिवेकी कल्पना तथा अपने भावानुसार अपनेकूँ श्रीप्राण-प्रियतमके सांनिध्यमें कल्पना करनी तथा भावानुसार सेवा और प्रेमालाप बढ़ानौं।

ठहरौ मत जाऔ—याके दो अर्थ हैं।

ठहरौ मत, जाऔ। ठहरौ, मत जाऔ।

साधक शास्त्रनके जाल सौं हूँ बचै। इनमें वाक्य अधिकारी-भेद सौं हैं।

चंचलता तौ वास्तवमें तब ही मिटैगी, जब श्रीजीवन-सर्वस्व सम्मुख हौयँगे।

विषयीनकी चंचलता—विषयन सौं।

साधककी चंचलता—साधन-बाहुल्यमें।

प्रेमीकी चंचलता—इनके न मिलिवेमें।

इन्द्रियन पै (सब सौं अधिक दृष्टि पै) पूरौ अधिकार रहै। धीरे-धीरे मन कूँ सँभारतौ रहै और बहुत धीरे-धीरे अभ्यास करै सांनिध्य कौ। यथा—धरती पै सिर धरि दियौ—अब अनुभव कियौ कि श्रीप्राणनाथके छोटे-छोटे श्रीचरण-कमलनमें सिर धर्‍यौ है। अपने दौनौं हाथन सौं श्रीचरणारविन्द पकरि राखे हैं—ये है सांनिध्य।

कोई वस्तु भोज्य पदार्थ हाथमें लियौ और साथ ही भावना करौ कि श्रीलाड़िली लाल उठाय कैं पाय रहे हैं—ये है सांनिध्य। प्रसादी समझि कैं वही वस्तु अपने मुख मैं दै दीनी।

सबरे सगुण-उपासक-आचार्य तथा भक्तन कौ एक सिद्धान्त है—नाम, रूप, लीला और धाम।

इन चारनमें ते एक कौ दृढ़ आश्रय करिलैनौं, बस याही सौं सब सिद्ध है जाय है। अपने विचार सौं अपनी सामर्थ्य देखते भये श्रीनाम कौ दृढ़ आश्रय लैनौं ही सुगम, अच्छौ एवं रुचिकर प्रतीत होय है। श्रीब्रज कौ वास हू अभीष्ट है। या प्रकार सौं द्वैन कौ आश्रय तौ दृढ़ता सौं हौनौं चहिए अर्थात् निरन्तर श्रीनाम-भगवान् जिह्वा पै विराजते रहैं तथा भौतिक शरीर श्रीब्रजरजमें रह्यौ आवै।

अब अन्तर्मुखताके ताँईं—स्वरूप कौ ध्यान, स्मरण, सांनिध्य, प्रेमालाप, परमाह्लाद, प्रणाम तथा सेवा आदिक साथ ही अपने भावके अनुसार लीलान कौ चिन्तन।

दृढ़ताके साथ द्वैन कूँ पकरे रहै—श्रीनाम, श्रीधाम; इनमें पूर्ण प्रयत्न, नियम-पालन, अवशिष्ट द्वै तौ आसन्न सिद्धावस्थामें ही हौयँ हैं।

रूप तौ एक प्रकार सौं फल है।

श्रीनाम और श्रीधाम कौ निरन्तर आश्रयण, रूप कौ यथावसर चिन्तन, सांनिध्य कौ प्रयत्न करनौं।

श्रीमहदाश्रय, श्रीनाम-जप, श्रीब्रजधाम-वास, श्रीप्राणनाथकौ सांनिध्य तथा प्रेमालाप।

सतत स्मरण राखनौं कि संकल्प, इच्छा तथा विचार आदिक सब ही परम संयमके अन्तर्गत ही हौयँ।

प्रश्न—दासभावमें हँसिवौ-खेलिवौ कैसैं?

उत्तर—अन्त:करणके अव्यक्त भाव कौ व्यक्तिकरण ही शब्द है या न्यायके अनुसार मेरे शब्दनमें प्राय: वात्सल्यकी झलक रहै है। मुख्य बात तौ यही है—

'सब कर फल हरि भगति भवानी॥'

यहाँ श्रीशंकरजीके **'हरि भगति'** वाक्य सौं अनुरागात्मिका भक्ति कौ निर्देश है।

प्रारम्भमें वैधी भक्ति कौ अनुष्ठान कियौ जाय है। वैधी कौ अर्थ है—विधिसहित।

यह करनौं, यह नहीं करनौं, यह विधि-निषेध है। जैसैं कि हमलोग करि रहे हैं।

किंतु आगे बढ़िवे पै यही भक्ति अनुरागात्मिका है जाय है, जो सब कौ फल है अर्थात् अपने इष्टमें अनुराग-प्रेम उत्पन्न होयवे लगै है।

स्पष्ट यौं है—वैधी भक्ति=साधन, अनुरागात्मिका भक्ति, परिणाम=फल।

वास्तवमें सबरे साधन-नियम आदिकन कौ कठोर पालन याही अवस्थाके ताँईं है। मेरौ कछु ऐसौ विचार है (यामें सत्यता कहाँ तलक है, यह तौ मैं नहीं कह सकूँ) कि दासभावमें हूँ आगें चलिकैं घनिष्ठता होयवे पै हँसिवौ, खेलिवौ सम्भव है जात होय। हाँ, यह बात अवश्य है कि वात्सल्यभावके हँसिवे, खेलिवे, पुचकारिवे, दुलारिवेमें और दासभावके हँसिवे, खेलिवे आदिकनमें कछु अन्तर अवश्य रहै है। किंतु मैं तौ दासभावकी परिपक्व अवस्था कूँ ही वात्सल्यभाव मानूँ हूँ। अन्त:करणके नि:संकोच होयवे तें अत्यन्त घनिष्ठता (आत्मीयता) हौनौं स्वाभाविक है। याही अवस्थामें यह सब है ही जाय है। यह विषय स्वसंवेद्य है। यामें विशेष शब्दाडम्बर नहीं काम देय।

प्रश्न—अनिवार्य श्रुति कूँ कैसैं रोक्यौ जाय?

उत्तर—ऐसे अवसर पै वा स्थान सौं शीघ्रता सौं हटि जाय। अवसर होय तौ जोर-जोर सौं श्रीभगवन्नाम-उच्चारण करिवे लगै। अपनी वृत्ति कूँ श्रीभगवत्-नामके रस लैवेमें लगाय दे। सुन्यौ-अनसुन्यौ करि देय, फिर वाकौ स्मरण न हौन पावै। सच्ची बात तौ यह है (जो या समय संयमके कछु थोरेसे पालन करिवे तें अनुभव होय है) कि इन्द्रिय विचारी कोई वस्तु ही नहीं, इनकी कोई पृथक् सत्ता ही नहीं। मुख्य तौ मन है। याहीकी प्रेरणा इन्द्रियनमें स्फुरित होय है।

प्रमाण

छोटे-छोटे बालक हू वाही बात कूँ सुनैं हैं, किंतु वे वाकौ मनन नहीं करैं। ये बालक चाहैं जो अश्लील-सौं-अश्लील शब्द कह डारैं, चाहैं जो कछु सुनिलैं, इनके मन पै प्रभाव नहीं परै। वे तत्काल भूलि जायँ हैं। इतर प्राणी इन्हीं अश्लीलन कूँ मनन करतौ रहै है। मन इनकूँ पकरि कैं बैठि जाय है।

याही बात सिद्ध पुरुषनमें पाई जाय है। वे महापुरुष इन्द्रियनके अर्थ ग्रहण करिवे पैहू वाकूँ मनन नहीं करैं। यह बात तौ बहुत आगेकी है।

प्रारम्भमें, साधनकालमें तौ यही उचित है कि ऐसे अवसर पै अपने कूँ सर्वथा बचाय ही लेय। तात्पर्य तौ मनके रोकिवे सौं है। अभ्यास यही करनौं है कि अपने मन कूँ (वास्तवमें अपनौं मानिकैं) केवल तीन ही स्थलनमें डाटै। अन्यत्र भागिवे तें रोकै—

'मन: स्वबुद्ध्यामलया नियम्य।'

तथा च—

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥

(रा०च०मा० ७। ११८। ९)

एक अपने साधनमें—यथा, श्रीहरि-नाम-उच्चारण करते समय मन सौं वाकौ आनन्द भोगनौं।

दूसरे नियमनके पालनमें—जो नियम या समय चलि रहे हैं, उनकौ पालन हम कितनौं करि रहे हैं?

तीसरे इनके फलस्वरूपमें—श्रीप्राणाधार कौ चिन्तन,अद्यावधि इनकी कृपा, इनकी सँभार, इनकौ वात्सल्य, इनकौ रूप, इनकी लीला, इन सौं आत्मीयता कौ भाव।

फिर इन सौं घुलि-घुलि कैं बातैं करनी—आदिक-आदिक। इन तीन स्थलन सौं जब मन अन्यत्र उछल-कूद करै, तब याकूँ वहाँ सौं लौटाय कैं इन्हीं तीन स्थलन पै रोकनौं—याही कौ नाम अभ्यास है।

ऐसौ करिवे लगि जाय तौ श्रुति आदिकनके विषय सौं सर्वथा छुट्टी मिलिवे लगैगी।

यदि हम सावधानता कौ अभ्यास करैं तौ हमारे अभिलषित समस्त कार्य अत्यन्त सरलता सौं पूर्ण है सकैं हैं।

एक श्रीनाम-जपके साथ-साथ श्रवण। दूसरे नियमित कार्यनमें सफलता (सदैव विजय)। तीसरे श्रीप्राणाधार कौ सांनिध्य। ये तीनौं कार्य एक सावधानता पै निर्भर है।

अतएव हमें सब सौं अधिक एक ही अभ्यास बढ़ानौं है—

अनुवेलं सावधानता व्रत

या व्रत कूँ पालन करैं। बड़े भाग्य सौं ऐसौ सुअवसर प्राप्त होय है। याकूँ बहुत ही सँभारिकें राखैं। प्रत्येक विषयमें अति संयमकी आवश्यकता है। हमारौ परम कर्तव्य है कि हमहूँ पूर्ण उत्साह एवं संयमके साथ साधनमें लगैं, श्रीसद्गुरुभगवान् सब सँभारिंगे।

सम्प्रति परम कारुणिक, भक्तवत्सल, सहज उदार मेरे श्रीप्राणाधारने सब प्रकारके सुभीते हम लोगनके ताँईं प्रदान करि

राखे हैं। अतः हमें उचित यही है कि ऐसे सुअवसर कौ एक-एक क्षण बहुत सावधानताके साथ व्यतीत करैं।

परम कर्तव्य—श्रीनाम-जपके आनन्दमें डूबते रहैं। प्राय: एकान्तमें ही वास करैं। नेत्र, कर्ण, हस्त तथा पादादि इन्द्रियनके संयममें कैसैं हूँ प्रमाद न हौन पावै। बहुत ही सावधानता रहै, मनके सँभारिवेमें।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥[१]

(गीता ६। २५)

तथा च—

'मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य।[२]**'**

(श्रीमद्भा० २। २। १६)

इन महावाक्यन सौं पूर्ण लाभ उठावैं।

स्त्री जाति, हृदयकी संकीर्णता, दुराग्रह, काहू प्रकार कौ अहंकार, राग-द्वेष, लोकरंजन, दम्भ, विलासिता, अकर्मण्यता, घृणा, आचार-विहीनता, असूया तथा प्रतिष्ठा-लोभ—ये सब साधकके नाशकारक हैं। अतएव हमें इन सबन सौं बहुत ही बचते रहनौं चहिए।

प्राय: आत्म निरीक्षण करते रहैं। तामैं संख्या छ:में लिखे भयेन सौं हम बचते रहैं हैं या नहीं, यह बड़ी गहराईके साथ अत्यन्त सात्त्विकी बुद्धि सौं खोज करते रहैं।

नियम-पालन कितनी सावधानी सौं करि रहे हैं? एक हू क्षण व्यर्थ तौ नहीं खोय रहे? अपने प्राण-प्यारे दुलारेके

१-क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्राप्त होवे तथा धैर्ययुक्त बुद्धिद्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके, परमात्माके सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे।

२-अपनी निर्मल बुद्धिसे मनको नियमित करे।

मिलिवेके ताँईं अन्तःकरणके काऊ कोनेमें कछु स्फुरण उठै है या नहीं?

उद्योग करिवै पै सफलता प्राप्त होय है, यह भ्रम है। सफलता तौ नित्य सिद्ध वस्तु है। उद्योगरूपी तपमें जितनौं अपने कूँ तपाय कैं शुद्ध करते जायँगे, उतने ही सफलतारूपी परम निधिके ग्रहण करिवेके योग्य बनते जायँगे।

सर्वव्यापक श्रीभगवान्‌के दर्शन करिवेके ताँईं साधनरूपी तपमें अपने नेत्रन कूँ तपाय कैं शुद्ध, योग्य बनावै, तब ही श्रीभगवद्दर्शन होयवे लगिंगे।

आज अमावास्या है, घोर अन्धकार सर्वत्र फैल जाय है। किंतु अनेकन दीपकनके प्रज्वलित होते ही विचारौ अन्धकार अपने प्राण बचाय कैं भाग जाय है।

प्रमाद है=अन्धकार विकट।

उद्योगशीलता है=प्रकाशाधिक्य।

कितनौं विकट परिश्रम कियौ हो श्रीविष्णुभगवान्‌ने, श्रीलक्ष्मीजीकी प्राप्तिके ताँईं? अब तौ श्रीभगवान् सोते रहैं हैं और विचारी श्रीलक्ष्मीजी इनके श्रीचरणन कूँ पलोटती रहैं हैं।

यासौं शिक्षा मिलै है—उद्योगशीलके सोयवे पै हू सिद्धि याकौ साथ नहीं छोड़ै है।

साधक, साधन, साध्य—तीनौंके मध्यमें साधन है। यही दोउनके बीचमें है। यही दोउन कूँ मिलायवेमें समर्थ है।

कहवेमें संकोच होय है, भय लगै है, किंतु बात सर्वथा सत्य है। सिद्धि तौ साधककी चेरी है।

अनुभव—श्रीविष्णुभगवान् कौ श्रीलक्ष्मीजी प्राप्त करनौं।

चित्त कूँ शान्त करिकैं पूर्णरूप सौं काहू साधनमें लगि जाय। संशय न राखै—'**संशयात्मा विनश्यति।**' बहुत झमेलनमें अपने कूँ न डारै। जौ करै, वाही कूँ समझै, विचारै, मनन करै, पूर्ण प्रयत्न करै, मरि मिटै।

किंतु इतनौं सबरौ वानिक तब ही बनि पावैगौ, जब काहू मनुष्यरूपधारी श्रीसंत भगवान्‌में पूर्णरूप सौं श्रद्धा होयगी।

श्रीप्राण-प्रियतमके श्रीमुखके महावाक्य हैं, यामैं बड़ौ गम्भीर रहस्य है। यह नियम है कि जब ताँईं साधकके पुण्य रहैं हैं, तब ताँईं वाकूँ या लोकमें स्वर्गीय सुख प्राप्त होते रहैं हैं। यदा-कदा स्वर्ग हू जानौं परै है तथा जिनके पाप रहैं हैं, वे या लोकमें दुःख, चिन्ता, शोक, निद्रा आदिकनमें फँसे रहैं हैं; जो जीते-जी नरक होय है।

अब जीव कौ कल्याण कैसैं होय?

याके निराकरणके ताँईं यह महा-महावाक्य है कि जिन साधकन कूँ मेरी प्राप्तिकी इच्छा होय, वे भोगन कूँ भोगि डारैं, याते सबरे पुण्य क्षीण है जायँगे। अब स्वर्ग कौ मार्ग बंद।

अब रहे पाप—इनके ताँईं सदैव सदाचार-परायण, सुशील महापुरुषके समान आचरण करिवे वारौ बनै। यातें पाप नष्ट है जायँगे। जब ये दौनौं नष्ट है गये, तब ही मेरी प्राप्ति होय है। आशय यह है कि ऐसे उच्चकोटिके महापुरुषनके आचरण जन्म सौं ही लोक सौं भिन्न होयँ हैं।

उदाहरण—श्रीउद्धवजी कौ—श्रीउद्धवजी जा समय पाँच वर्षके थे, बालकनके संग खेलि रहे। मैया कलेऊ करिवेके ताँईं बुलायवे गयी किंतु '**तन्नैच्छत्**'—कलेऊकी इच्छा ही न करी।

कारण यह है कि अपने समवयस्क बालकनके संग श्रीप्राणधनकी सेवा कौ विधान करि रहे हते। वा समय कलेऊकी सुधि कहाँ? पाँच वर्षके बालकमें इतनौं अनुराग!

या प्रसंगकी यदि व्याख्या करिकैं कथा कहवे कौ अवसर मिलै, तौ मैं एक जन्ममें हूँ पूरी नहीं करि सकूँ हूँ।

उत्तम साधक कौ यही श्रेयस्कर है कि—इच्छान कूँ मिटावै। कर्तव्य कौ पालन प्राणपन सौं करै। इच्छा होते ही मनकी शान्ति मारी जाय है। मन चंचल एवं उद्विग्न है जाय है। जो साधकके ताँई सर्वथा अहितकर है।

इच्छा, वासना तौ रहन ही न पावै। इनकूँ निर्मूल करनौं साधक कौ परम कर्तव्य है। साधक जैसें-जैसें आगे बढ़ै है, वैसें-वैसें ही कठिनता कौ साम्मुख्य प्राप्य होय है। परीक्षानमें—यथा—प्रथमा सौं मध्यमा कठिन। मध्यमा सौं शास्त्री कठिन। शास्त्री सौं आचार्य कठिन।

किंतु यदि छात्र प्रथमामें ही 'लघुकौमुदी' ठीक-ठीक समझिकैं अध्ययन करि लेय तौ आगेकी परीक्षाएँ कठिन होते भये हू कठिन नहीं प्रतीत होयँ हैं। तद्वत् साधक—

परिभाषा—इच्छा=अभाव वस्तुकी चाह। रुचि=जो वस्तु मन कूँ सुहाय—

'रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥'

(रा०च०मा०२। ८२। ५)

वैसें तौ रुचि और इच्छामें बहुत ही कम भिन्नता-सी प्रतीत होय है, यह तौ स्थूलतामें रही। अवान्तर भेद तौ है ही।

जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

(रा०च०मा० ७। ११४। ४)

कहूँ-कहूँ 'इच्छा' शब्द कौ प्रयोग संकल्पमें होय है।

यथा—

'हरि इच्छा भावी बलवाना।'

(रा०च०मा० १। ५६। ६)

किंतु विशेष करिकैं इच्छाकी परिभाषा यही ठीक जँचै है। यथा—

इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥

(रा०च०मा० १। ७०। ८)

जा साधक कूँ भजनमें रस नहीं मिलै, वही विचारौ यत्र-तत्र भटकतौ फिरै है। यह एक परिचय है। जैसें-जैसें आनन्द आतौ जायगौ, वैसें-वैसें ही रसकी उत्पत्ति होती जायगी। किंतु रस कौ बोध साधक कूँ बहुत आगें चलिकैं होय है। यही आसन्न सिद्धावस्था है।

ऐसौ साधक भजन छोड़ि नहीं सकै। अब भजनने याकूँ पकरि लियौ है।

आनन्द सौं रस अति सूक्ष्म है।

आनन्द कौ अनुभव तौ कितने ही साधकन कूँ यत्किञ्चित् होयवे लगै है, यद्वा वह मानि बैठै है—किंतु रसोत्पत्ति तौ काहू विरले साधक कूँ ही उपलब्ध होय है।

रस—अदृष्ट, अनुभवगम्य तथा स्वसंवेद्य है।

एक बात सौं बड़ी ही प्रसन्नता भयी तथा बड़ौ आश्वासन मिल्यौ कि यदि बुद्धि सावधानता सौं देखती रहै, तौ इन्द्रिय तथा मन स्वतः संयमी बनि जायँ हैं। याही सौं सब काम बनि जायँगे।

यही करनौं, यही विचारनौं, यही धारणामें लानौं तथा याही विषयकी युक्तियाँ सोचनीं।

आज श्रीगुरुवार है। आज यह निश्चय है गयौ कि, इन्द्रिय तथा मन कौ संयम कष्टसाध्य है, असाध्य नहीं। अर्थात् सर्वथा सुसाध्य है। यामें हमारी ही शिथिलता है।

'मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य'

तथा च—

'होइ बुद्धि जौं परम सयानी।'

निष्कर्ष यह है कि, हमें सदैव बुद्धि बलवती बनाये राखनी चहिए।

बात यही जानि परै है कि, मन कूँ विषयनमें विशेष रस मिलै है। कारण यहू है कि, जन्म-जन्मान्तर सौं जब-जब, जा-जा यौनिमें जीव पहुँच्यौ, विशेषतया विषयनकौ ही शिकार होतौ रह्यौ है। देव-यौनि हमलोगन सौं बहुत ऊँची मानी जायँ हैं, किंतु वे तौ मनुष्यन सौं कई गुने अधिक विषयनके गुलाम बने बैठे हैं। यही कारण है कि, मन बार-बार रोकिवे पै हू उसमें ही भटकतौ रहै है। येन-केन प्रकारेण अपनौं काम बनाय ही लेय है। प्रकृतिने दौनौं प्रकारकी वस्तुएँ रची हैं।

यथा अग्नि दाहक है—तौ

याके शमनके ताँईं जल इत्यादि।

यहाँ मन कूँ रसान्तरमें लायवेके ताँईं श्रीप्राणनाथकी स्मृति ही परमौषधि है।

यह अनुभूति है कि—जा क्षण श्रीप्राण-प्रियतमकौ स्मरण कैसैं हूँ होयवे लगै वा क्षण अन्त:करणमें कोई हू विकार ठहर ही नहीं पावै है।

अब हमारौ कर्तव्य है कि—

'मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य।'

—बार-बार श्रीप्राणवल्लभकी स्मृति। लयके साथ श्रीनामोच्चारण तथा श्रवणके द्वारा श्रवण। साथ ही यामें आनन्दकौ अनुभव करनौं।

—बार-बार विषयनके दोषन कौ चिन्तन—

रावण, कीचक, दुर्योधन आदिक हरिदास पुरुष तथा वर्तमानमें हूँ अनेकन उदाहरण प्रस्तुत हैं। हाँ, एक बात परम संतोषकी है कि—

समझायवे सौं मन समझि जाय है। बहुत पुरानौं रोग है। धीरें-धीरें हटि सकै है।

यदि चाहैं और पूर्ण प्रयत्न करैं तौ—सदाचारी, निरोग तथा भगवद्भक्त सब ही बनि सकैं हैं।

श्रद्धा—गुरुजननके वाक्य अथवा स्वनिर्मित नियमनकौ पालन। **(परिवर्तन नहीं करनौं)**

तप—नियमके पालनमें जो कष्ट सहनौं परै, प्रसन्नता सौं सहलेय और मनमें यही मानैं कि, यह सब श्रीप्राणनाथकी कृपा है, जो सहन करवाय रहे हैं। अन्यथा मैं क्षुद्र जन्तु कष्ट कैसैं सह लैंतौ ?

संयम—आहार-विहार तथा नियम-पालनमें यथातथ्य वर्ताव।

सत्य—नियम-पालन तथा आत्मनिरीक्षणमें।

उच्च विचार तथा उच्चतम क्रिया—ये पाँचौ परमावश्यक हैं।

ज्ञान-मार्गमें वैराग्यकी प्रधानता है। अतएव मनोनिग्रह करनौं परै है। किंतु भाव-राज्यके पथमें मनोलयकी विशेषता है। महाहठी, महाचंचल मन या स्थितिमें **(श्रीजीवनधनके सान्निध्य अनुभवके आनन्दमें)** ऐसौ डूबि जाय है कि, न वहाँ मनकौ पतौ लगै है, न बिचारी इन्द्रियाँ हीं कछु जानि परैं हैं, विषयकी तौ गन्ध हू नहीं रहै है। विषय स्वसंवेद्य है। स्थिति बहुत ऊँची है।

सबकौ संचालक तथा सबकौ जानिवे वारौ मन ही जब महानन्दमें डूबि गयौ, तब कौन वहाँकी स्थिति कूँ वर्णन करै? आवश्यकता है, बड़े धैर्यके साथ या अवस्थामें प्रवेश करिवे की। अति-कठिन होते भये हू दुर्लभ नहीं। यह चशका यदि लगिवे लगै तौ अन्तर्मुखी वृत्ति स्वतः होयवे लगैगी।

समस्त प्रपंच।

समस्त विषय।

ऐसे साधक कूँ स्वत: त्यागिवे लगैं हैं।

न त्यागकी आवश्यकता परै और न वैराग्यकी खोज ही करनी परै।

कामके विषयमें समस्त संतनने अपने विचार व्यक्त किये हैं। सबने यासौं बचिवेकी सम्मति दई है। सबरे सद्ग्रन्थनमें याकी घोर निन्दा करी गयी है। सूकर तौ महानीच स्वपच आदिक ही अपने यहाँ पालैं हैं। ब्राह्मणके द्वार पै तौ गौमाता ही दीखै है। यह सब प्रकार सौं साधककी हानि ही करै है। यदि साधकने याकूँ अजेय यद्वा दुर्जेय मानि लियौ, तब तौ याकी खूब बनि आवै है और तब तौ यह घोर आक्रमण करै है और यदि कदाचित् साधक भ्रान्ति सौं कहूँ यह मानि बैठ्यौ कि, मैंने काम पै विजय कर लीनी है। मैं चाहैं जहाँ रहूँ, स्त्री आदिकनके सम्पर्कमें हूँ, मोकूँ, कबहूँ विकारकी ग्रन्थ नहीं उठै। जानें वे कैसैं दुर्बल साधक होयँ हैं, जो सदैव यासौं भयभीत रहैं हैं? यह है ही कितनी गिनतीमें इत्यादि—तब तौ समझ लेउ कि, यह महाशत्रु धोखौ दैकें, समय पायकें बिचारे विजयम्मन्य प्राणी कूँ बुरे ढँग सौं नरक-कुण्डमें पटकि कैं पतन कराय बैठै है।

साधक कूँ या नीच सौं सदैव सावधान रहनौं चहिए। सदैव विषय-सम्बन्धी वस्तुन सौं दूरि ही रहै।

इन्द्रियन कूँ पूर्णत: अपने वशमें राखै।

मन कूँ धीरे-धीरे समझातौ रहै।

मनकी प्रगति पै दृष्टि राखै।

सत्य गुण कूँ बढ़ातौ रहै।

श्रीप्रियतममें प्रेम करिवेकी लालसा तथा पूर्ण प्रयत्न करतौ रहै।

याके शमन करिवेके ताँईं श्रीशंकरभगवान्‌की आराधना करनी उचित जानि परै है।

क्रमश:—

पूर्ण प्रतिज्ञा होय, विषय सौं बचिवेकी।

विकार भाव सौं कबहूँ न देखै, न सुनै, न छुवै, न पढ़ै। विषयन सौं दूर ही रहै।

विषयवर्द्धक कोई वस्तु अपने समीप न राखै।

विषय-चिन्तन करिवे सौं मन कूँ बचावै।

याके दुष्परिणामन कूँ मनके समक्ष धरै।

श्रीप्राण-प्रियतमकौ चिन्तन बढ़ावै।

जीव जा समय चिन्ता, शोक, क्रोधादिकनके वेग सौं आक्रान्त रहै है। वा समय हू भोजन तौ करि हि लेय है, किंतु रस नहीं आवै।

ठीक यही दशा विकारयुक्त जपकी है।

ऐसौ आहार शरीरमें लाभ नहीं पहुँचावै, प्रत्युत विष ही बढ़ावै है। ऐसैं हीं—शोक, चिन्ता, क्रोधादिकन सौं युक्त भजन अन्त:करणमें सत्त्व नहीं बढ़ाय पावै, प्रत्युत भोग उपस्थित करि देय है।

मन है तौ हमारौ ही तथा यह हमारौ सेवक है। हमारी असावधानता सौं यह हम पै शासन करिवे लग्यौ है। पुन: सावधानता स्वीकार करते ही यह दास है जायगौ।

हमतौ प्रतिक्षण लय चाहैं हैं।

जीते-जी यहीं सब सुख भोगि लैं, मरिवे पै कौन ने देख्यौ है?

अखण्ड मौनके समान अपनौं हितकर कोई व्रत नहीं।

साधन तथा नियम-पालन श्रीगिरिराज भगवान्‌के सान्निध्यमें ही पूर्णतया पालन हौयँ हैं।

विरहकौ विशेष महत्त्व या कारण सौं है कि, विरहकी अग्निमें सबरे शुभाशुभ कर्म-फल नष्ट है जायँ हैं।

सबसौं कठिन है—राग-द्वेष। सो सर्वथा विदा है जायँ हैं। कठिन है संसारकी विस्मृति, सो स्वप्नमें हू नहीं उठै है। निरन्तर अविच्छिन्न तैलधारावत् अन्तःकी वृत्ति अपने श्रीप्राण-प्रियतममें ही अटकी रहै है। कोई प्रयत्न नहीं करनौं परै। प्रत्युत हटायवेकौ प्रयत्न करै, तऊ वह वृत्ति नहीं हटै।

मैं चार बात सबकौ बतलाता हूँ—

सहनशीलता, निरहंकारिता, निरन्तर श्रीनाम-जप और 'श्रीभगवान् अवश्य मिलेंगे' ऐसा दृढ़ विश्वास।

(परमपूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज) या महा-महावाक्य कूँ दिनमें कैऊवार सुनते।

माया कौ प्रधान काम है—जीव कूँ लक्ष्य सौं भ्रष्ट करनौं।

श्रीसद्गुरु, संत और इष्टमें प्रगाढ़ आत्मीयता ही या पथकी कुंजी है। यासौं यह पथ, अतिसुगम, सरस और मधुर बनि जाय है तथा शीघ्र प्रेम-प्राप्तिमें सहायक होय है। अन्तमें यही प्रेम बनि जाय है। ये तौ मेरे हैं हीं और मैं आयौ हूँ केवल इनके ताँईं हीं।

ब्रजके एक सुप्रसिद्ध, परम तपस्वी, महात्यागी, परम वीतराग श्रीसंतजी कूँ वृद्धावस्थामें रोगग्रस्त स्थितिमें देखिवे कूँ कलकत्ताके एक सुप्रसिद्ध वैद्य आये। श्रीसंतजीकी स्थिति कूँ देखिकैं वैद्यजीने बताया कि 'बाबा कूँ ऐसौ कोई रोग नहीं है कि जाकौ उपचार कियौ जाय सकै। वैराग्यके कारण इन्द्रियाँ शिथिल परि गयी हैं। अब काम करनौं बंद करि दियौ है'। हमें ऐसे वैराग्यकी आवश्यकता नहीं है। त्याग, वैराग्य कूँ उतने ही अंशमें स्वीकारनौं है, जितनौं साधनोपयोगी जीवनमें सहायक होय। साधनोपयोगी खूब खायलें, पीलें, सोयलें। शरीर कूँ न

कसिकैं, मन कूँ ही कसैं। जासौं वृद्धावस्थामें हू शरीर भजन-साधन करतौ रहै। ऐसे बहुत देखे, जिननें शरीर कूँ अधिक कस्यौ, तौ वृद्धावस्थामें आयकें उनकूँ शरीरने धोखौ दै दियौ। उद्देश्य है, जीवनकी अन्तिम स्वाँसतक भजन-साधन करते-करते जीनौं और भजन-साधन करते-करते मरनौं। या कारण साधनोपयोगी आहार-विहारमें कमी न राखै—**'युक्ताहारविहारस्य…।'** (गीता ६। १७)

यह संसार प्रियतमकी स्वयंकी अपनी रचना है। अपने करकमलन सौं इननें रच्यौ है। यामें हमें गंदगी करिवेकौ कोई अधिकार नहीं है। गंदगी कैसी? लड़ाई, क्रोध, विरोध, अशान्ति, राग-द्वेष, आसक्ति आदि। यामें मछलीकी भाँति जीवन व्यतीत करनौं है, सूअरकी भाँति नहीं। मछली जहाँ कहूँ रहै है, वहाँ शुद्ध जलमें ही रहै है तथा अशुद्ध कूँ शुद्ध बनाय कैं ही रहै है और सूअर जबतक बामें कीच नहीं उठाय लेय है, तबतक बामें बाकूँ आनन्द नहीं आवै है। ऐसैं ही संतजन जहाँ रहैं हैं, वहाँके वातावरण कूँ सतयुगी बनाय कैं ही रहैं हैं। स्वयं आनन्दमें रहैं हैं और आस-पासके जीवन कूँ हूँ आनन्दमें ही राखैं हैं।

श्रीभगवत्प्रेम-रस या आत्मबोध सौं भर्‌यौ भयौ एक घट उपस्थित है। जो मानौं साधककौ हृदय ही है। जब साधक याकूँ अपने श्रीसद्गुरुभगवान्‌में दृढ़तम श्रीभगवत्-भाव बनाय कैं, उनकी आज्ञा सौं, पूरी प्रीति, प्रतीति और सुरीति सौं, एकनिष्ठ है कैं, अपने जीवन-सर्वस्व प्रभुको नाम और चिन्तनरूपी धारान सौं निरन्तर भरिवे लगै है, तब समस्त विकार साधकके प्रियतमके प्रेम-रस सौं भरे भये हृदयरूपी घट कूँ सब ओर सौं फोरिबेकी ताकमें लगे रहैं हैं। जा क्षण साधक अपने कूँ स्वतन्त्र मानि बैठै है अथवा अपनी साधनाकौं अहंकार करि बैठै है, वाही

क्षण इन समस्त बिकाररूपी डाकूँन कूँ अवसर मिलि जाय है और एक संग साधकके हृदयरूपी घट कूँ सब ओर सौं छिद्र करिकैं,भीतर भरे भये अमूल्य प्रेमरस कूँ मल-मूत्र (संसारी विषय-वासना)-में मिलाय देयँ हैं। जासौं हृदय फिर काहू काम कौ नहीं रहै है अर्थात् साधकको समस्त आध्यात्मिक पूँजी कूँ लूटि लै जायँ हैं और बाकूँ कंगाल बनाय देयँ हैं।

यासौं साधक कूँ प्रतिक्षण यह देखते रहनौं चहिए कि अपने महदाश्रयमें कमी तौ नायँ आय रही। अध्यात्म हृदयकी वस्तु है, जितनौं हृदय कोमल और पवित्र होयगौ, उतनौं ही साधक प्रियतमके समीप होयगौ। मल-मूत्र और विकारन सौं निर्मित या मानव-देहमें केवल हृदय ही तौ एक ऐसी वस्तु है, जो प्रियतमके काम आय सकै है तथा इनकूँ भेंट करी जायँ सकै है। या कारण साधककौ परम कर्तव्य होय है कि भले ही प्राण चले जायँ, परंतु प्रियतमकी वस्तु पै आँच न आय जाय। कोई माया-राज्यकी वस्तु याकौ स्पर्श हू न करि जाय अर्थात् कोई विकार-वासना याकी छायाकौ हू स्पर्श न करि जाय। केवल अपने जीवन-सर्वस्व कूँ सौपि कैं ही, तब चैनकी साँस लेय—

दास कबीर जतन सों ओढ़ी, ज्यों-की-त्यों धरि दीन्हीं चदरिया॥

उपर्युक्त समस्त विवेचनाकौ सार यही है कि हृदयरूपी अमूल्य धरोहरकी काहू प्रकार सौं विकृति न होन पावै और साथ ही अपने श्रीसद्गुरुभगवान्के आज्ञारूपी ब्रह्मास्त्र सौं, विकारन सौं रक्षा करिकैं अपने श्रीप्राण-प्रियतम कूँ सौपि दे। तब ही अपनी ईमानदारी मानी जायगी। अन्यथा तौ पक्के बेईमान हैं।

प्रसंग चल्यौ श्रीसुग्रीवजी और श्रीविभीषणजी पै—

ये प्रभुकी शरणमें आये—कामना लैकैं। एक कूँ राज्य-तिलक करि दियौ और एक कूँ राज्य दै ही दियौ। अब समुद्र

पार करिकैं सुवेल शिखर पै पौढ़े हैं। श्रीचरणनमें हैं श्रीअंगदजी और श्रीहनुमान्जी। एक ओर बैठे हैं श्रीसुग्रीवजी और दूसरी ओर हैं श्रीविभीषणजी। विचार करि रहे हैं कि कल सौं युद्ध हौनौं हैं। इनकी परीक्षा तौ लैलैं? तब चन्द्रमाकी श्यामता सौं वहाँ प्रभुने सबकी परीक्षा लई।

जब श्रीअयोध्यामें राजगद्दीके पीछें सबकी विदाई करी, तब एकहु कूँ अपने पास नहीं राख्यौ। नित्य सेवा हाथ परी, तौ केवल श्रीहनुमान्जीके। क्यौं? कोई कामना लैकैं नहीं आये। इनके अन्तःकरणमें श्रीप्राणनाथकौ ही नित्य निवास रहै है। जगज्जननी श्रीजानकी तौ अपनौं जेष्ठ पुत्र ही मानैं हैं।

याद राखौ—यदि हमारे अन्तरमें इनके अतिरिक्त और कोई कामना छिपी है तौ हम इनकी सेवा और इनकौ सांनिध्य पायवेके अधिकारी नहीं हैं।

दूसरौ प्रसंग है राजा प्रतापभानु कौ।…कि—

करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥

(रा०च०मा० १। १५६। २)

यहाँतक कि जो कछु करतौ केवल प्रभुके ताँईं ही। किंतु पोल खुली तब, जब वनमें कपटी मुनि सौं भेंट भई। अन्तरमें छुपी भई कामना अवसर पायकैं उभरि आयी और माँगि बैठै—

एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥

(रा०च०मा० १। १६४)

परिणामका भयौ, राक्षस होनौं पर्यौ। यदि अन्तरमें कछु और बाहरमें कछु और तौ याद राखौ—कामना एक दिन अवसर पायकैं तुम्हें धोखौ देगी, ऐसौ पटकैगी कि तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर, लोक-परलोक सब स्वाहा है जायँगे। काहू कामके नहीं रहौगे।

श्रीभगवान् जब काहू कूँ दर्शन देयँ हैं तौ कहैं हैं कि—**'वरं ब्रूहि!'** तब पतौ चलै है कि यह कितने पानीमें है? वा समय सब छुपी भई वस्तु सामने आय जाय है। प्रभु तौ जरैला हैं। भक्तके हृदयमें अपने अतिरिक्त ये काहू दूसरे कूँ देखि नहीं सकैं हैं। इनके सामने ज्ञान, वैराग्यतक कूँ हाथ जोरि दैनौं परै है। ये देखैं हैं कि जीव का चाहै है? मोकूँ चाहै है या मेरे अतिरिक्त कछु और चाहै है। ऐसे प्रभु कूँ श्रीप्रह्लादजीके सम्मुख ठोडीमें हाथ डारि कैं कहनो पर्‌यो कि मेरी लाज राखि दै। कछु माँगि लै। वा समय श्रीप्रह्लादजीके शब्द हैं कि बड़े दानी बनि रहे हौ। नायँ मानौ तौ दै देउ कि—'मेरे मनमें, कैसी हू परिस्थितिमें, काहू जन्ममें, कबहूँ, कोई कामनाकौ अंकुरतक न उठै **और दूसरी बात**—मेरे पिताकौ उद्धार है जाय। कितनी यातना सहीं? कितने कष्ट सहे? परंतु कबहूँ क्रोध नहीं कियौ, काहू सौं विरोध नहीं कियौ। ये है सार या पथ कौ। ताकौ परिणाम कि भक्तनकी गणनामें शिरोमणिकी पदवी प्राप्त भई।'

याद राखौ—जब-जब कामना उठै, तब-ही-तब रोऔ, व्रत करौ, मचलौ कि—आपके अतिरिक्त मेरे हृदयमें ये आयी कहाँ सौं? ये आयी ही कैसें? और फिर सावधान रहौ कि कोई कामना आवै ही नहीं।

श्रीवाल्मीकिजीने भगवान् श्रीरामजीके पूछिवे पै १४ स्थान, निवासके योग्य सुझाये हैं। १३ में तौ ये कही है कि तुम यहाँ रहौ। परंतु १४वेंमें कही है कि—

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

(रा०च०मा० २। १३१)

यहाँ निरन्तर शब्दकौ प्रयोग कियौ है अर्थात् प्रभुकौ निरन्तर निवास वहाँ ही रहै है, जहाँ कोई कामना नहीं होय है।

श्रीयाज्ञवल्क्यजीने हू श्रीभरद्वाजजी सौं कही है कि—

सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार॥

(रा०च०मा० १। १०४)

'सुचि सेवक' कब? जब समस्त विकाररहित हौ तब।

याद राखौ—यदि इनके अतिरिक्त स्त्री, धन, मान-प्रतिष्ठा आदि अन्तरमें छिपे हैं तौ प्रभु बहुत ही दूरि हैं। याकौ सार यही है कि अपने शरीर और समस्त इन्द्रियन कूँ प्रियतमके देश जायवेके योग्य पवित्र बनाते रहौ। कामनाशून्यता ही प्रियतमके पकरिवे कौ मन्त्र है।

या पथमें तत्त्वांश मर्म है चिन्तन। यह कैसें होय? श्रीरामचरितमानसमें आयौ है कि—

बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥

(१। १०७। १)

भगवान् श्रीशंकरजी ऐसें बैठे हैं, जैसें शान्तरस ही शरीर धरिकै बैठ्यौ होय। ऐसौ कैसें बन्यौ? कामरिपु कूँ समूल नष्ट करिकैं, हृदय कूँ एकदम खाली करि लियौ, तब बैठि पाये। जबतक हृदय खाली नहीं है, नाना प्रकारकी कामनाएँ भरी हैं, तबतक मन शान्त बैठि ही नहीं सकै। संसारी लोगन कूँ स्त्री, धन, पुत्र, वैभव, मान-प्रतिष्ठा आदिकी कामना हौयँ हैं। उनकौ लक्ष्य इनकी पूर्ति करनौं ही है। ऐसें ही हमारौ लक्ष्य है—**'श्रीप्राणनाथ कौ प्रेम प्राप्त करनौं।'**

संसारी लोग जबतक कामनापूर्ति नहीं करि लैयँ हैं, तबतक शान्त नहीं बैठें हैं और हमें चलनौं है इनसौं बिलकुल उलटौ।

हमारे यहाँ कामनान कौ सर्वथा समूल नाश करनौं ही या पथके पथिककौ परम कर्तव्य है—कामना-नाश।

जब कामना-नाश है गयौ और लक्ष्य है श्रीप्राणनाथकौ प्रेम तौ चिन्तन तौ स्वयमेव होयगौ ही। क्यौंकि लक्ष्य हमारौ प्रेम है।

चिन्तनकौ प्रकार है कि—

—बोलै तौ प्रेमके ताँईं।

—सुनै तो प्रेमके ताँईं।

—देखै तो प्रेमके ताँईं।

—विचारै तौ प्रेमके ताँईं।

चिन्तन ही शीघ्रातिशीघ्र प्रेम कराय देय है और पथमें प्रधान है चिन्तन। यदि कामना कोई लौकिक रही तौ एक-न-एक दिन मरनौं ही परैगौ। यासौं कामनान कूँ ढूँढ़ि-ढूँढ़िकैं निकारि फैंकै।

जीव जब इनकी ओर चलिवे लगै और चलै सत्यता सौं, तौ आगेके बन्धन स्वत: ही टूटते जायँगे। अपने उद्देश्यमें दृढ़ता और सत्यता है, तौ आगे कौ मार्ग स्वत: ही खुल जायगौ। सब वानिक स्वत: ही बनते चले जायँगे और सहायक हू मिलते चले जायँगे। जैसैं श्रीलक्ष्मणजीके भावमें दृढ़ता और सत्यता रही, तौ **'*पुत्रवती जुबती जग सोई*'** सौं लैकैं ***'रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई'***तक क्रमश: देखौ कैसौ बनतौ गयौ। यहाँ मुख्य रह्यौ श्रीलक्ष्मणजीकौ दृढ़ और सत्य भाव।

प्रश्न—श्रीनरसीजी—जैसौ प्रेम एक जन्ममें तौ है नहीं सकै?

उत्तर—हाँ, है सकै है, यदि श्रीसद्‌गुरु प्राप्त है जायँ तौ। श्रीसद्‌गुरु वाही कूँ प्राप्त हौयँ हैं, जो प्राणनाथके मिलिवेके ताँईं रोवै है। वाकूँ स्वयं प्राण-प्रियतम श्रीसद्‌गुरु बनिकैं मिलि जायँगे। श्रीप्रियतमकौ प्रेम संसारके चमत्कारकी वस्तु नहीं हैं, यह तौ पीवेकी वस्तु है। लोग पीछैं आयकैं चमत्कारनमें फँसि जायँ हैं। यासौं उनकौ पतन है जाय है।

वस्तु अलभ्य है—गूँगेकौ स्वाद है। वस्तु प्राप्त है वे पै बस यही रहै हर समय कि श्रीप्राणनाथ कब मिलिंगे? कौन-सौ दिन ऐसौ होयगौ कि मैं संसार कूँ भूल जाऊँगौ, हृदयमें टीस बनी ही रहैगी श्रीप्रियतमके ताँईं।

२४ घण्टामें एकहू सैकिण्ड अपने ताँईं नहीं। पाठ होय, नाम-जप होय, चिन्तन होय, यदि बोलनौं हू परै, तौ इनके ताँईं। बात-चीत करनौं, यह सबसौं बाहरी वस्तु है। सर्वप्रथम याही सौं प्रारम्भ होय इनके ताँईं। 'यहू इनके ताँईं' अपने ताँईं कछु रहै ही नहीं, **यह है त्याग।** सब कछु इनके ही ताँईं, यह है **भक्ति (प्रेम)।** कामना, वासना, इच्छा, लालसाशून्य हृदय, **यह है वैराग्य।** अन्त:करण एकदम खाली। अपनौं स्वार्थ नैंकहू न छूइ जाय।

श्रीसद्‌गुरु-कृपा सिंह है और माया बकरी। सिंह और सिंहके बच्चा कूँ देखते ही बकरी जा प्रकार चुपके सौं ठाढ़ी-ठाढ़ी सूखि जाय है, वाही प्रकार श्रीसद्‌गुरुभगवान्‌के दुलारे जीव कूँ देखिकैं माया बिचारी दूरि ही ठाढ़ी-ठाढ़ी सूखि जाय है। वाके ऊपर अपनौं प्रभाव नहीं जमाय पावै है। यह पथ तौ श्रीसद्‌गुरु-भगवान्‌के बिना हाथ आय ही नहीं सकै है। साधक अपने मन सौं ऊँचे-सौं-ऊँचौं साधन करिकैं कितनी हूँ ऊँची स्थिति प्राप्त क्यौं न करिले, किंतु अन्तमें वाकूँ गिरनौं ही परैगौ।

उदाहरण दियौ कि—एक साधकने श्रीहनुमान्‌जीकौ अनुष्ठान कियौ। श्रीहनुमान्‌जी आये, किंतु रहे पींठ पीछैं ही। पीछैं सौं ही बात करते रहे। तब साधकने कही कि महाराज! जब आप कृपा करिकैं पधारे ही हौ, तौ फिर सम्मुख क्यौं नहीं आय रहे? मेरे सम्मुख तौ आऔ, जासौं मैं आपकौ दर्शन करिलूँ। तब

श्रीहनुमान्‌जीने उत्तर दियौ कि तुमने खूब तप कियौ है। तपके साथ अनुष्ठान कियौ है। किंतु कियौ है अपने मन सौं। श्रीसद्‌गुरु-भगवान्‌की आज्ञा सौं नहीं कियौ है। पहले तुम श्रीसद्‌गुरु-भगवान्‌की कृपा प्राप्त करौ, तब हम तुम्हारे सम्मुख आवैंगे। **बिना श्रीसद्‌गुरुभगवान्‌कौ आश्रय लिये या पथमें चलनौं अपने कूँ धोखौ दैनौं है।**

दो बातें परमावश्यक हैं और दौनों ही नहीं बनि पावें।

—लौकिकमें रोगीके ताँईं पथ्य और

—अध्यात्ममें साधकको रहनी।

छल, कपट, दम्भ, पाखण्ड, राग-द्वेष, क्रोध, विरोध छू न जायँ और फिर बनै भजन और फिर होय काऊ संत कौ दृढ़ आश्रय। तौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार। रहनी बनायवेमें वही लगैगी, जाकूँ श्रीभगवान्‌की आवश्यकता होयगी। अध्यात्ममें प्रधान है सदाचार। ये ही अध्यात्मकी नींव है। आहार वह जो पेट कूँ सुपाच्य होय। जीभके ताँईं जो खायौ जाय, वह है विष। हमारे यहाँ प्रधानता है रहनीकी।

श्रीप्राणनाथके अतिरिक्त और कछु चाहनौं ही माया है।

दो बात हमें बहुत प्रिय हैं—

—संतनकी कृपा।

—भक्तन सौं मैत्री।

इनके ताँईं तौ हम भूखे ही बैठे रहैं हैं कि कब मिलैं?

एक अपु बीती घटना सुनाऊँ—इनकूँ (मेरे श्रीसद्‌गुरु-भगवान् कूँ) चार वर्ष पीछैं पतौ परी कि, पण्डित जी हमकूँ गुरु मानैं हैं। यहाँ हमारे एक गुरु भाई श्रीगनेशीलालजी आये और कह रहे कि, बाबाने मोकूँ यौं साधन दियौं, यौं बतायौ, यह दियौ, वह दियौ। तब मैंनें कही कि, हमें नहीं खबर कि, मैंनें कबहूँ सम्मुख परिकैं कछु पूछ्यौ होय। पूज्य श्रीबाबा वहाँ और मैं यहाँ। मैंनें तौ सब कछु यहीं पाय लियौ।

श्रद्धाकी जितनी परिभाषाएँ हैं, उनमें सर्वोत्तम परिभाषा है कि ये (श्रीसद्‌गुरुदेव) हमसौं का चाहते? काहे कि करिवेमें प्रसन्न और काहे के करिवेमें अप्रसन्न होते? जो इनकूँ रुचै, वही करनौं, जो आज्ञा करिदैं वही करनौं और जो इनकूँ न रुचतौ होय, वह प्राण रहते कदापि नहीं करनौं। इनकी आज्ञा-पालनमें अपने कूँ पूर्णरूपेण झौंकि दैनौं, यही समर्पण है। यही है श्रद्धा। आगे जो होयगौ सौ है जायगौ, हमे तो आज्ञा सौं प्रयोजन।

हम जब हाथरस रहते, एकादशी करते। एक दिन बुद्धिने सुझायौ कि आज व्रत है—परनिन्दा, परचर्चा, राजनीति, व्यर्थ-भाषण, कटु-भाषण का, ये सब व्रतमें हैं?

वा दिन सौं नियम ही बनि गयौ कि या तौ मौन रहैंगे अथवा कोई आयकै बैठ्यौ कि श्रीभगवत्-चर्चा प्रारम्भ करि दई। जब-तक वह रह्यौ, तबतक बकते ही रहे।

एक वाक्य मिल्यौ—तुमने जो लक्ष्य बनायौ है, का वह दृढ़तम है? का वा की निष्ठा है? यदि हाँ, तौ जितने कार्य करौगे, वे सब साधन ही माने जायँगे। यदि लक्ष्यमें दृढ़ता है तौ।

एकने श्रीभगवान् बुद्धकी परीक्षा लैनी चाही। वह एक बिल्ली और चूहा पकरि कैं लायौ। श्रीभगवान् बुद्धके सामने छोड़े। बिल्लीने चूहा कूँ उठाय कैं छाती सौं लगाय लियौ। ये है श्रीप्राणनाथके लगे भये प्रेमीकी पहिचान। यदि तुम्हारौ श्रीप्राणनाथके साथ प्रेम है गयौ है तौ संसारकी सब वस्तुनके साथ तुम्हारौ प्रेम होयगौ ही। समस्त संसार तुम्हें प्रेममय दिखायी दैवे लगैगौ ही।

एक ही बात हाथ परी कि—इतने स्वार्थी बनौ कि अपने

स्वार्थके अतिरिक्त और कछु सूझै ही नहीं। अपनौं स्वार्थ है भजन करनौं। यद्यपि यह पथ सबसौं निरालौ है तथापि अपने कूँ सबसौं कछु-न-कछु सीखिवें कूँ मिलै है। चाहैं वह सकामी होय, चाहैं निष्कामी। या पथमें कर्तव्य-पालन ही मुख्य है। अपने काम शौच, स्नान, भोजन, शयन, सब जब चाहैं तब प्रेम सौं है जायँ हैं। किंतु इन (श्रीभगवान्)-के कार्य सब इनकी कृपा पै ही छोड़ि दिये जायँ हैं।

हम जा दरबारके हैं, वहाँ यह बात नहीं मानी जाय है। वहाँ तौ कर्तव्य-पालन पै ही जोर है। तुम्हें ही सब कछु करनौं परैगौ। चाहै अब करौ, चाहै कोटिन जन्मनमें करौ। करनौं सब तुमकूँ ही है। कृपा पै छोड़िकैं निश्चिन्त है जानौ, वहाँ नहीं मान्यौ जाय है। याकौ अर्थ यह नहीं कि कृपा कूँ भूलि जायँ। साधक इनकी कृपा कूँ न भूलै। जो कछु मेरे द्वारा है रह्यौ है, वह सब आपकी कृपा ही तो कराय रही है। या प्रकार अपने कूँ अहंकारकी शिकार हैवे सौं बचातौ रहै। यदि कहूँ अभिमान करि बैठ्यौ कि मैं त्यागी हूँ, वैरागी हूँ, तपस्वी हूँ तौ याद राखौ कि आई भई कृपा फट् सौं लौटि जायगी और पतन है जायगौ।

जहाँ ताँईं संसारी लोगन सौं सम्पर्क है, अशान्ति-खेद तौ रहौगौ ही। जीवकी परिभाषा है फैलाव। जीव जब श्रीभगवत्की ओर बढ़िवे लगै है, तब संकोच प्रारम्भ होय है। ईश्वरमें तौ कोई कामना है नहीं। जब जीव हूँ कामनारहित बनैगौ, तब ही मिलन सम्भव है। यह जीवके वशकी बात नहीं, इतनौ बनि जानौं। अपने-आप जितनौं वैराग्य कौ स्वाँग सजैगौ, उतनौं ही फँसैगौ। अपने-अपने विचार हैं। हमारे विचार सौं हृदय इनके ताँईं, यह प्रथमावस्था है। जो वस्तु इनसौं (प्रभुसौं) बचाय लई जायगी बाकूँ माया पकरि लेगी।

यह देह काहू कूँ दुखद न बनैं—यह उपाय है देहाध्यास छुड़ायवे कौ। काहू कौ अपमान न करै। नहीं तौ प्रेत बननौं परैगौ। प्रेत कौ सुभाव है—दूसरे कौ अपमान करनौं, दुख दैनौं। यदि काहूके सुख कूँ देखिकैं आँखिनमें प्रसन्नताके आँसू आय जायँ, तौ देव बनि जाओगे।

श्रीभगवत्-कृपा कोई वस्तु है। सब कछु करते भये अवलम्ब केवल श्रीभगवत्-कृपा कौ ही रहै। अर्थात् सब कछु करते भये अन्तरमें भाव रहैं कि, सब आपकी कृपा ही तौ है, मैं का करिवे-के लायक हूँ? तथापि अपने करिवेमें किंचित् हू प्रमाद नहीं।

प्रेमी कौ एक ही काम है, इनसौं दृढ़ सम्बन्ध, दृढ़ संकल्प, दृढ़ सान्निध्य बनायै राखनौं। और इनकौ एक ही काम है, उनकूँ पूर्ण करनौं। परंतु सावधान! इतर-संकल्प न उठव पावैं। प्रेम-पथमें प्रधान है—चिन्तन। याकी बड़ी ही आवश्यकता है। साधक कौ परम कर्तव्य है सबसौं मैत्री। हृदय मृदु। रूक्षता न बनन पावै।

आज एक बात याद आई। है तो आत्मश्लाघा ही, पर है बड़े ही कामकी।

हम जहाँ पढ़े, जहाँ नौकरी करी, हाथरसमें जहाँ रहे, प्रारम्भमें श्रीमिर्ची महाराजकी तिवारी पै रहे, और यहाँ हू यह बल्लभकुली मन्दिर है। जहाँ-जहाँ हू रहे, वहाँके ही लोग चाहते रहे कि पण्डितजी सब दिन हमारे यहाँ ही रहैं। अपने या अनुभवके आधार पै ही हमारी तुमसौं कहनौं है कि अपनी रहनी ऐसी बनावैं कि जहाँ रहैं वहाँके लोगन कूँ प्रसन्न राखैं। सबकौं प्रिय बनिकैं ही रहे। ***'सब के प्रिय सब के हितकारी'*** या की बड़ी ही आवश्यकता है और यासौं बहुत ही लाभ होय है। हमें यासौं बहुत ही लाभ मिल्यौ है। यासौं हम तुम सब सौं यह कह रहे हैं।

स्वयं कूँ निर्दोष समझनौं, यासौं बड़ौ कोई पाप नहीं।

गृहस्थ की रहनी—माता-पितामें पूरी श्रद्धा है और श्रीसद्गुरुमें पूरी श्रद्धा है, तौ चाहै जहाँ रहै, वहीं भजन बन जायगौ। कुसंग सौ बचै, कामना कोई हो न। पवित्रतम जीवन होय, पत्नीके ताँईं पति ही ईश्वर है। पतिव्रत-धर्म कौ पालन होय। पतिके ताँईं एक पत्नी व्रत-पालन होय। सतोगुणी (सात्त्विकी) आहार पाये, श्रीरामायणजी कौ पाठ होय। भजन-कीर्तन होय, साथ सेवा होय। छोटे-बड़ेन कौ सम्मान करैं। बड़े-छोटेन पै प्यार करैं। यह सब काहू संतकी आज्ञा सौं ही होय। उनके श्रीचरणनमें पूर्ण श्रद्धा होय। कलह, क्रोध, विरोध, काहू सौं होय न। जो कछु परिस्थिति आवै बाकूँ श्रीभगवत्-कृपा मानकैं सह लें। एक दूसरे सौं प्रेम होय, ऐसौ मानिकैं कि, यह मेरे बाबा कौ (या श्रीभगवान् कौ) है। इतनौं करि लेउगे तौ सुख, शान्ति, आनन्द इतनौं आवैगौ कि अकुताय जाऔगे। झेल नहीं पाऔगे। तुम करि सकौ हौ। वह घर वैकुण्ठ बनि जायगौ। यह रहनी एक नव विवाहिता दम्पति कूँ आशीर्वादके रूपमें गृहस्थमें प्रवेश करिवे सौं पूर्व आदेश करी।

श्रीगोविन्ददासजीने कही कि बाबा अब आपके पीछैं कोई ऐसौ मार्गदर्शक नहीं रह जायगौ, जौ सही-सही मार्ग सुझाव सकै। इनकी बात सुनिकैं उत्तरमें इनसौं तौ कछु नहीं बोले, परंतु अपने निकट बैठे एक बालक सौं बोले कि सुन रहे हौ? ये का कह रहे हैं? सावधान! समय बहुत ही दुस्तर है, कारण कि साधक पहिलें तौ चलै है श्रीसद्गुरुके अवलम्ब सौं। परंतु पीछैं चलिकैं अपने त्याग, वैराग कौ बल है जाय है। श्रीसद्गुरु कौ अवलम्ब ही एक या पथ कौ आधार है। वह छूट्यौ और माया कूँ अवसर मिल गयौ। वह तौ अवसर देखती ही रहै है। फिर

तौ जो कछु होय है, वह सब देखते ही बनै है। यासौं दृढ़ श्रद्धा। दृढ़ अवलम्ब।

मृत्युकी अन्तिम स्वाँसतक अवलम्ब न छूटन पावै। फिर तौ यह पथ अति सरल-सुगम है जाय है। यह खबर ही नहीं चल पावै कि मंजिल कब पूरी है गयी। इतनौं सरल है जाय है यह पथ। यदि काहू संतकी दृढ़ अवलम्ब होय तौ। पर यह बनि नहीं पावै। यासौं आजकी बात ध्यान रखियौं। सावधान! सतत सावधान!! हमें तुमसौं पूरी-पूरी आशा है। जैसैं पुत्र कूँ देखिकैं लोग पिताकी याद करि लेंयँ हैं, छोरा फलाने कौ है का रे! ऐसैं ही तुमकूँ देखि कैं, लोग हमारी याद करिलें कि तुम पण्डितजीके पुत्र हौ का? पण्डितजीके लाढ़िले हौ का? ऐसी रहनी सौं रहियौं।

कलियुगकौ इन तीनन पै पूरी हाथ है—साधु, ब्राह्मण और स्त्री।

कलियुग कहै है कि तुम चाहैं जो कछु करिलेउ, पर नैंक दम्भ कूँ जगह दिये रहियौं और इनकौ (प्रभुकौ) स्वभाव है कि दम्भकौ चौरेमें भण्डा फोरैं हैं। **उदाहरण दियौ**—राजा भर्तृहरिके राज्यमें एक ब्राह्मण शिवभक्तकौ। जाकूँ शिवजीने फल दियौ हो कि याकूँ जो खावैगौ वह अमर है जायगौ। ब्राह्मणके मनमें आयी कि मेरौ अमर है कैं का होयगौ? यदि हमारौ राजा अमर है जाय तौ अच्छौ रहैगौ? ऐसौ बिचारिकै वा ब्राह्मणने वह फल अपने राजाकूँ जाय दियौ। राजाकी आसक्ति रही अपनी रानीमें या कारण बाने बिचार कियौ कि यह फल यदि मेरी रानी खायले तौ अच्छौ रहैगौ। ऐसौ बिचारिकै राजाने वह फल अपनी रानीकूँ जाय दियौ। रानीकौ गुप-चुप प्रेम-सम्बन्ध रह्यौ सेनाध्यक्षसौं। बाने सोची कि यह फल यदि सेनापति खायले तौ अच्छौ रहैगौ।

ऐसौ बिचारिकै बाने वह फल सेनापति कूँ दै दियौ। सेनापतिकौ सम्बन्ध नगरकी एक वेश्यासौं रह्यौ। बाने सोची कि यदि यह फल वह वेश्या खायले तौ अच्छौ रहैगौ। ऐसौ बिचारिकै बाने वह फल वेश्याकूँ दै दियौ। वेश्याने बिचार कियौ कि हमारौ राजा बहुत ही धर्मात्मा है। यदि वह याकूँ खायलेगौ तौ सदाँ-सदाँकूँ अमर है जायगौ और पूरे देशमें धर्मकौ साम्राज्य छायौ रहैगौ। ऐसौ बिचारिकै वेश्याने वह फल राजा कूँ जाय दियौ। जब लौटिकैं फल पुनः राजाके पास पहुँच्यौ, तब पोल खुली कि जा रानी पै मोकूँ इतनौं विश्वास और प्रेम है, वह हू धोखेबाज है? बस राजाकूँ वैराग्य है गयौ और संन्यास लै लियौ। यदि या समय कछु प्राप्त करनौं है तौ दम्भ न रहन पावै। भजन भले ही कम हो, पर दम्भ न रहन पावै। दम्भ करनौं परै है तब, जब पुजबायवेकी लालसा होय। यह न हौन पावै। सावधान! या पथके पथिककूँ विशेष आवश्यकता है, यासौं बचिवेकी। जो होय पूरी सत्यता सौं होय।

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही।
सीता राम चरन रति मोरें।

(रा०च०मा० २। २०५। १-२)

ऐसी रहनी हो कि बस हम जानैं या हमारे प्रियतम जानैं। जो कछु हो प्रियतमके ताँईं। आज सौं लाखन वर्षपूर्व जीवकूँ ईश्वरसौं बिमुख करायवेकी तीन बातें निश्चित कर ली गयीं—द्रव्य, स्त्री, पुजबायवेकी लालसा।

ये ही मूल हैं। जबतक संसारी लोगन सौं सम्पर्क रहैगौ तौ अशान्ति तौ रहैगी ही।

एक महा-महावाक्य मिल्यौ—कोई निन्दा करै अथवा प्रशंसा करै तौ ऐसौ समझै कि चिरैया चीं-चीं कर रही हौयँ।

दोऊनकी उपेक्षा ही रहै। दोऊनकूँ मत सुनौं। कोई निन्दा करैगौ—कौनकी? शरीरकी। कोई प्रशंसा करैगौ—कौनकी शरीरकी। मैं तौ अपने प्रियतमकौ हूँ। विशेष ध्यान रहै अपने लक्ष्यकौ।

संसारी लोगनके द्रव्यमें, संगमें, सेवामें रोग होय है। वह उनके सम्पर्क सौं साधकके जिम्मे परि जाय है और जितनी चिकित्सा होयगी उतनौं ही बढ़ैगौ। क्योंकि चिकित्सा होयगी उनके पैसा ही सौं। यासौं इनकौ सम्पर्क न बनन पावै। जितनी बनै तितिक्षा ही होय।

सुनैं न काहूँकी कही, कहै न अपनी बात।
नारायण वा रूपमें, मगन रहै दिन-रात॥

कलियुगकौ पूरौ हाथ—महत् अपराध कराय दैनौं।

सतयुगकौ पूरौ हाथ—श्रद्धा कराय दैनौं।

या समय जो कृपा है रही है, बाकी पूरी सँभारमें लगे रहैं जीवनभर। जीवनकी अन्तिम साँसतक अपराध न बनन पावै। अपराध का है? अश्रद्धा।

प्रथम श्रद्धा ही ढीली परै है। फिर दोष-दुर्गुण दीखिवे लगैं हैं। बस, पतन प्रारम्भ है गयौ। सावधान! जो आज्ञा है जाय, बाकूँ पूरी श्रद्धा सौं, सप्रेम, आत्मीयता सौं, जीवनकी अन्तिम साँसतक पालन करते रहनौं। तब ही बचि पाओगे। सावधान! सावधान!! अपने मन, बुद्धि सौं काम नहीं लैनौं। अपने ताँईं कछु बचायकैं न राखैं। बस।

महापुरुष तौ कृपा करि देयँ हैं, परंतु पात्रता न हैवेके कारण बाकी सँभार नहीं ह्वै पावै है। दीखिवेमें एक पै पूरी कृपा है और दूसरे पै नहीं दीखै। किंतु बाकी सँभार नहीं है तौ वह काम नहीं करि पावैगौ तथा कछु लाभ हू नहीं मिल पावैगौ।

परंतु जापै कृपा नहीं दीखै है और बाकी पूरी श्रद्धा है, पूरी

आत्मीयता है तथा जो कछु कृपा है बाकी पूरी सँभार है, तौ कृपा स्वतः ही मिलती चली जायगी। बाकौ परिणाम अति सुन्दर ही रहैगौ।

सावधान!

एकमात्र आश्रय ही रहै श्रद्धा कौ। जबतक अपने साधन, त्याग, वैराग्य कौ नैंकहू अहंकार है तौ कृपा ठहर ही नहीं सकै है। इनके सामने सदैव शिशुवत् ही बन्यौ रहै—सदैव विनम्रता, दीनता, सरलता। जा काहूने आजतक कछु पायौ है, वह शिशु बनिकैं ही पायौ है। इनकी ओर न देखै कि ये मोपै कितनी कृपा करि रहे हैं? अथवा कितने प्रसन्न हैं? यही सोचै कि हम इनकी ओर कितने झुके हैं? हमारौ जीवन इनके ताँईं कितनौं है? यही बात संतके विषयमें है, श्रीसंत और श्रीभगवान्—ये दो कब हैं? ये तौ एक ही हैं। सदैव अपनी पात्रताकी ओर ही देखै। अपने कूँ पात्र बनावै। श्रद्धा दृढ़ करै। कृपामें कमी नहीं है। यामें नैकहूँ संदेह न रहै। कदाचित् यह प्रतीति होय तौ यही समझै कि परीक्षा करिकैं, तपायकैं, पात्र बनाय रहे हैं।

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥

(रा०च०मा० २। २०५। ५)

ये पात्र बनाय रहे हैं। याही सौं विलम्ब है।

अपनेमें निरहंकारिता लानौ ही अपने कूँ पात्र बनानौ है—

कृपाकी वर्षा तौ है ही रही है, किंतु ये कृपारूपी जल, निरहंकारिता (दैन्य)-रूपी गड्ढमें ही ठहरै है। आश्चर्य यह है कि कृपा दीखै ही नहीं है। कृपा-ही-कृपा है, किंतु कमी है अपनी। इनके यहाँ तौ चूक है ही नहीं।

—चाहैं संतके पास रहलेउ।

—चाहैं सेवा करिलेउ।

—चाहैं सत्संग करिलेउ, चाहैं सुनलेउ, किंतु संसार सौं पिण्ड नहीं छूटि सकै।

हम इतनौं, अनर्गल बनिक जायँ हैं, काहू कूँ सुनायवेके ताँईं नहीं। हमतौ अपनौं पाठ (याद करैं) दुहरावैं हैं। वामें सौं काहू कूँ कछु मिलि जाय, वह पकरि लेय तौ यह हमारी सेवा है गयी और बाकौ सौभाग्य।

—बड़े महापुरुष, संत जो आज्ञा दें, उनकौ प्राणपण सौं पालन बनै। उनके चरित्रनमें सौं कछुकौ अनुकरण कियौ जाय सकै है। सबकौ नहीं करि बैठै, ये सिद्ध हैं।

—साधक कूँ आज्ञा-पालन ही सब कछु है। साधककी एक ही परिभाषा, एक ही लक्षण, एक ही स्वरूप है—जो आज्ञा महत् सौं प्राप्त भई है, वाकौ जीवनभर पालन।

स्वतन्त्र चलैगौ तौ साधककौ पतन है जायगौ। यासौं अपने मन सौं न चलै, केवल आज्ञा-पालन, बस। यही श्रीभगवत्प्राप्ति और परमपद-प्राप्तिकौ परम सूत्र है तथा अपने मन, बुद्धि सौं चलनौं, पतनकौ और विपत्तिनकौ आवाहन करनौं है। प्राण खोय दे, पर आज्ञाके विरुद्ध कोई काम न हौन पावै। तब तुम श्रीभगवान् कूँ मत ढूँढ़ौ, श्रीभगवान् तुम्हें ढूँढ़ि लैंगे।

साधकमें एक ही बात सबसौं ऊँची होय है कि इनके (श्रीभगवान्के) बिना एकहू क्षण व्यर्थ न जाय।

श्रीरामायणजी एवं श्रीभागवतजी इष्टस्वरूप ही हैं।

एक महा-महावाक्य यह है कि— श्रीरामायणजी सुननौं, पाठ करनौं, श्रीरघुनाथजीके समीप बैठनौं है। श्रीभागवतजीकौ पाठ सुननौं अथवा करनौं श्रीकृष्णके समीप बैठनौं है।

मरि जाय, परंतु प्राण रहते पाप न बनै।

गुरुजनन कौ सामनौं न करि बैठै, सह ले, कछु हो, पर आँख न उठै।

क्रोध न करै, जो जाय सो जाय, रहै सो रहै, पर क्रोध न करै।

अपमान सह ले, किंतु दूसरे कौ अपमान न करै।

स्त्री सौं सम्पर्क कैसैं हूँ न बनै?

अपनी ओर सौं अखण्ड ब्रह्मचर्य कौ पालन करै (**रोग-विवशताकी बात अलग है।**)।

सत्यता कौ पूरौ पालन बनै।

कटुता, रूक्षता तथा ईर्ष्या—ये न हौन पावैं।

दम्भ, कपट, छल छू न जाय।

हमारी तौ दृढ़ धारणा है कि यदि एक ही जीवनमें पार हौनौं चाहै तौ—

सरल उपाय है—२४ घंटा केवल इनके ताँईं—एक हूँ क्षण व्यर्थ न जाय। खाय लेय, पीय लेय, सोय लेय, किंतु अन्य समय केवल इनके ही ताँईं। जो विचार बार-बार सुन्यौ जाय, कह्यौ जाय, पढ़्यौ जाय, वह कालान्तरमें स्वभाव बनि जाय है। यासौं एक नियम बनि जाय। **प्रतिज्ञा करि लेउ कि—**

—जो बोलैं इनके ताँईं।

—जो सुनैं इनके ताँईं।

—जो सोचै इनके ताँईं।

—जो छूबैं इनके ताँईं।

—जो करैं इनके ताँईं। केवल इनके ताँईं ही, व्यर्थ नहीं। संसारके विषय राग-द्वेष, पर-चर्चा, पर-निन्दा आदि प्रतिज्ञापूर्वक नहीं। अध्यात्म-पथके पथिक कौ परम कर्तव्य है कि वह सदैव ख्याल राखै कि हम या समय का करि रहे हैं? कौनके ताँईं करि रहे हैं? अपने ताँईं या इनके ताँईं?

श्रीहनुमान्‌जीने लंका जलायी—कौनके ताँईं? इनके ताँईं। जो होय इनके ताँईं ही होय।

प्रश्न—महत्ता कार्यकी है या लक्ष्यकी?

उत्तर—वास्तवमें महत्ता तौ लक्ष्यकी है। लक्ष्य यदि दृढ़ होय तौ कार्य तौ स्वतः हौयगौ ही। प्रधान तौ लक्ष्य ही है। ये लक्ष्य ही पुनर्जन्म कौ कारण बन्यौ भयौ है। यही पीछैं वासना बनि जाय है।

मन्दिरमें दो साधुन कूँ परस्पर लड़ते देखिकैं निज जनन सौं बौले कि ये दोऊ यहाँ आये ब्रजवास करिवे और आपसमें ऐसे लड़े कि यदि एक-दूसरेके पास आय जाते तौ एक-दूसरे कूँ चबाय जाते। याकूँ देखि कैं हमसौं शयनके समय कही कि लिख लीजौं। भजन-साधन भले ही कम बनै, पर यह न हौन पावै। सावधान! क्रोध-विरोध कूँ अवसर न दें।

सबरी त्रुटि एक साथ अध्यात्ममें ही प्रवेश करि गयी है।

—सत्यता, श्रद्धा, तत्परता—इनमें सौं एक हूँ नहीं हैं।

आजके दिन तीन बात पकरनी है—

—२४ घंटा केवल इनके ताँईं अर्थात् अपनौं सबरौ समय केवल इनके ताँईं।

—जीभ चलै—श्रीभगवत्-नामके ताँईं, पाठके ताँईं, सेवाके ताईं।

—श्रवण—सत्संग सुनिवेके ताँईं, पाठ सुनिवेके ताँईं अर्थात् सुननौं-बोलनौं सब इनके ताँईं ही होय।

दो बात कबहूँ न भूलैं—

—कृपा कौ आभार।

—कृपाकी सँभार।

एक बात जीवनभर ध्यान रहै, सदैवके ताँईं? बड़े गुरुजन कछु बात कह जायँ तौ बाकूँ मान लेय। नहीं तौ परिणाम ऐसौ

होय है, जैसौ एक सत्पथ बिमुख कौ होय है। गृहस्थ-संसारी लोग यदि कछु न करि पावैं तौ सम्भव है ईश्वर-ध्यान न दें, किंतु जिनकूँ खायवे, पीयवे, रहवे, पहिरवेकी व्यवस्था प्रभुने करी है; फिर मिल जायँ कहूँ श्रीसद्गुरु और तब वह चूकै तौ का ईश्वर बाकूँ क्षमा करि देगौ? सावधान! अब चूक न बनै। अवसर कूँ पूर्णरूप सौं सँभारि लेउ।

जो जहाँ है, वहाँ कौ कर्तव्य-पालन पूरौ करि लेय तौ आगे कौ मार्ग स्वतः सुलभ बनि जायगौ। पर यह बनि नहीं पावै।

कहूँ प्रेमिनकी चर्चा होय तौ मन ललचै कि मैं हूँ ऐसौ बनूँ। यही है सबकौ सार। याहीके ताँईं पूरौ प्रयत्न। अबतक जो संकल्प बने वही पायौ। अब संकल्प बनैं केवल इनके ताँईं ही।

राग-द्वेष सौं बचिवे कौ एक ही सर्वोत्तम उपाय है—सतत अपने साधनमें जुट्यौ रहै।

जीवन केवल इनके ताँईं बनै। इनके रिझायवेके ताँईं बनै और ठीक बनै। सत्यता सौं बनै। दम्भ न हो। संसार कूँ धोखौ न दे तौ एक ही जीवनमें बेड़ा पार।

साधन कियौ और ऊँची स्फुरणा न उठी तौ जान लेय कि साधन ठीक नहीं बन्यौ। कहूँ त्रुटि है, साधन ही आगे कौ मार्ग सुझाय देय है।

प्रेमदेवमें एक बड़ी गम्भीर बात है कि प्रेमके अतिरिक्त और कोई कामना न उठन पावै। प्रेम-पथमें हठ नहीं है। यहाँतक कि इनकूँ बुलायवेकी हूँ कामना न करै। अनुत्ताप होय केवल एक, हाय! हाय! इनने कितनी कृपा करी, किंतु मैं कछु नहीं करि पायौ। जहाँ हृदयमें संकीर्णता है, वहाँ श्रीभगवान् कौ कहा काम? वहाँ तौ कलियुग कौ ही निवास होयगौ।

श्रीमद्भागवतजीके एक श्लोक कौ भाव है—तुम्हारौ मन

ही कह देय है कि तुम कहाँ सौं आये हो और कहाँ जाओगे। यह अपने मन सौं ही पूछौ।

पतिव्रता यदि भूल सौं हूँ घूँघटकी ओट सौं हूँ परपुरुष कूँ देखि लेय तौ पातिव्रत नष्ट है जाय। ऐसैं ही साधक कूँ चहिए कि भूल सौं हूँ मायाकी याद न बनै, विषय-विकारनमें चित्त न जाय। यही है अध्यात्म। सब कछु श्रीभगवान्के ताँईं। जबतक ऐसौ नहीं बनैगौ, तबतक उपासना करते भये हूँ कल्प-के-कल्प बीति जायँगे।

ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जग मैं रहैं, हरि को भूलत नाहिं॥

निरन्तर अविछिन्न तैल-धारावत् वृत्ति इनमें ही लगी रहै, यही उपासना है। यही करनौं परैगौ। यह जो सत्संग है न, समय बितायवेके ताँईं नहीं है। कछु लैवेके ताँईं है। '***सतसंगति संसृति कर अंता***' (रा०च०मा० ७। ४५। ६)। इतनौं महत्त्व है याकौ। जाने पूरे मन सौं भजन कियौ है, वाही कूँ भजन न बनिवे पै दुःख होय है। श्रीकबीरदासजी सत्यके ग्राहक रहे। वे ऊपरी बातनमें संतोष नहीं मानते।'

उनकौ सिद्धान्त है—जो कछु होय इनके ताँईं और इनके समक्ष ही होय। आराधना ही जीवन बनि जाय, यह परम कर्तव्य है। यह तब ही बनेगौ, जब जीवन पवित्रतम होयगौ। यदि जीवन पवित्रतम नहीं है तौ यह बनि नहीं पावैगौ।

प्रश्न—व्यर्थ चिन्तन न होय, याकौ कोई उपाय है?

उत्तर—दौ बातें हैं—

—अपनौं साधन इतनौं बढ़ाय देय कि समय ही न मिलै। या साधनके पश्चात् निरन्तर साधनकी ही चिन्ता लगी रहै।

—इनके प्रेममें डूबि जाय। तौ यह तौ अपने बसकी बात ही नहीं। करिवेकी बात है पहली।

तीन बातें हैं—साधन, साधनोपयोगी जीवन और साध्य। इनमें साधनोपयोगी जीवन आवश्यक है।

या पथमें दो बातनकी बड़ी सावधानी राखै—जो इनकी ओर चलि रह्यौ होय, बाकी तन-मन-धन सौं सहायता करि दे। इनकी ओर लग्यौ भयौ होय, बाकूँ इनसौं अलग करिवेमें निमित्त न बनैं।

'अमानिना मानदेन तृणादपि सुनीचेन।'

दीनता, आत्म-चिन्तन, श्रीसद्गुरु-सेवा—इन तीनन कूँ जो करि लेगौ, वाकूँ कोई रोक नहीं सकै। यमराज हू वाकूँ दूरि सौं ही हाथ जोरि देय है।

साधक केवल साधनमें जुट जाय और कोई संकल्प न बनावै तौ माया कौ भय नहीं रहै है। साधनमें अपूर्व शक्ति है।

साधन ही साधन कूँ बढ़ावै है, साधन ही साधक कूँ सँभारै है और साधन ही साध्य सौं मिलावै है।

एक हू क्षण साधन सौं अवकाश न मिलै, यह है साधनकी सँभार।

शरीरके काम हू विवश है कैं ही करने परैं, तब माया हाथ नहीं मारै है। क्योंकि अवकाश ही नहीं है।

इच्छा एक ही बनै कि साधन ठीक बनि जाय।

रुग्णावस्थाके कारण यदि भजनमें बाधा आवै तौ औषधि लै ले।

साधनके ताँईं आहारकी सँभार करनी ही परैगी।

योग्य शिष्य शरणमें आयवे पै संकल्प बनैं कि यह याही जन्ममें पार है जाय। यह श्रीसद्गुरुकी विशेषता है।

सरलता, विनम्रता, उदारता, क्षमाशीलता—ये साधुताके भूषण हैं। इनकूँ धारण करि लियौ तौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार और बड़े-बड़ेनकी कृपा स्वतः प्राप्त है जायगी।

यदि सुख भोगिवेकी, आरामकी, सुविधाकी कामना बनी तौ माया फँसाय लेगी। यदि कछु कामना है तौ अवश्य ही फँसैगौ। जहाँ कामना होय है, माया वहीं हाथ मारै है।

जितनौं त्याग-वैराग्य होयगौ, पीछैं चलिकैं भोग्य उतनौं ही बढ़ि जायगौ। जैसैं ज्वर उतरि जायवेके पीछैं आहार अधिक करनौं परै है। ठीक यही दशा ऊपरी त्याग-वैराग्यकी होय है। यासौं बचिवे कौ केवल एक ही उपाय है, जाकूँ अंग्रेजीमें कहै हैं Only—काहू संत कौ दृढ़ आश्रय। फिर अपने मन सौं कछु न करै।

सदैव अपनेमें देखै—हमारौ मन का चाहै? हमारी कामना का है? माया सौं बचिवे कौ उपाय है केवल एक। प्रतिज्ञा बनि जाय कि—जो करै, जो कहै, जो सुनै, जो देखै, जो विचारै, सब कछु इनके ताँईं ही होय।

यदि साधन केवल इनके ताँईं ही है तौ माया हाथ नहीं मारैगी। कामना न ह्वैवे पै ही माया-राज्य सौं निकारि सकै है। यदि कहूँ कठिनाई आवैगी तौ जाकौ दृढ़ आश्रय है, वही सँभारि लेगौ, बचाय लेगौ—

'रीझत राम सनेह निसोतें।'

या पथमें इनपै दबाव डारनौं नहीं है। इनकौ भजन केवल इनके ताँईं।

इनके ताँईं हू, इनपै दबाव नहीं। केवल कर्तव्य-पालन! कर्तव्य-पालन पै ही जोर दियौ गयौ है।

इनके यहाँ चूक नहीं है, हमारे हितकी बात ये हम सौं अधिक जानैं हैं। इन्हैं हम न सुझावैं। न संत पै दबाव डारैं, न श्रीभगवान् पै। अपने कर्तव्य-पालन पै ही पूरौ ध्यान राखैं।

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥'

जीव कौ केवल इतनौं ही अधिकार है कि वह अपनौं कर्तव्य-पालन करै। संतकी जीवनी सौं देखैं कि ये कैसैं रहे। इनसौं रहनी सीखै। प्रेम-पथमें दबाव नहीं है। याचना नहीं है।

सबकौ सार है एक—काहू संत कौ दृढ़ आश्रय। न अपने मन सौं यह, न अपने मन सौं वह! जैसैं संत चलावैं—क्रमशः वैसैं ही चलतौ रहै। बस, खेल-खेलमें बनि गयौ काम।

चलते-चलते—ठीक चलते-चलते हू, जो रुकि जायँ हैं वामें कारण है यह कि या तौ श्रीसद्गुरु नहीं मिले अथवा श्रद्धा नहीं भई। श्रद्धा शिथिल हैवे पै ही साधक रुक जाय है।

प्रथम-प्रथम संतनमें भाव बनै, तब आगे कौ मार्ग सुलभ। मोहके मिटायवे कौ एक ही उपाय है, इनमें प्रेम बनै। याकौ दृढ़ संकल्प। ज्यौं-ज्यौं प्रेम बढ़ैगौ, मोह मिटतौ जायगौ, दोऊ एक साथ नहीं रह सकैं हैं।

—यहाँ श्रीकुम्भनदासजीके पुत्रकी मृत्यु कौ उदाहरण दियौ और कही कि जा वनमें सिंह रहैं हैं, वहाँ कोई नहीं रह सकै है। ऐसैं ही जा अन्तःकरणमें प्रेमदेवता विराजे हौयँगे, वा अन्तःकरणमें मोह आदिक टिक ही नहीं सकैं हैं।

सुग्रीवजीके द्वारा कही भई ये द्वै चौपाई बड़े ही काम की हैं—

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥

इनकौ भाव स्पष्ट ही है कि यदि काम, क्रोध, लोभ—इन तीनन सौं बचि जाय, तौ जीव ही ईश्वर बनि जाय है। इनसौं प्रतिज्ञा करि-करिकैं बचै तौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार।

संकल्प कोई न उठैं। यदि उठैं ही तौ केवल इनके ताँईं ही उठैं। जबतक संकल्प बंद नहीं हौयँगे, तबतक आवागमन हू बंद नहीं होयगौ। ये विश्व केवल संकल्प ही तौ है। जो-जो संकल्प

बनते गये, वे सब आज दीखि रहे हैं। यदि इनकौ संकल्प बनतौ, तौ ये हू मिलते।

शास्त्र-बिहित ऐसौ कोई सद्गुण न होय, जो प्रेम-पथके पथिकमें नहीं होय अर्थात् समस्त सद्गुण प्रेमीमें कूटि-कूटिकैं भरे भये हौने चहिए।

बुलायकैं घटना सुनायी, बोले कि—केवल सुनिवेके ताँईं ही नहीं है, बल्कि अपने सीखिवेके ताँईं है।

एक बहुरूपिया राजाके दरबारमें पहुँच्यौ। राजाने वासौं कही कि तुम हमें भुलावामें डारिकैं अपनौं नाटक करौ, तब तौ हम जानैं। बहुरूपिया हँसतौ भयौ सिर झुकायकैं चल्यौ गयौ। कछु दिना पश्चात् एक दिव्य संन्यासी कौ रूप धरिकैं सहसा राजदरबारमें उपस्थित है गयौ। संन्यासी-संत कूँ देखिकैं, राजाने तुरंत सिंहासन सौं उतरिकैं, संत कौ अभिवादन कियौ। दण्डवत् प्रणाम करिकैं, राजसिंहासन पै विराजमान कियौ। विधिवत् पूजन कियौ। भोजन करायकैं बहुत सौ धन दक्षिणामें श्रीचरणनमें अर्पित कियौ। संन्यासी महाराजने वह धन लैनौ तौ दूरि, स्पर्श हूतक नहीं कियौ और ऐसैं ही उठिकैं चले गये। वेष उतारिकै बहुरूपिया पुनः राजदरबारमें उपस्थित भयौ और राजा सौं बोल्यौ कि महाराज! लाऔ मेरौ पुरस्कार। राजाने पूछी, काहे बात कौ? बहुरूपिया बोल्यौ कि मेरे साँचे नाटक कौ, जो आपसौं पूर्वमें तय भयौ हो। आपने कही कि तुम हमकूँ भुलावामें डारि देहु, तब तौ हम जानैं। वह संन्यासी मैं ही तौ हो, जो आपने राजसिंहासन पै बैठारिकैं पूजन-अर्चन कियौ हो। आप मेरे झूँठे नाटक कूँ साँचौ मानि बैठे। किंचित् हू नहीं पहिचान पाये। बहुरूपियाकी बात सुनिकैं राजा बहुत ही प्रसन्न भयौ और साथ ही प्रभावित हू भयौ। राजाने बहुरूपिया सौं पूछी कि आज तुम

हम सौं पुरस्कार माँगि रहे हौ, वाही समय क्यों नहीं लै लियौ हो। हमने तौ बहुत सारौ धन तुम्हारे चरणनमें अर्पित कियौ हो? उत्तरमें बहुरुपिया बोल्यौ कि महाराज! मैं वा समय संन्यासी हो। संन्यासी कौ धर्म और मर्यादापालन करिवेकी मेरी पूरी जिम्मेदारी रही। संन्यासी-वेष इतनौं पावन है कि जाकौ स्मरण करिवे मात्र सौं ही अन्तःकरणमें पवित्रता कौ संचार हैवे लगि जाय है। विकार कोसन दूरि भागि जायँ हैं। ऐसैं परम पावन वेषकी आन-मान-मर्यादा-कूँ मैं कैसैं बिगार सकै हो। याही कारण मैंने वा समय आपकौ दियौ भयौ द्रव्य नहीं लियौ हो। बहुरूपियाकी बात सुनिकैं राजा अत्यन्त प्रसन्न भयौ और जो धन संन्यासी-वेषधारी बहुरूपिया कूँ अर्पित किया हो, वह सब-कौ-सब वाकूँ दे कैं विदा करि दियौ।

अब यहाँ सीखिवेकी बात है यह कि—जब बहुरूपियातक या वेषकी आन-मान-मर्यादाकी रक्षा करें हैं तौ हम लोगन कौ कितनौं उत्तरदायित्व बनै है, अपने वेषकी पूरी-पूरी रक्षा करिवे कौ। अर्थात् हमारौ पूरौ-पूरौ उत्तरदायित्व है।

प्रेम-पथमें दो बात परम आवश्यक है—

(१) प्रेमी कौ संग और (२) सतोगुणी आहार—यदि ये प्राप्त हैं तौ उत्थान शीघ्र है जाय।

यदि उत्थान चाहै तौ अपने सिर पै कोई भार न राखै, ताकि बाकौ चिन्तन करनौं परै।

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय॥

अहंकार, क्रोध, अपमान तथा ईर्ष्या—ये हैं पतनके कारण। आज ये ही रह गये हैं। हम इनसौं सावधान रहैं। अपने जीवनमें ये न रहन पावैं। भजन भले ही कम बनै तौ कोई बात नहीं, किंतु अपने जीवनमें ये न रहन पावैं। आज गुरु-भक्तिके बहाने सौं अन्य सब संतनकौ भरिपेट अपमान कियौ जाय है, हमारे द्वारा यह न हौन पावै। हमारे ताँईं तौ सब ही पूज्य हैं। वेषधारीमात्र हमारे पूज्य हैं। वाही कौ यह फल है कि आज भारतभरके संतनकी कृपा प्राप्त है।

'जग हित निरुपधि साधु लोग से॥'

साधुकी शोभा और कल्याण है साधुतामें, रहनीमें। कछु तौ या अभावमें उलझे परे हैं कि आज कहाँ खामिंगे। कहाँ पीमिंगे और जो कछू बड़े हैं, वे सम्मान तथा धन बटोरिवेमें तथा आश्रम बनायवे (**ऐश्वर्य**)-में अटक गये हैं। हम सावधान रहैं कि मात्र साधुवेषमें ही न रह जायँ। आजकल ईर्ष्या-अहंकार बढ़ि रहे हैं। हममें ये न हौन पावैं। साधुसौं सबकौ हित ही होय है। काहू कौ अहित है ही नहीं सकै।

कितनौं ऊँचौ वाक्य है—

'नहिं कछु भय न दीनता आई॥'

श्रीलोमशजीने शाप दै दियौ, किंतु (**निर्भरता इष्टके मंगलमय विधान पै**) नैंकहू भय नहीं, दीनता नहीं, क्योंकि मैं कौआ बन्यौ हूँ, कौनके ताँईं? श्रीरामके ताँईं। कितनी छाती है इनकी? कितनौं साहस है इनकौ? सार है यह कि अपने इष्टमें इतनी प्रगाढ़ आत्मीयता हौनी चहिए।

थानेदारके पास खड़े रहौ तौ साहस नहीं काहू कौ, चाहैं वह कितनौं हू प्रबल शत्रु क्यों न होय कि तुम पै प्रहार करि दे। ऐसैं ही सतत प्रियतमके पास बने रहौ तौ काहू विकार कौ साहस नहीं कि वह तुम पै धावा बोलि दे।

श्रीवसिष्ठजी कह रहे हैं कि ***'सौंपेहु राजु राम के आएँ।'*** राजमाता कौसल्याजीने तौ यहाँतक कह दयी कि बेटा भरत!

यदि तुम राज-काज सँभारि लेउगे तौ मेरे सब दुःख दूरि है जायँगे। मैं यही जान लूँगी कि मेरौ राम ही राजा है गयौ है और सब पुरवासी मन्त्रीनने हू याही कौ अनुमोदन करि दियौ, किंतु श्रीभरतजी कह रहे हैं कि *'जाउँ राम पहिं आयसु देहू।'* इतनौ बड़ौ साम्राज्य। बाकूँ ठुकराय दियौ श्रीरामके ताँईं। तब श्रीरामजीने कही—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥

यह बात कब बनी, जब अपनौ सर्वस्व श्रीरामके ताँईं त्याग दियौ।

साधक वहाँ रहै, जहाँ भोग्य पदार्थन कौ बाहुल्य न होय। **(तप, त्याग)** पूर्ण वैराग्य सौं रहै।

—कामना कोई हो न।

—पूर्ण श्रद्धा होय।

—फिर कहुँ प्राप्त है जाय संत-सेवा, बस, है गयौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार।

श्रीअक्रूरजी जब ब्रजमें आये, तब जो-जो संकल्प मार्गमें करते आये, वे-वे ही ब्रजमें आयकैं प्राप्त भये। ऐसें ही साधककी रहनीमें केवल वहाँके ही संकल्प हौने चहिए,जहाँ जानौं हैं। अन्तमें वे ही प्राप्त हौयँगे, जैसें अक्रूरजी कूँ प्राप्त भये। पीछैं चलिकैं श्रीशुकदेवजीने यहू कह दियौ है कि हे राजन्! जो इनमें ही लगे रहैं हैं, तत्पर रहैं हैं, उनके तौ इतर संकल्प बनैं ही नहीं हैं। अपने कूँ प्रेम-पथ कौ पथिक मानैं हैं तौ हमारी रहनीमें प्रेम-ही-प्रेम हौनौं चहिए। काहू कूँ देखैं तौ प्रेम सौं। काहू कूँ छूवैं तौ प्रेम सौं। काहू कूँ बोलैं तौ प्रेम सौं। कटुता, कठोरता, रूक्षता छू न जाय। प्रेम-ही-प्रेम होय तौ शीघ्र प्रेम प्राप्त है जायगौ।

आज माह पूर्ण, वर्ष पूर्ण है गयौ तौ हमहूँ आज सौं अभ्यास बनावैं कि हमारे जो काम हौयँ, वे सब पूरे मन सौं पूरे हौयँ। अपने मन, बुद्धिकी एकहू नहीं सुनै। एक रहस्यकी बात है, हमारौ लक्ष्य है प्रेम। जो यामें सहायक होयँ वे सब पकरने हैं। बाधक होयँ उनकूँ छोड़नौं हमारौ परम कर्तव्य है। सतत अपने लक्ष्यकी ओर ही बढ़ते चलनौं। साधन श्रीसद्गुरु-निर्दिष्ट होय। यथा—

'तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।'

(गीता १०। १०)

और होय केवल इनके ताँईं। तौ कोई रोकि नहीं सकै, एक ही जनममें बेड़ा पार।

ब्राह्मणके चार सद्गुण-पालन करि लैवे पै ब्राह्मणत्व ठीक-ठीक सिद्ध होय है—

विद्या—अपने अध्ययन सौं प्राप्त करी भई।

तप—प्रकृतिके व्यवहार कूँ सहन करनौं।

त्याग—संग्रह न हौन पावै काहू वस्तु कौ।

संयम—वाणी, नेत्र, कर्ण और समस्त इन्द्रियन कौ। बौलनौं, देखनौं, सुननौं, खानौं, पीनौं आदि-आदि सबकौ पूर्ण संयम।

भगवान् श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणजी कूँ भगवान् श्रीशंकरजीके पास भेज्यौ कि पूछिकैं आऔ वैराग्य का वस्तु है? श्रीलखनलालजी वहाँ पहुँचे तौ का देख्यौ कि भगवान् श्रीशंकरजी अपनी जिह्वा और उपस्थ कूँ पकरिकैं नृत्य करि रहे हैं। या दृश्य कूँ देखिकैं श्रीलखनलालजी बिना कछु कहे-सुने उल्टे पाँव ही वापस लौटि आये। भगवान् श्रीरामजीने ग्लानि सौं भरे श्रीमुख अपने अनुज श्रीलखनलालजी सौं पूछी कि क्यौं भैया लखन! का बात है? ऐसौ और तरह कौ मुख क्यौं बनाय रहे हौ? तुम्हारे प्रश्न कौ उत्तर आशुतोषने नहीं दियौ है का? मोकूँ बताऔ का बात है?

तुम ऐसे खिन्न मन काहे कूँ है रहे हो? प्रभुके पूछिवे पै श्रीलखनलालजीने सबरौ आँखिन देख्यौ हाल ज्यौं-की-त्यौं कह सुनायौ। सुनिकैं प्रभु बोले कि यही तौ उत्तर है तुम्हारे प्रश्न कौ। जानैं अपनी जिह्वा और उपस्थ कूँ संयत करि लियौ, वही सच्चौ वैरागी है। जो उपस्थ कूँ वशमें करनौं चाहै और ब्रह्मचर्यकौ पालन करनौं चाहै, वह अपनी जिह्वाकौ संयम अवश्य ही करै। बिना जिह्वाके संयमके उपस्थकौ संयम सम्भव ही नहीं। तेल, गुड़, खटाई, लाल-मिर्च—ये सब ब्रह्मचर्यके महान् घातक हैं। धातु कूँ तरल बनाय देयँ हैं। जिनकूँ बाल्यकाल सौं इनकौ सेवन करायौ जाय है, उनके ब्रह्मचर्यकी दुर्दशा होय है। सबकौ संयम ठीक तथा सब काम नपे-तुले हौने चहिए। आजकल एक नयी प्रथा प्रारम्भ है गयी है सिद्ध बनिवे की। जो मिल्यौ सो खाय लौ, जो मिल्यौ सो पहरि लौ, जो चाह्यौ सो बोल दियौ। साधक तौ हैं ही नहीं। अपने जीवनमें यह न हौन पावै। सावधान! सतत सावधान रहकैं अपने कूँ ही देखते रहैं।

बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। कलियुगकी पूरी चाल है या पथ पै।

आजकल सुख, आराम, वैभव आदि-आदि सबनकी तैयारी यहाँकें ताँईं ही है। का छोटे, का बड़े, निन्दा नहीं करि रहे हैं। ऐसैं ही धीरें-धीरें देहाध्यास बढ़ि जाय है। तत्त्वकी बात है एक—अन्त:करण एकदम खाली इनके ताँईं।

उदाहरण दियौ वंशी कौ—

'कैरैं धाम वास और सोचैं बाहर की।'

जो अपने कर्तव्य-पालनमें दृढ़ हैं, प्रमाद नहीं, उपेक्षा नहीं। पूर्ण सत्यता है, पूर्ण तत्परता है, तौ ये जो करैं, प्रचार हू करनौं चाहैं तौ कछु लाभ है सकै। अन्यथा नहीं।

साधनमें प्रमाद न हो, उपेक्षा न हो, आलस्य न हो, पूरी सत्यता एवं पूरी तत्परता सौं होय, इनके ताँईं होय, कामना कछु होय न और काहू संतके द्वारा दियौ होय। तब तौ चाहे कहूँ रहौ, आगेकौ, अबकौ, लोक, परलोक, सब स्वत: सँभरि जायगौ। यह अपनौं अनुभव है।

खूब खायले, सोयले, पर ध्यान रहै—जब भजनमें बैठै, तब नींद नहीं आनी चहिए। वा समय पूर्णसत्त्वकी बाढ़ और प्राणनाथकौ सांनिध्य होनौं चहिए। विशेष सावधानीकी आवश्यकता है कि भजनके समय जो कामना होयगी, वह पूरी होय है। यासौं कोई संसारी कामना न रहै। उपासना-पद्धति यह है कि सब कछु इनके ताँईं या पथमें आदर्श है पतिव्रता। सब कछु इनके ताँईं, यह है प्रेम। अपने ताँईं कछु नहीं, ये है त्याग। अपने ताँईं कोई कामना नहीं, यह है वैराग्य। अपने ताँईं केवल एक ये भगवान्। बड़ी सावधानी सौं यह देखतौ रहै कि अपनौं सब कछु इनके ताँईं है हू या नहीं।

जा काहूने कछु पायौ है, वह अपने कूँ सर्वथा खोयकैं ही पायौ है। एकके पीछैं लगि जाय, बस। मनकूँ सँभारै। जैसैं एक स्यानी कन्या कूँ माँ काहू सौं बात करती देखिले, तौ फटकारै है कि तू कैसैं वासौं बोली? तू कैसैं वहाँ गयी? वैसैं ही जब मन अन्य चिन्तन करै तौ याकूँ फटकारै और वहाँ सौं हटायकैं एक जीवन-सर्वस्वके पीछैं ही लगाय दे। यही है साधक, जो सतत इनमें ही लग्यौ रहै। यदि सत्यता सौं प्रपंचरहित भजन बनि जाय तौ सब स्वत: ही सँभरि जायगौ।

हमारे श्रीसद्गुरुभगवान्ने एक दिन हाथरसमें हमसौं कही कि पण्डितजी! 'राग-द्वेषसे बचते रहना'। या वाक्यकौ ही परिणाम है, आज जो कछु मिलनौं हो, मिलि गयौ। चिन्तन कौ मूल है,

राग-द्वेष। मनकूँ त्याग-वैराग्य सौं इनमें लगायवेकौ पूरौ प्रयास करै। फिर तौ सब अपने-आप ही छूट जायगौ। चिन्तन करै कि जैसौं प्रारम्भमें अपनौं उत्साह और वैराग्य हो, वैसौं आज है अथवा नहीं। यदि पूर्वकी अपेक्षा कमी आय रही होय तौ सतत बढ़ातौ ही रहै।

'या पथमें मूल है चिन्तन' जीव यदि अपने काममें पूरी सत्यता बरते, जो काम हो पूरी सत्यता, पूरी लगन सौं पूर्ण हो तौ कछु ही दिननमें इनके पायवे कौ अधिकारी बनि जाय है। किंतु जीवके काम सब अधूरे ही हौयँ हैं। अभ्यास करै, जो काम उठावै बाकूँ सत्यताके साथ पूर्ण करै। यह सब तब बनैगौ, जब प्रेम-प्राप्तिकी उत्कट लालसा होयगी। उत्कट लालसा तब बनैगी, जब काहू प्रेमी संतकौ संग और सेवा निष्काम बनैगी।

प्रश्न—नाम-जपकी कौन-सी विधि है, जौ शीघ्र श्रीजीवनधन सौं मिलाय दे।

उत्तर—प्रथम नाम-जप हो, ध्वनिके साथ। श्रवण सुनैं, साथ ही इनकौ चिन्तन हो, संसारकौ चिन्तन न हो, कामना कछु न हो, यदि कामना होय तौ केवल एक कि—श्रीजीवनधन! कब ऐसौ दिन आवैगौ, जब मैं आपके प्रेममें डूबि जाऊँगौ। प्रथम अभ्यास करै या प्रकार। निरन्तर यह क्रम चलै तौ फिर प्राप्त होय है, वह स्थिति जो अन्तिम है।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

(रा०च०मा० २। ३२६। १)

दया—काहूँ कूँ दुःखी देखिकैं हृदय सहन नहीं करि सकै अर्थात् हृदयकौ पिघल जानौं।

कृपा—बाकूँ सेवाके ताँईं अपने पास उठाय लानौं।

अनुग्रह—अपनी भाँति बाकी सार-सँभार करनौं।

आत्मीयता—बाकूँ अपनेमें मिलाय लैनौं।

जो बात कही जाय, वह स्वभाव बनि जाय।

—स्वभाव सौम्य बनै।

—सहनशील बनै।

—अहंकार न हौन पावै। अहंकार होय है, अपने त्याग-वैराग्यसौं। भड़कि न उठै, नहीं तौ कियौ-करायौ सब साफ है जायगौ। शान्त! सौम्य!! सहनशील!!!

यदि संसार कूँ रिझायवेकी कामना बनी तौ कोई बन्धन फट् सौं आयकैं लगि जायगौ।

यहाँके और वहाँके दोऊ न्यायालयन सौं बचै। बचैगौ तब ही जब प्रत्येक काम इनके सम्मुख हौयँगे।

लखपति बननौ चाहै और दूकान खोलै परचूनियाँ की। ऐसैं ही रहनी दुर्बल और ओच्छे बिचारनमें ही अटके रहे तौ वस्तु हाथ नहीं परैगी। आज एकादशी है, सदैव ऊँचे विचार, ऊँची क्रिया, ऊँची रहनी, ऊँची, ऊँची, ऊँची····।

श्रद्धामें वह शक्ति है कि प्रेमदेवतक कूँ खैचिकैं लै आवै है। यासौं श्रद्धाकौ दृढ़ आश्रय ही बन्यौ रहै मरण-पर्यन्ततक। तब ही वस्तु हाथ परैगी, जब कहूँ गहरी श्रद्धा होयगी।

एक बात बड़े ही कामकी है, चाहौ तौ आजकी मितीमें लिख लीजौ।

अहंकार न उपजन पावै। यदि ये आयौ तौ असूया, ईर्ष्या, घृणा तथा राग-द्वेष आदिक समस्त विकार आय जायँगे। दोऊ लोक स्वाहा है जायँगे। यासौं सावधान रहैं। जीवनभर ध्यान रहै। जीवनमें दम्भ छू न जाय।

जब-जब एकान्तमें बैठैं, तब-ही-तब यह देखैं कि हम का चिन्तन करैं? हमारौ मन का चाहै। यह तत्त्व है, मर्म है अध्यात्मकौ।

हैं। तीर्थ, व्रत, नाम-जप, संत-सेवा—सब भजन है।

—वह वासना कैसी, जो पाप न करावै? और

—वह उपासना कैसी, जो श्रीभगवान् सौं न मिलावै?

—विषय-चिन्तन सौं हटाय कैं संत और श्रीभगवान्के चिन्तनमें लगायवे सौं, मन शुद्ध होय है।

—हित, मित, सत्य और मधुर भाषण सौं तथा हरि गुणगान करिवे सौं, वाणी शुद्ध होय है।

—प्रतिग्रह (दान) न लैवे सौं तथा शुभ कर्म करिवे सौं, हाथ शुद्ध हौय है।

—सरल और निष्कपट व्यवहार करिवे सौं, चित्त शुद्ध होय है।

वैर और वासना—ये दोऊ उपासना सौं विमुख करैं हैं।

अपनी बुद्धि कूँ तोरि-मरोरिकैं कुआँमें डारि देय।

यदि आसक्ति किये बिना न रह्यौ जाय तौ आसक्ति करै केवल श्रीभगवान् और श्रीसंतमें।

उपासनामें प्रधान है श्रद्धा और ज्ञानमें प्रधान है वैराग्य।

अपने संकल्प कूँ शिथिल मत बनाऔ। दृढ़ संकल्प सौं सब कछु है सकै है।

प्रश्न—भक्तिमें विघ्न का है?

उत्तर—विघ्न तौ अनेकन हैं, तथापि श्रीभगवत्-चिन्तन छोड़िकैं दूसरी वार्ता करनौ, यह प्रधान विघ्न है। अन्य क्रियान कौ तौ कहनौ ही का है?

उत्तम भजनकी प्रणाली तौ यही है कि काहूकी निन्दा-स्तुति न करै।

परमार्थपथमें परम सहायक है, श्रीभगवन्नाम। बड़ौ बाधक है यह शरीर अर्थात् शरीरके सुखकी इच्छा।

संयमरहित जीवन व्यर्थ है।

विषय-चिन्तन करनौं, मनकूँ आहार दैनौं है।

यदि संस्कारवश शरीरमें रोगादिक है जायँ, तौ याकूँ श्रीभगवत्कृपा ही मानै।

जहाँ ताँईं है सकैं सहन करै, तितिक्षा करै, कोई कितनौं हू कष्ट देय, आनन्दपूर्वक सह लेय।

कितनौं हूँ चमत्कार होय, किंतु अपने लक्ष्य सौं नहीं हटै।

जब श्रीभगवान्में पूर्ण प्रेम है जायगौ, तब संसार तुम्हारे अधीन है जायगौ।

अपने कूँ सबसौं छोटौ समझनौं चहिए।

काहूके विषयमें विचार करनौं बाकौ संग करनौं है।

सगरौ अभ्यास मनसौं सम्बन्ध राखै है। केवल शारीरिक श्रम सौं लाभ नहीं।

जाकी वाणीमें कटुता और मनमें चंचलता तथा उद्वेग है, वह अभ्यासी नहीं मान्यौ जायगौ।

संसारी कोई कामना मनमें न राखै। माया तौ या ताकमें बैठी ही रहै है कि ये साधक कछु चाह करै और मैं वाकूँ पूरी करूँ। चाह पूरी हैवे सौं साधन खर्च है जाय है। **कामना होय तो केवल श्रीभगवत्प्रेमकी।** अपनी ओर सौं कोई कमी न बनै। जहाँतक है, हम चूकैं हैं। श्रीभगवान् तौ चूकनौं जानैं ही नहीं हैं। हमारी चूक हमें रोकि देये है। लगन बढ़ै तौ कोई रोकि नहीं सकै। इनमें विश्वास न घटै। पूर्ण विश्वास रहै कि श्रीभगवान् मोकूँ अवश्य ही मिलिंगे।

प्रश्न—श्रीभगवत्कृपा का वस्तु है? यह कैसैं प्राप्त होय है?

उत्तर—कृपामें तुम्हैं अबहूँ कमी दीखै है का? पशु न बनाये, मनुष्य बनाये, यह कृपा है। दूसरे देशमें जन्म न दियौ, भारतमें ही जन्म दियौ। श्रीरामायणजी, श्रीभागवतजी, श्रीगीताजी,

वेद, पुराण, उपनिषद्, अवध, व्रजादिक धाम प्रदान करि दिये। संत-महापुरुषन कौ निःशुल्क निर्विवाद सत्संग प्रदान करि दियौ। कृपामें कमी कहाँ है? कमी है तौ हमारी ही। इतनी कृपा भई है, जाकूँ सँभारि लेंगे तौ और हू कृपा होयगी। नहीं सँभारिंगे तौ लौटि जायगी। उदाहरणके ताँईं—जैसें हम नित्य नये घरमें प्रसाद पायवे जावें हैं। वे लोग विचारे कितने परिश्रम सौं भोजन बनावें, पत्तल पै परोसिकें, बड़ी विनम्रता सौं अपने हाथ जोरिकें, हमसौं प्रार्थना करें हैं कि पाओजी और हम न पावें तौ का होयगो? दुबारा नहीं बुलायिंगे। यही बात कृपाकी है। जितनी कृपा आज है, याकौ सदुपयोग करि लिंगे तौ और कृपा हौयगी। यदि सदुपयोग न करें तौ और कृपा नहीं हौयगी। एक अपराध बन्यौ—कृपा आयी और हमने ठुकराय दई, यह अपराध है गयौ अब बनौ पशु, घूमौ लख चौरासीनमें। यासौं सावधानी सौं कृपाकी पूरी सँभार करै और धन्यवाद दे ईश्वर कूँ कि इतनी कृपा दै दई, बलिहारी प्यारे!

भरी भई पत्तल हमारे सम्मुख धरी है, खायवेकी बात न करिकें हम कहें कि और लाओजी तौ वे काहे कूँ दिंगे। कहिंगे कि पहलें जाय तौ खाय लेउ। यदि हम खाय लिंगे तौ ये अपने-आप ही परोसिवे कूँ लामिंगे, इतनौं परोसिंगे कि नाकतक भरि दिंगे। साचौ! कृपा कूँ कैसें सँभारें। एक करोड़पति काहू निर्धन कूँ सहसा एक लाख रुपया दै दे तौ वह यही सोचैगौ कि मैं या राशि कूँ कहाँ धरूँ? यदि जहाँ-तहाँ पटकि दे तौ बाकी सँभार कब होयगी? जैसें संसार प्रधान है, वैसें ही भजन हूँ प्रधान बनि जाय, तब काम बनै। भूल यह बनैं है कि हम भजन हू संसारके ताँईं ही करें हैं। याही कौ परिणाम है कि न शान्ति है, न संतोष है और न श्रद्धा है, न भाव है।

प्रश्न—प्रभुकी ओर जायवेकौ उपाय का है?

उत्तर—संसार कूँ कछु ढीलौ करनौं परैगौ। यदि संसार ही मुख्य रह्यौ तौ फिर भजन कूँ चाट जायगौ। जैसें जुखाम-खाँसीमें पौष्टिक आहार दूध, दही, मेवा सब कफ ही बढ़ावें हैं, ऐसें ही यदि मनमें संसारकी प्रधानता है तौ सबरी साधना संसार ही बढ़ायवेमें खर्च हौंती रहैगी। जितने श्रीभगवान्‌की ओर झुकते जायँगे, उतनी ही शान्ति, संतोष, प्रसन्नता तथा आनन्द आवेंगे ही। भारके पास बैठिकें देखि लेउ और श्रीगंगातट पै बैठिकें देखि लेउ कि शीतलता कहाँ है? संसार भारके समान है और श्रीभगवान्‌में डूबनौं श्रीगंगातटके समान है। प्रभुकी ओर जायवेकौ उपाय यही है कि अपने समय, वाणी और विचारन कूँ अधिक-सौं-अधिक श्रीजीवनधनमें लगायवेकौ ही प्रयास करतौ रहै।

प्रश्न—दासभावमें वृद्धि कैसें होय?

उत्तर—नौकरी करें तौ यह ध्यान राखनौं परैगौ कि स्वामी जो काम बतावै वाकूँ ज्यौं-की-त्यौं मान लैनौं। जाके करिवे सौं स्वामी प्रसन्न होय, वही करनौ। याही भाव कूँ इसमें लगाय दे। जाके करिवे सौं अपने श्रीप्राणनाथ प्रसन्न होते हौयँ, वही करनौं, वही कहनौं, वही विचारनौं। येन-केन-प्रकारेण अपने श्रीप्रभु कूँ प्रसन्न करिवेकौ प्रयास करते रहवे सौं ही दासभावकी वृद्धि होय है।

ये कलियुगके स्वरूप हैं। मैंने या युगकौ नाम अपराधयुग धरि दियौ है। या समय बड़े-सौं-बड़े साधक ईर्ष्या, असूया, घृणा, द्वेष, आसक्ति, उपेक्षा, निन्दा तथा स्वार्थ—इन अपराधन सौं नहीं बचि पावें हैं।

अहंकार आदि-आदि अपराधके कारण हैं। प्रत्येक काम

करिवे सौं पूर्व यह देखि लेय कि यामें कछु श्रीभगवत्सम्बन्ध है या नहीं। यदि प्रत्येक काम श्रीभगवत्सम्बन्ध सौं होयवे लगैं, तौ प्रपंच छूटि जाय है।

शान्त रहवेकी युक्ति—

१-संसारी कामना कूँ प्रारब्ध पै छोड़ि देय।

२-अपने कर्तव्यकौ पूरी सत्यता सौं पालन करतौ रहै।

३-सुख-दुःखादि आवें उनकूँ भोगतौ चलै।

४-अपनौं भजन-साधन नित्य-नियम सौं करतौ रहै।

५-कबहूँ काहू कौ तिरस्कार न करै।

६-आवश्यकतानुसार बोलिवेके अतिरिक्त निरन्तर नाम-जपकौ अभ्यास करतौ रहै। नाम-जपमें मन न लगै तौ कछु काल विनय और प्रेमके पद-गायन करि लेय।

७-प्राण जायवे पै हू असत्य न बोलै। यदि सत्य बोलिवे पै काहूकी हानि हौंती दीखै तौ चुप है जाय।

८-कबहूँ क्रोध न करै। यदि काहूके प्रति क्रोध आय जाय तौ शान्त हैवे पै विनम्र हैकैं क्षमा माँगि लेय। भले ही नीच-सौं-नीच ही क्यौं न होय?

सबरे भक्ति-शास्त्रनकौ सार तीन बातनमें बाबा श्रीप्रियाशरणजीने बतायौ—

१-निरन्तर श्रीभगवन्नाम-जप (नाम-निष्ठा)।

२-श्रीभगवज्जनमें ममता (संत और श्रीसद्गुरुमें)।

३-श्रीभगवद्धाममें निष्ठा।

यदि जीवनमें बड़ेनकी निष्कामभाव सौं सेवा बनि जाय तौ श्रीभगवच्चिन्तन तौ स्वतः होयगौ ही।

श्रीभगवज्जन, श्रीभगवन्नाम एवं श्रीभगवद्धाममें हम सर्वप्रथम श्रीभगवज्जनमें श्रद्धा कूँ ही मानैं हैं। यदि श्रीभगवज्जनमें पूरी श्रद्धा

होयगी तौ उनकी कृपा सौं श्रीभगवन्नाम और धाममें निष्ठा तौ है ही जायगी। श्रद्धाके द्वारा सब कछु स्वतः ही सुलभ बनि जाय है।

एक सिद्धान्त है—जब दुःख आवै, तब चुपके सौं अपने प्रारब्धकौ भोग जानिकैं सह लें, काहू कूँ सुनावै नहीं और जब सुख आवै, तब प्रभुकी दई भई वस्तु जानिकैं सबकूँ बाँटि दे, अकेलौ नहीं भोगै।

जब साधक श्रीभगवत्-मार्गकी ओर बढ़ैगौ, भजन-साधन करैगौ तौ भोग्य तौ आवैगौ ही। भोग्य कूँ भोगि लेय, परंतु रुकै नहीं अर्थात् कबहूँ-कबहूँ बढ़िया भोजन अनायास ही प्राप्त है जाय है।

प्रशंसा बढ़ि जाय है। लोग दर्शन करिवे आवैं हैं। भरपेट मान-प्रतिष्ठा मिलै है।

भाँति-भाँति सौं सेवाके बहाने द्रव्य-संचयकी स्थिति हू उपस्थित है जाय है। इनके मिलिवे पै इनमें अटकै नहीं। इनकी प्राप्तिकी तनक हू चाह न करै। जहाँ प्रकाश होय हैं, वहाँ पतंगा तौ आवैं ही हैं। जब पुष्प सुगन्ध सौं महकिवे लगै है, तब भौंरा आय ही जाय हैं। श्रीभागवतजीकौ सिद्धान्त है—

'भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।' (श्रीमद्भा० १०। १४। ८)

अर्थात् किये भये सुकृत-दुष्कृतनकौ फल भोगते भये आगे बढ़े चलौ। श्रुति है—**'चरैवेति, चरैवेति, चरैवेति।'** आगे बढ़ौ, आगे बढ़ौ, आगे बढ़ौ।

'उदयानं पुरुष ते नावयानम्।'

माडव पन्या—नीचे मत गिरौ, रुकौ मत।

आज हमें खयाल भयौ है कि भाग्य का वस्तु है? भाग्य है करणीकौ फल और करणी है अपने हाथमें। जो सुकृत-दुष्कृत करिंगे सबकौ फल तैयार है। बड़ी सावधानी सौं चलै। अनुचित

कर्म न बनन पावै। आज जो है, ये हू काहू कर्म कौ फल है और आगे जो होयगौ, वो हू काहू कर्म कौ ही फल होयगौ। भोगनौं अवश्य ही परैगौ। या सिद्धान्त सौं तौ कर्म ही प्रधान है। जीवकी तौ बात ही छोड़ौ स्वयं श्रीसीताजीने हूँ जब अपने पतिदेव भगवान् श्रीराम कूँ आज्ञा दई कि—

'एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥'
'आनहु चर्म कहति बैदेही॥'

(रा०च०मा० ३। २७। ४-५)

तौ परिणामका भयौ? दस मास बीस दिन रावणके यहाँ रहनौं पर्यौ। अर्थात् पतिदेव कूँ और आज्ञा। जबकि पातिव्रत-धर्मके अनुसार पत्नी कूँ पतिकी छायाके अनुसार ही चलिबे कौ अधिकार है। न अपनौं स्वतन्त्र कोई विचार, न क्रिया और ये जगज्जननी का करि बैठीं। ताकौ फल सबके सामने है। दूसरौ उदाहरण है—जब स्वायम्भुव मनु और श्रीशतरूपाजीने आराधना करी तौ मनुजीने इनसौं इनके ही समान पुत्र पायवेकौ वरदान माँग्यौ। इननें फिर श्रीशतरूपाजी सौं हूँ वरदान माँगिवेकी बात कही, श्रीशतरूपाजीने हूँ वरदान माँग्यौ। माँग्यौ तौ बहुत ही उत्तम, परंतु माँग्यौ पतिदेव सौं भिन्न—

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

मनुजी बने महाराज श्रीदशरथजी और श्रीशतरूपाजी बनी महारानी श्रीकौसल्याजी। साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम नारायणकी माँ और फिर विधवा? हमेशा बड़ौ ही विचारि कैं काम करै।

सतत जागरूकता ही जीवन है। कर्म करनौं अपने हाथमें है और फल दैनौं इनके हाथमें है। जैसें पत्नी शास्त्रानुसार एक

क्षणहू स्वतन्त्र नहीं रह सकै है, ठीक वैसें ही साधकहू अपने परम श्रद्धेय श्रीसद्गुरुभगवान्की आज्ञा सौं एक क्षण हूँ विमुख नहीं रह सकै है। शिष्यकौ अनायास ही परम कल्याण श्रीसद्गुरुकी छाया बनिकैं चलिवेमें है अपनौ स्वभाव सुधारै। याकौ सुधारनौं ही कठिन परै है। घरकौ स्वभाव यदि यहाँ हू वन्यौ रह्यौ तौ धामवाससौं का लाभ? काहूकौ अपमान, अनादर, उपहास, उपेक्षा, निन्दा, ईर्ष्या और द्वेष न करै। हमेशा सावधान ही रहै। जाति, कुल, धन, बल, रूप, स्वस्थता, चतुरता और भजन-साधनके अहंकारमें अपराध न बनि जाय। सबसौं प्रेम, आत्मीयता, सौहार्द, उदारता, करुणा, हितैषिता, सद्भावना, सेवा, विनम्रता, दया, कोमलताकी वर्षा होती ही रहै। हृदयमें संवेदनशीलता, परदु:खकातरताकी मीठी-मीठी टीस मारती ही रहै। मुखपै सतत शान्ति, सौम्यता, प्रसन्नताके चिह्न अपनी अनोखी छटा वर्षाते ही रहैं।

'सबहि मानप्रद आपु अमानी।'
'सब के प्रिय सब के हितकारी।'

(रा०च०मा० ७।३८। ४; २। १३०। ३)

आजकल साधक साधन-भजन तौ करि लेय है, परंतु उत्तम जीवन नहीं बनाय पावै है। उत्तम जीवनकी पहचान है, सतत उत्तम विचार ही उठते रहैं। यदि संसारमें मानव-शरीर पायकैं उत्तम जीवन न बन्यौ तौ विषयाभिमुख बुद्धि पाप ही करावती रहैगी। परिणाममें नरक ही भोगनौ परैगौ। कामनापूर्वक कियौ भयौ भजन वा कामनामें ही खर्च है जाय है। कामना बनै है स्त्री, धन, पुत्र, वैभव, मान-प्रतिष्ठा, शारीरिक सुख आदिकी। बस इनमें ही अटक जाय है। कामना हू न बनै तौ अपने भजन-साधन और सद्गुणनकौ नशा (अहंकार) है जाय है, यासौं वह अपने

कूँ कछु मानि बैठे है और दूसरेन कूँ उपेक्षा, घृणा, हेयता, न्यूनताकी दृष्टिसौं देखिवे लगि जाय है। दूसरेनके दोष देखिवेमें ही अपनौं अधिकाधिक समय खर्च करि डारै है। परदोष देखिवेकी दृष्टिसौं फिर अपने दोष दीखैं ही नहीं हैं और या प्रकार साधन पतनकी गहरी खाईमें जाय गिरै है।

आजके दिन लाखन रुप्यानकौ दान है जायगौ भारतमें। ऐसें ही हमारे यहाँ हूँ अपने समस्त विकारनकौ दान दे दियौ जाय संसारकूँ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, ईर्ष्या, राग, द्वेष, हिंसा, अहंकार, छल तथा कपट जितने हू विकार हैं, आजके पश्चात् अपने तन-मन-वचनकूँ हूँ छू न जायँ। ये तौ संसारमें रहैंगे ही, परंतु अपने ताँईं नहीं। जब-जब ये अपने तन-मन-वचनमें प्रवेशकी चेष्टा करैं, तब-ही-तब इनसौं सावधान रहै और अपने मनसौं कह दे कि हम तौ इन सबनकौ संक्रान्तिमें दान करि चुके हैं। दान करी भई वस्तु कबहूँ वापस नहीं लई जाय है या प्रकार अपने मनकूँ समझायकैं अपने-आपकूँ बचायले।

अवसर मिलिवे पै यदि सँभार न भई तौ याद राखौ—कोई-न-कोई बन्धन आयकैं लगि जायगौ। यासौं चूकै नहीं। जो अवसर आज मिल्यौ है, बाकी पूरी सँभार करै। बुलायकैं स्वयं श्रीमुखसौं आज्ञा करी कि कहुँ लिखि लीजौं।

आज एक बात स्मरण है आयी····ये गृहस्थ हैं न? ये तौ अपनौं सीमितमें ही काम चलाय लेयँ हैं। यदि वस्तु न होय तौ वैसें ही रह जायँ हैं। परंतु साधु तौ काहूसौं आज्ञा करि दई कि चाहैं जितनी वस्तु तुरंत आय जाय है। कलियुगने हू प्रतिज्ञा करि लई है कि साधु भले ही कितने हू है जायँ, परि साधुता नहीं रहन दूँगौ। सर्वत्र साधुता जाय रही है। रहनी जाय रही है। याद राखियौं—'तुम जुरौ संतसौं। संत जोरिंगे तुम्हैं श्रीभगवान्सौं।' चाह है और प्रयत्न नहीं करौगे तौ यह ईमानदारीकी बात नहीं है।

सुख देवैकी वस्तु है और दुःख सहवेकी। मान दैवेकी वस्तु है और अपमान सहवेकी। ये है परमपदकौ सूधौ मार्ग। लालसा ही न भई तौ वह भजन कैसौं।

घर में बन में पंथ में, कहूँ रहै यह देह।
तुलसी सीताराम सौं, लाग्यौ रहै सनेह॥

एकहू क्षण व्यर्थ न जाय। सदैव इनके पास ही रहै।

याकौ तात्पर्य यह है कि—नाम-जप, पाठ, चिन्तन, इनकूँ ही बोलनौं, सुननौं आदि।

याद राखो—जो हम करैं, विचारैं, सोचैं, कहैं, देखैं, सुनैं, प्रभु सब देखि रहे हैं। सब कछु इनके सामने ही होय। यासौं पाप तौ है ही नहीं सकैं। साधककौ साधनके विमुख एकहू क्षण व्यर्थ जानौं पाप है।

भूल सौं हूँ कोई ऐसौ काम न बनन पावै कि लोग ये कहैं कि देखौ! ये उनके शिशु हैं अर्थात् अपने श्रीसद्गुरुभगवान्कूँ कलंकित मत करियौं।

दो बात बड़े ही मर्मकी हैं—

(१) अपनी निन्दा सुनिकैं मनमें क्षोभ न होय।

(२) जहाँतक बनै सहनशील बनै।

अपनेकूँ सतत देखतौ रहै कि श्रद्धा, सेवा, साधन, त्याग, वैराग्य, प्रेम आदि श्रीभगवत्कार्यनके बहानेसौं हूँ हम काहू प्रपञ्चकी शिकार तौ नायँ बनि रहे।

जब चतुर्थी शनिवारकी होय तौ सिद्धयोग बनि जाय है। आजसौं प्रतिज्ञा बनि जाय कि वही देखिंगे, वही सुनिंगे, वही बोलिंगे, वही खामिंगे, वही विचारिंगे, वही करिंगे, वही छूमिंगे।

जौ इनके ताँईं होय और इनसौं मिलावै। छल-कपट-दम्भ छू न जाय। जौ होय पूरी सत्यतासौं होय। बाहर कछु और भीतर कछु, यह न होय। तब तौ जौ कोटिन कल्पनमें हैवे वारे काम हैं, वे सब एक क्षणमें ही है जायँगे।

जितने सद्‌गुण हैं, भक्तमें हौने चहिए।

जितने दोष, दुर्गुण, विकार, कामना हैं, समूल नष्ट हौने चहिए।

जीवन केवल जीवनधनके ताँईं, अपने ताँईं कछु न बचाय राखै। यामें पूरी सत्यता और तत्परता हौनी चहिए। साधक जितने अंशमें अपनेकूँ बचाय राखै है, उतने ही अंश मायाकूँ मिलि जायँ हैं।

अपनेकूँ बचनौं का है? बचनौं यही है कि हमारी यौं ख्याति है जाय, प्रतिष्ठा है जाय अर्थात् इनकी जगह संसारकौ चिन्तन करनौं ही अपनेकूँ बचानौं हैं।

पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण तत्परता, पूर्ण कामनानाश, पूर्ण पवित्रतम जीवन, पूर्ण वैराग्य, पूर्ण त्याग, अपने सब काम पूर्ण हौयँ। ऐसैं ही एक दिन पूर्ण करते-करते पूर्णमें मिलि जायँगे।

इनकौ ही चिन्तन, इनकौ ही ग्रन्थपाठ, इनकूँ ही कहनौं, इनकूँ ही देखनौं, इनकूँ ही सुननौं, अपनौं सब कछु इनकूँ ही रहै। अपने ताँईं कछु न रहै। यही है जीवन केवल श्रीजीवनधनके ताँईं।

आजसौं यह नियम बनि जाय कि जो कछु करिंगे केवल इनके ताँईं ही बस।

बड़े मर्मकी बात है एक—ईश्वर यह देखै है कि तुम मोसौं मिलवेके ताँईं कितने प्रयत्नशील हौ? कितने आतुर हौ? यह सबसौं ऊँची बात है। अब हमें चहिए कि हम निरन्तर इनके ताँईं ही जुटे रहैं। लगे रहैं। भजन, साधन, विचार, चिन्तन, सब इनके ताँईं ही हौयँ। अपनेकूँ बचाय न राखै।

प्रत्येक वाक्यकूँ प्रतिज्ञा करि-करिकैं पालन करै। क्योंकि प्रतिज्ञा एक बार करिवेके पीछैं अन्तिम स्वाँसतक तोड़ी नहीं जाय सकै।

अब दिन-प्रतिदिन बुद्धिकौ सुझाव यही है कि मरिवेसौं पहले कृपाकी पूरी सँभार करिलैं। सब सद्‌गुण अपनेमें भरिकैं अपनी रहनी बनायलैं। श्रीमद्भागवत (१०।७।१३)-में गुणोंमें दोष निकालना, झूठ बोलना, दम्भ, ईर्ष्या तथा हिंसा करना और अभिमान—इनकौ निषेध कियौ है—**'येऽसूयानृतदम्भेर्ष्या-हिंसामानविवर्जिताः।'**

जैसैं रहीसनके घर संसारकी ऊँची-सौं-ऊँची सब वस्तु विद्यमान रहैं हैं, वे ही रहीस माने जाय हैं। ऐसैं ही हम प्रेमपथके रहीस हैं तौ या पथके समस्त श्रीसद्‌गुण हमारेमें हौने ही चहिए, तब ही हम प्रेमपथके रहीस माने जायँगे। विकार हमारे ताँईं हैं ही नहीं। जैसैं प्याज-शराब आदि संसारमें तौ रहेंगे ही परंतु हमारे ताँईं नहीं। यौं पाठ सुनि लियौ, सत्संग सुनि लियौ, यासौं ही काम नहीं बनि जायगौ, वैसौं ही अपनेकूँ बनानौं परैगौ। संत मैकेलियसने अपने शिष्यकूँ शिक्षा दई कि जैसैं कब्रपै कोई माला-फूल चढ़ावे, पत्थर फैंके, गारी देय, प्रशंसा करै, अपवित्र करै या इत्र सुगन्धित पदार्थ डारै। यह प्रत्युत्तरमें कछु नहीं बोलैगी। ठीक वैसौं ही हमें अपने-आपकूँ बनानौं ही परैगौ। तब ही या पथकौ सच्चौ स्वाद मिलैगौ अन्यथा नहीं।

पोखरमें नहीं, तालाबमें नहीं। स्नान करै—त्रिवैणीमें अर्थात् दया, क्षमा तथा उदारताकी त्रिवैणीमें। तन-मनसौं इनसौं सराबोर है कै, फिरि बैठि जाय भजन पै। वोहू भजन होय केवल श्रीजीवनधनके ताँईं। तौ फिर का कहनौं?

जैसैं मन्दिरके पट खुलते ही पवित्र होयके द्विजातिमात्र

नि:संकोच चले जायँ, दर्शन करिवे कूँ, मनमें किंचित् हू झिझक नहीं होय है और जो अपवित्रावस्थामें रहे हैं, वे नहीं जाय सकैं। ऐसें ही अपने मन कूँ पवित्रतम बनावै, क्योंकि पवित्र मन प्रभुकी ओर चलिवेमें रुकै नहीं है, झिझकै नहीं है और पापी, दुराचारी, नीच मन प्रभुकी ओर चलिवेमें संकोच करै है, झिझकै है। यासौं समस्त सद्गुण अपनेमें धारण करै। श्रीरामचरितमानसमें जब ये श्रीवाल्मीकिजीके यहाँ पहुँचे हैं, तौ उनने चौदह स्थान इनके रहिवेके गिनाये हैं। सदैव अपने कूँ देखतौ रहै कि हम इन चौदहूनमें चलि रहे हैं या नहीं। क्योंकि ये चौदहहू जहाँ हैं, वहीं प्रियतम कौ निरन्तर निवास रहै है।

दया—याके दु:ख कूँ मोहि दै देउ और मेरे पुण्य याकूँ। ये बड़ौ ही दु:खी है। जैसें दल-दलमें फँसे भये एक सूअर कूँ लिंकनने निकारयौ। जायवे पैं लोगनने लिंकन सौं पूछी तौ बोले कि मैंने दया नायँ करी, मैंने तौ अपने मन कूँ शान्ति दयी है। ये है **दया।**

हम वैसें ही काम करें, जासौं मन कूँ शान्ति मिलै। सब सद्गुणन कूँ अपनेमें देखें। दुर्गुण एक न रहन पावै, जैसें हमारे यहाँ लहसुन, प्याज, शराब है ही नहीं। वैसें ही दोष-दुर्गुण विकार रहन ही न पावै। वास्तवमें यही है कृपाकी सँभार।

उदारता—भक्तराज श्रीअम्बरीषजीकी श्रीदुर्वासाजी सौं भेंटके पश्चात् भक्तप्रवर श्रीअम्बरीषजीने क्रोधित श्रीचक्रसुदर्शनजी सौं प्रार्थना करी कि—

यदि मेरे कछु सुकृत जमा हौयँ तौ आप शान्त है जायँ। शान्त नहीं भये।

यदि मोपै मेरे श्रीप्राणनाथ प्रसन्न हौयँ तौ आप शान्त है जायँ। तब शान्त भये। ये है उदारता। अब हमारे पै और कोई काम

तौ है ही नहीं। बस, अपने कूँ तत्त्वज्ञ बनानौं है। वस्तु है एक? काहूके इष्टमें हेय भाव नहीं। याही कूँ निरन्तर पीसनौं है।

हमसौं ये का चाहते। काहे सौं प्रसन्न और काहे सौं अप्रसन्न रहते। हमसौं जो ये चाहते जीवनपर्यन्त वही करते रहनौं, यही वास्तवमें गुरु-पूर्णिमा है। यही है हमारौ समर्पण और यही है हमारी गुरुदक्षिणा। जितने उदाहरण वेदशास्त्रनमें दिये गये हैं, उनमें है का? बस, अपने व्यवहार कूँ सुधारनौं। स्वभाव कूँ सुधारनौं ही तो है। जैसें श्रीप्रह्लादजी और श्रीअम्बरीषजी रहते, वैसें ही हम कूँ रहनौं चहिए। परमार्थकौ का सुधारनौं, ये तौ सुधरयौ भयौ है ही। सुधारनौं है अपनौं स्वभाव और व्यवहार।

इनके दर्शनके ताँईं नेत्रन कूँ पवित्र बनानौं है तौ नेत्रन सौं परदोष-दर्शन, स्त्री-दर्शन और क्रोधभरी दृष्टि सौं संसारके समस्त पदार्थन कूँ न देखै। इन सब बातन सौं नेत्र अशुद्ध है जायँ हैं। यासौं बहुत ही सावधान रहै। पराये दोषन पै दृष्टि ही न जाय। नेत्रन सौं संतनके और श्रीभगवान्‌के दर्शन ही करै। उत्तम-उत्तम सदाचार, भक्ति-परख ग्रन्थनकौ स्वाध्याय करै। दूसरेनकी ओर देखै ही नहीं कि कौन का करि रह्यौ है? का नहीं करि रह्यौ है। सदैव अपने कूँ ही देखै।

'करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा।'

(रा०च०मा० १। २४६। ६)

अपने शरीर, इन्द्रिय, अन्त:करण सब कूँ वहाँके योग्य बनानौं है, जहाँ हमकूँ जानौं हैं। अपनौं लक्ष्य है श्रीभगवत्प्रेम। प्रेमकौ हू फल है सेवामें पहुँचनौं। अत: सेवाके योग्य पवित्र बनानौं है सबकूँ।

उत्तम काम वह है, जामें काहूकौ नैंकहू अहित न होय। ये नहीं कि अपने स्वार्थ सौं दूसरेकौ काम बिगारि दे। अध्यात्मपथमें

संसार सौं उल्टे चलनौं हैं। अपनौं स्वार्थ न छू जाय इतनौं सुन्दर पथ है यह।

संसारमें दो बड़े अनर्थ हैं—

(१) स्वार्थ एवं (२) अहंकार।

या पथमें दोनौं हैं ही नहीं। यहाँ तौ सतत सुख, शान्ति और आनन्द ही रहै है। सत्पुरुष वह है, जो पराये कामके ताँई अपने स्वार्थकौ बलिदान करि देय। या पथमें सच्चरित्रताकी बहुत ही आवश्यकता है। आज लाभ नहीं, याकौ कारण है कि जीवन पवित्रम नहीं है।

श्रीभगवत्प्राप्ति अति सरल, अति ही सरल, यदि चलते बनै तब। एक बड़े ही मर्मकी बात है—वस्तु जितनी ऊँची हो गयी, प्रयास उतनौं ही अधिक ऊँचौ करनौं हौयगौ और प्रयास सौं जीव कतराय है।

नित्य सेव्य श्रीठाकुरजीकी सेवा करिवेके समय पै बुलायकैं बड़ी गम्भीरता सौं अपने दोऊ कर-कमल जोरि कैं बोले कि कलंकित मत करियौं। आजके साधु-समाजकी जैसैं रहनी है, वैसी अपनी न बनन पावै। अपनी रहनीमें सादा आहार, सादा वस्त्र, हर काऊ सौं न हँसी-मजाक, न बोलनौं, न बात करनौं। कलियुगको सबसौं बड़ौ आघात है—अध्यात्मपथ पै। सबसौं शिक्षा लेते भये अपनी रहनी कूँ ही सुधारनौं। प्राचीन मर्यादा रही कि साधुके यहाँ कंचन, कामिनी, कीर्तिकौ सर्वथा त्याग रहतौ। आज ये सब साधुनके यहाँ प्रवेश करि गये हैं, हमें सर्वथा बचनौं हैं इनसौं। बड़ौ वीर है वह, जो या घोर कलिकालमें रहते भये हू अपने-आप कूँ सतत सत्ययुगमें ही राखै। अपनी वृत्ति न गिरन पावै। यही हमारी श्रीगुरु-पूर्णिमा है।

'कृषी निरावहिं चतुर किसाना।'

यदि किसान अपने खेतकी निराई न करैं तौ फसलकी सबरी खुराक कूँ घास ही खाय जाय है। ऐसैं ही सतत सावधान रहनौं है। मन अपने काममें ही लग्यौ रहै। प्रेम-पथ बड़ौ ही कठिन है। श्रीनाम-जप अधिक रहै। अपनौं लक्ष्य है इनमें प्रेम। प्रेमके ताँई ही अपनौ समस्त जीवन। याकी प्राप्तिके ताँई पूरौ प्रयत्न। नयौ युग, नयौ काम। हम सावधान रहैं, जितनौं ऊँचौ है यह पथ, उतनी ही ऊँची विघ्न-बाधा आवैं हैं या पथमें। काहू कूँ धोखौ दै कैं जानौं ठीक नहीं। यासौं या पथकी एक-एक बात सबके सामने खोलिकैं कह जाऊँ हूँ। सुनिकैं, मनन करिकैं, जीवनमें आचरण करियौं।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥

अपने कूँ देखै—का सीख्यौ? का इनकी आज्ञा-पालन करि रहे हौ? का शास्त्राज्ञा-पालन करि रहे हौ? ईश्वर कहे है कि....***'प्रियतम मम सोई।'***

आहार शरीरके ताँई हो जिह्वाके ताँई नहीं। जो रजोगुणी (सुस्वाद) तमोगुणी (चटपटे, नशीले, तले-भये) पदार्थ अधिक सेवन करैं हैं, वे उपस्थ कौ संयम कदापि नहीं करि सकैं हैं। संयमी जीवन हो। प्रत्येक इन्द्रिय कौ संयम। कोई हू इन्द्रिय कुमार्गमें न जान पावै। संसारी पदार्थनके स्वादमें न फँसै। स्वयं हमारौ तौ यही मत है और उद्देश्य हू यही है कि जाके खाय वे सौं शरीरकौ पोषण होयगौ वाही कूँ खामैं हैं।

—साधन हो, वामें सत्यता होय, काहू संतके द्वारा बतायौ गयौ होय और इनके ताँई हो, अपने ताँई नहीं। ये चारौं बातें होयँ तौ, एक ही जन्ममें बेड़ा पार।

दूसरेकी वस्तु काममें नहीं लैनौं।

हम जा दरबारके हैं, वहाँ तौ सतत ऊँची बात ही हैं। सतत

ऊँचे विचार ही हैं। लक्ष्य केवल श्रीभगवत्प्रेम-प्राप्ति। स्त्री, द्रव्य, प्रतिष्ठा, माता हैं, पिता हैं, भाई हैं—जो कछु हैं, सो ये ही हैं। बस, ये ही हैं। एक बात दृढ़ बनि जाय तौ सब ठीक है जायगौ, वह है लक्ष्य केवल श्रीभगवत्प्रेम। जीवन केवल इनके ताँईं। दूसरी बात कामना कोई होय न, बस।

यह बात जीवनभर याद रहै। हममें जो सद्गुण हैं, उनकूँ ही अपनेमें पूरी तरह धारण करैं। हमारे दोष-दुर्गुण नहीं। एक-एक बात कूँ अपने जीवनमें उतारते जायँ। निरन्तर यही प्रयास रहै कि अपनौं जीवन इनकी आज्ञानके अनुरूप ही बनानौं है। सबकूँ झुकि कैं प्रणाम। कोई कछु कहै, प्रारब्ध कौ भोग मानिकैं सहर्ष सह लैं। मर्यादा न टूटन पावै। लोगन कूँ अखरन न पावै। जीवनभर मर्यादाकौ पूर्ण पालन करैं।

ध्यान रहै बहुत सँभरि कै चलनौं है—

जाके माता, पिता, गुरु, जीवित हौयँ, वाकूँ पितृपक्षमें क्षौर (हजामत) नहीं करानौं चहिए। रहै गृहस्थ, बनै संन्यासी। काहू सौं कछु लैनौं नहीं। अपनी गाढ़ी कमाई सौं करिकैं ही खायँ। ऊपर सौं पहरैं धोती-कुर्ता भीतर सौं बनैं पूरे संन्यासी।

अपनौं उदाहरण दियौ कि कोई सीधौ धरि गये, तब हमने वा स्थान पै हू चौका लगवायौ। काहूकी कोई वस्तु छूनी हू नहीं।

'प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ।'

'लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥'

(रा०च०मा० १। १६२। २; १। १६१(क))

काहूँ कूँ खबर ही नहीं लगै कि हम का करैं हैं। इतनौं छिपावै अपने-आप कूँ। मानव-जीवन अति कठिन है। कोई विरलौ ही सँभारि पावै है। रहौ गृहस्थ ही, परि याद राखौ! जीवन संन्यासी कौ सौ होय।

संन्यासी कौ अर्थ है **(सबसौं छुट्टी)**,केवल एक ही रह जाय। यह है संन्यासी। जैसैं जसोदा। या पथमें संसार सौं उल्टौं चलनौं परै है।

संसारीन कौ एक ही लक्ष्य—सब कछु अपने ताँईं और हमारौ सब कछु इनके ताँईं ही, अपने ताँईं कछु नहीं ये ही है बलिदान। बिना बलिदान किये या पथमें आगे बढ़ि ही नहीं सकै है। या समय द्वै दुर्लभ बनि गये—

—स्त्रीनमें पतिव्रता।

—साधु-संतनमें केवल श्रीभगवत्प्रेमी।

देखौ-देखौ बातें हैं द्वै—(१) वैराग्य और (२) प्रेम—ये दौनौं ही नहीं निभि पावैं हैं। वैराग्य तौ भोगमें लगि जाय है और प्रेम बटोरिवेमें। इनके बहाने ये टिक नहीं पावैं। यदि ये निभि जायँ तौ मोक्ष। वैभव और विलासितामय जीवन नहीं हौन पावै। जितनौं बनैं, उतनौं सादा-जीवन ही बनैं। हमारे पूर्वज जितने हू संसार छोड़िकै गये, वे सब हम कूँ सिखाय कैं गये हैं, यासौं जितनौं होय सादा जीवन ही होय और ये निभै तब ही, जब संतकी जो आज्ञा है जाय, वाकौ जीवनभरतक प्राणपण सौं पालन करै। श्रद्धापूर्ण हो तब ही बचि पावै। भले ही प्राण चले जायँ, किंतु आज्ञाकी अवहेलना नहीं हौन पावै।

एक बात बड़े ही मर्मकी है—यदि सदाचारकौ पालन पूरी सत्यताके साथ निभि जाय तौ वह बच नहीं सकै, पकर्‌यौ जायगौ अर्थात् प्रभु वाकूँ पकरि लिंगे।

सदाचार का है?—जो नियम या पथके हैं, वे पूरी सत्यता सौं निभि जायँ। यही है सदाचार।

एक ही बात मिली कि—न काहूकी कहै और न काहूकी सोचै।

इतनी भक्ति करै कि अपने सब पूर्वज श्रीभगवान्‌के बनि जायँ।

यदि संत बननौं चाहै तौ—इन लक्षणनकूँ अपनेमें धारण करै। उत्थानके सूत्र ये हैं—

(१) श्रद्धा, (२) सदाचार तथा (३) निष्कामता।

यदि सत्यता है तौ सफलता तौ चार्‌यौं ओर लगी ही रहैगी। अध्यात्म-पथकी सत्यता है—श्रद्धा।

आजकी बात ध्यान रहै। सतत सावधान रहैं। माया अनेकन प्रलोभन दै-दै कैं तुम पै हाथ मारैगी—

छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया॥

यासौं अपनौं एक-एक क्षण अपने श्रीसद्‌गुरुप्रदत्त साधन और चिन्तनमें ही बिताते रहनौं चहिए।

स्वभाव, वृत्ति, रहनी, आचरण, आहार, व्यवहार—ये सब ऊँचे बनैं, तब ही उत्थान।

आज याद आयी कि—साधककौ काल केवल स्त्री और द्रव्य है। चाहैं भूखौ मरि जाय। चाहैं शरीर सड़ि जाय। पर स्त्री सौं सम्पर्क नहीं बनन पावै (**विरक्तके ताँईं**)। ऐसैं ही गृहस्थके ताँईं परस्त्री सम्पर्ककौ निषेध है। ठीक याही प्रकार स्त्री-जाति-मात्रके ताँईं हूँ, हमारे समस्त शास्त्र और संत परपुरुषके सम्पर्ककौ निषेध करैं हैं।

प्रत्येक कार्य पूर्ण शान्ति सौं करनौं।

सेवा, स्मरण, शिशुवत् व्यवहार।

आज सौं अभ्यास बनाऔ कि जिह्वा सौं निरन्तर श्रीनाम-जप। जिह्वा धीरे-धीरे ऐसौ नाम-जप करै कि अपने श्रवण सुनैं। यह सर्वोत्तम उपाय है। भजन-साधन सौं पूरौं लाभ उठानौं चहिए। तीन बातन सौं बहुत ही बचै—

स्त्री, द्रव्य तथा पूजा-प्रतिष्ठा।

रहनी बनै केवल इनके ताँईं।

कोई काम करैं, पहले मन सौं पूछिलें कि जो तुम करिवे जाय रहे हौ, का अपने श्रीसद्‌गुरुभगवान्‌की आज्ञा है? यदि है तौ ठीक, यदि नहीं है तौ कदापि नहीं करै? या क्रिया सौं भूल अपने जीवनकी छाया हू नहीं छूइ सकै है। हौनौं तौ दूर।

अपनौं मन न रहै। अब रही बुद्धि······ सोऊ यही विचारै कि जो श्रीसद्‌गुरुभगवान्‌की आज्ञा है, वही करनौं है। बस, एक ही जन्ममें बेड़ा पार।

ये तीन बात काहू विरलेकी ही बनि पावैं हैं—

सेवा, तप तथा भजन।

सहसा कोई काम न करि बैठै।

श्रद्धा, सेवा, धर्म, भाव, इष्ट, काहूके बहाने सौं विरोध न करै।

देखौ·····भजन तौ बनि जाय है, परि सेवा और रहनी नहीं बनै। यदि भजनके साथ ये और हौयँ तौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार।

स्त्री सौं ही तौ बचनौं हैं। हम नहीं कहैं कि तुम साधु बनौं। भले ही रहौ गृहस्थ, पर आचरण संन्यासीके पालन करौ। जितनेनकी पतन भयौ हमारे देखते-देखते, सुनते-सुनते तथा प्राचीन इतिहास हू कहैं है, वह हैं एक स्त्री और दूसरी बात सेठ। इनसौं कोई हू, कैसौ हू सम्पर्क नहीं। बहुत थौरौ सौ करनौं है, तीन-चार बातें हैं, जो पालन करनौ हैं। ठेकेदार हम हैं। कोई रोकि नहीं सकै। एक ही जन्ममें बेड़ा पार····।

—शुद्ध गाढ़ी कमाई सौं जीवन-निर्वाह।

—कबहूँ क्रोध नहीं करनौं, चाहैं कैसी हू बात होय।

—काहू सौं लड़नौं नहीं, चाहैं भले ही तुम्हारौ खेत चराय ले, चाहें कैसी हू हानि कर दे।

—याके साथ नाम-जप करते रहैं तथा स्त्री सौं और सेठन सौं बचते रहैं। इतनौं करिलेउ। ठेकेदार हम हैं। कोई रोकि सकै। एक ही जन्ममें बेड़ा पार। हाँ गृहस्थ हौं तौ एक पत्नीव्रतकौ पूर्ण पालन करैं।

यह न मान बैठै कि हममें अवगुण हैं ही नहीं। यदि यह मान लियौ तौ विकारन सौं पीछौ नहीं छूटि सकै। यदि अपने सौं भूल है जाय तौ वाकूँ शीघ्र मानि लेय, स्वीकार लेय तौ उलझन सौं शीघ्र पार है जायगौ।

सब साधकनके ताँईं यह बात अन्तिम है तथा परमावश्यक है। यह जीवन केवल इनके ताँईं बनै, यह सूत्र है और सब तौ याकी व्याख्या है। हाँ, यह तब ही सम्भव है, जब जीवन पवित्रतम बनै। राग-द्वेष, छल-कपट तथा ईर्ष्या-क्रोध आदि एक न रहन पावै। मरे पीछै जो मिलनौं है, वाकूँ याही जीवनमें पाय ले। **जीवनमें सबसौं बड़ी बाधा है**—कामना। मनमें उत्तम सौं हू उत्तम कोई चाह न होय। **चाह होय एक**—श्रीप्रभु सौ मिलिवे की यह सब है सकै है। केवल कथनमात्र ही नहीं हैं। यह अनुभूत है कि जो शरीर कूँ ही अधिक कसैं हैं, उनकूँ आगे चलिकैं दम्भ करनौं परै है। शरीर कूँ अधिक कसिवे सौं भोग्य ही बढ़ै है। संयम करनौं है मन कौ। यापै कबहूँ विश्वास न करि बैठै।

उदाहरण—(व्यासजीकौ स्त्रीरूप अपने शिष्यके अहंकार चूर करिवेके ताँईं)

समय बहुत दुस्तर है—बुलाय कैं कही कि—**स्वाँग भले ही भरलेउ, परि इनसौं बचि जानौं**—(स्त्री, द्रव्य, सेठ,

अहंकार, क्रोध, विरोध तथा दम्भ सौं) बहुत ही कठिन है। जीवन भरि याद रहै, भले ही भूखौ मरि जाय, पानी पीकैं रह जाय, किंतु इनसौं बहुत ही बचै।

काहू बहाने सौं क्रोध नहीं। काहू बहाने सौं विरोध नहीं॥

और कछु नाँय तौ अपने वैराग्यकौ ही अहंकार।

सेठ—इनके हाथमें अपनी उँगली न पकरावै। भजन भलेही कम होय, किंतु इनसौं बहुत ही बचै।

हाँ, स्त्री-द्रव्य सौं हू बचि जाय, किंतु विरोध सौं नहीं बचि पावै है। काहू बहाने सौं क्रोध तथा विरोध नहीं करै।

सबके बसकी बात नहीं—एक ही बात, प्रपञ्च न बढ़ावै, सादा जीवन, माया विवश करैगी। साधुन पै बड़े-बड़े काम लोग कराय लेंय हैं, सावधान! ठगिया संसारसौं।

देखिवेमें यह काम अति उत्तम ही जान परै है तथापि है सब प्रपञ्च ही।

यथा—वहाँ रविवारमें कीर्तन है जाय। सत्संग है जाय। लीला है जाय। अन्नक्षेत्र खुल जाय। धर्मशाला बनि जाय। इनमें सौं भलेहूँ कितनौं हूँ ऊँचौ-सौं-ऊँचौ कोई धार्मिक कार्य ही क्यौं न होय, यदि वामें संसारी लोगनकौं सम्पर्क और सहयोग लैनौं परै है तौ साधकके ताँईं, है वह प्रपंच ही। परिणाममें यह होय है कि—राग-द्वेष।

सर्वोत्तम बात है और सबसौं प्रधान है 'चिन्तन'। याकूँ भीतर-ही-भीतर बढ़ावै। हम जिनके हैं उनके साथ ही लड़नौं, झगड़नौं, खेलनौं, कूदनौं, रौनौं तथा हँसनौं। जितनौं बढ़ावै आन्तरिक ही बढ़ावै।

उदाहरणमें—अपने परम श्रद्धेय पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी महाराज और परम पूज्य पण्डित बाबा श्रीरामकृष्णदासजी हू यही

कहते कि स्त्री और सेठ—इनसौं बचि गयौ तौ विरक्त साधककौ बेड़ा पार। नहीं तौ ये साधककूँ कच्चौ ही चबाय जायँ, भूनें हूँ नहीं हैं। ऊपरी कोई काम नहीं। सेवा, नाम-जप तथा चिन्तनके अतिरिक्त और सब साधकके ताँईं प्रपंच ही है।

सेवा, साधन तथा तप इतनौं बनि जाय कि सीधे नित्य सेवामें पहुँच जायँ। जो नियम बनै, वह जीवनभर पूरौ पालन होय।

प्रधान यह है—श्रद्धा, कामनानाश, पवित्रतम जीवन और इन द्वै बातन सौं बचनौं हैं—स्त्री और धनी लोग। ये साधकके काल हैं।

आज एकादशी है। कहलेउ, सुनलेउ यह तौ ठीक है, किंतु ये तीन बात हौयँ। श्रद्धा होय और पूरी। कामना कोई रहै न। कितनौं हू त्याग, वैराग्य, भजन-साधन करि लेउ, कामना सबकूँ खाय जाय है।

पवित्रतम जीवन अर्थात् विकार कोई रहै ही नहीं। जब ये पूरी सत्यतासौं बनि जायँ तौ चौथी वस्तु है प्रेम-देवता। जाके दर्शन हौयँ हैं। ये तीनौं पूरी सत्यतासौं निभि जायँ तौ एक ही जन्ममें बेड़ा पार। इनमें सदैव अपनेकूँ देखतौ रहै।

प्रातः शौचसौं जब लौटे, तब बोले कि एक पुरानी बात स्मरण है आयी। बहुत पुरानी…… । अपने बूढ़े बाबाके श्रीमुखके शब्द हैं कि जीव श्रीभगवत्प्राप्तिके ताँईं चलै और हाथ कछु नहीं परै, तब संसारकी ओर ही लौटि परै है। प्रायः लौटि परै है।

जब संसारने हमें निकारि ही दियौ, तब फिर हम अपनेकूँ संसारके ही धर्मनमें फँसते रहैं, यह तौ वंचना है। लोग तौ कहैं हैं कि बड़े साधु हैं, वैरागी हैं, तपस्वी हैं, प्रेमी हैं और हमारे यहाँ जो संसारमें प्रधान हैं। स्त्री, द्रव्य, प्रतिष्ठा, अच्छे-अच्छे महल आदिक सब वैभव भरे परे हैं, फिर हम कहावैं कि बड़े

वैरागी हैं। यह तौ पूरी वंचना ही है। लोग कहैं वैरागी तौ हमें अपनेमें देखते रहनौं चहिए कि हम वास्तवमें हैं अथवा प्रतिष्ठारूपी विष्ठाके कीड़ा ही बने भये हैं। जो संसारकूँ प्रधान हैं, वे ही हमारे यहाँ वैराग है।

संत तौ जहाँ स्वयं चलि रहे हैं, वहीं चलिवेकी कह सकै हैं। याके अतिरिक्त संसारी वस्तु कैसें दै सकै है।

जो स्वयं अपनी चाह नहीं मिटाय सकै, वह दूसरेकी चाह कैसें मिटाय सकै है अर्थात् दूसरेकूँ निष्कामी वही बनाय सकै है, जो पहले स्वयं अपने-आपमें पूर्ण निष्कामी होयगौ।

मन्दिर या धर्मादाकी संस्थामें कहूँ कोई भार अपने ऊपर न ले। इनसौं पार तौ कछु गिने-चुने ही भये, परंतु गिरे सैकरन-हजारन हैं। लोभसौं अपनेकूँ बचाय नहीं पावै हैं, याही सौं वृत्ति गिरि जाय है और अपराध बनि जाय है। प्रेम बननौं परै है।

आजकल अमावास्या, पूर्णिमा, एकादशी, संक्रान्ति आदि पर्वनपै कामनासौं दान दै दैकैं अपने पाप नष्ट करनौं चाहैं हैं। वे बड़ी भारी भूलमें है। पाप बिना भोगे निवृत्त नहीं होयगौ। हाँ, साधु-संतनकूँ पापकी कमाईकौ दान दैकें अपराध और कमाय लियौ।

प्रारब्धवश जो मिलि जाय, वाहीमें संतुष्ट रहै, भले ही कछु कष्ट होय तौ सह ले, परंतु शारीरिक सुख-सुविधाकी इच्छा न करै। संसारी पदार्थ पायकैं प्रसन्न न होय। श्रीभगवान् जो दै दैं, वाहीमें संतोष करै।

जैसें संसारी लोग पूरी सत्यतासौं तथा पूरी लगनसौं अपने कामनमें लगैं हैं, वैसें ही हमकूँ हू लगनौं चहिए, यही हमारी सचाई है।

भले ही धाम-बास है रह्यौ होय, भजन है रह्यौ होय, सत्संग

मिलि रह्यौ होय, परंतु जबतक वाकूँ जीवनमें नहीं उतारिगे, तबतक कोई लाभ नहीं। सत्संगकी बड़ी महिमा है। आजतक जितने हू उठे हैं, सत्संगसौं ही उठे हैं। जा काहूने सत्संगकूँ अपने जीवनमें उतारिवेकौ प्रयत्न कियौ है, सो ही उठ्यो है। ऊपरी बातनसौं काम नहीं चलैगौ। यामें पूरी सत्यता होय, तब ही उठाव होयगौ।

कोई भूल हैवे पै यदि मनमें प्रसन्नता होय तौ जानि लेउ कोई बड़ी विपत्ति आयवे वारी है। यदि खेद होय, पश्चात्ताप होय तौ वह भूल कबतक टिकैगी। धीरे-धीरे किनारौ करि ही जायगी। विकारनकूँ रोकिवेमें यह खेद और पश्चात्ताप बड़ौ ही सहायक सिद्ध होय है। निराश न होय, विकारनसौं बचिवेकौ प्रयत्न जीवनपर्यन्त करतौ ही रहै।

सरलता, सबरे सद्गुणनकी जननी है। या पथमें याके बिना कछु हाथ नहीं लगै है।

मन अपने-आप विषयनमें और संसारमें दौड़ै तौ वह क्षम्य है, परंतु यदि हम वा समय वाकूँ रोकिवेकी अपेक्षा वाकौ साथ दै रहे हैं तौ अपराधी हैं।

उपासनाकौ एक यह क्रम है कि पहले भगवान् श्रीशंकरजीकी उपासना करै तौ विकार मिटि जायँ हैं। तब श्रीरामजीकी उपासना करे तौ जीवनमें सदाचार मर्यादाकौ पालन होयगौ। ताके फलस्वरूप तब भगवान् श्रीकृष्णकौ प्रेमस्वरूप समझमें आवैगौ। तब ही श्रीव्रजकी लीला समझमें आवैगी। तब ही श्रीनन्दलालमें प्रेम होयगौ।

संतकी (श्रीसद्गुरुकी) आज्ञा-पालन करिवेसौं ही जीवन निष्पाप बनैगौ।

यथा संनिपात रोगग्रस्त रोगीके ताँईं प्रतिक्षण औषधिकौ

प्रयोग तथा उपचार होतौ रहै है एवं सब प्रकारकी सावधानता राखनी परै है। तद्वत् मनके शान्त करिवेमें हू ऐसौ ही प्रयत्न कम-सौं-कम तौ होनौ ही चहिए। साधारण रोगीकौ सौ उपचार यदि कियौ जाय तौ संनिपाताक्रान्त रोगी निरोग है ही नहीं सकै। तथैव मनके विषयमें समझनौं चहिए।

सम्प्रति प्रायः नीची अवस्थाकौ ही पालन साधक जगतमें होय है। मनके ऊपर शनैः-शनैः बहुत दबाव परनौं चहिए। तब कहूँ याके शान्त होयवेकी आशा करी जाय सकै है।

इन्द्रियनकूँ मन मानौ छोड़ि देय है, फिरि मनकूँ शान्त करनौं चाहै है। यह मूर्खता है। जा समय साधक वास्तविकरूपमें आय जायगौ वा समयकी अवस्था श्रीप्रियतमके अत्यन्त सांनिध्यकी है।

सम्प्रति साधक जगत्में नवीन विचार उत्पन्न है गये हैं तथा है रहे हैं। शास्त्रकौ आज्ञानुसार साधन बननौं कठिन परै है। अतएव साधक सरल मार्ग खोजिवे लगौ है।

सर्वतोभाव सौं विकारनकौं नाश तौ तब ही होय है, जब श्रीप्राणनाथके प्रेमसागरमें साधक डूबि जाय है।

यदि साधककूँ साधनके नियमनकी चिन्ता होयवे लगै तौ अन्य चिन्ताएँ स्वतः भाग जायँगी। यह लाभ सुलभ है।

प्रारम्भमें आश्रय, आगें चलिकैं अनुयायित्व, यह क्रम उचित जानि परै है। या यौं समझैं कि आश्रयत्व ही अनुयायित्वमें परिणित है जायगौ।

सबकौ फल—एकान्तप्रियता, उपरति, निरन्तर भजन तथा श्रीजीवनसर्वस्वसौं पूर्ण आत्मीयता।

दास और कान्त—ये दो भाव प्रभुकी किशोरावस्थामें ही ठीक बैठें हैं। सख्य तथा वात्सल्य, बालमूर्तिमें।

जो दीर्घकाल ठीक-ठीक भजन करिवेकी इच्छा होय, तौ

शरीरकूँ सँभारते भये भजन करिवेकौ विचार राखै। हाँ, देहाध्यास न बढ़ाय बैठै। यह ध्यान राखै—

'तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥'

(रा०च०मा० ७। ९६। ५)

पापके क्षीण भये पीछैं अन्तःकरणमें सत्त्वकौ विकास हौय है। तब विवेक उपजै है। तदनन्तर जितेन्द्रियता एवं अन्तर्मुखताकी वृद्धि होयवै लगै है। यही आत्मोत्थानकौ सोपान है। अतएव पापनके क्षीण करिवेके ताँईं साधककूँ पूर्ण प्रयत्न करनौं चहिए। प्रयत्न है—श्रद्धा आदिक।

सर्वतोभावेन साधन तौ—श्रद्धा, संयम, तप, त्याग, वैराग्य।

एवं ईश्वर-स्मृति बढ़ातो ही रहै। इनसौं सदैव अतृप्त ही रहै। इनके ताँईं पूर्ण व्रत होय। इनकौं पालन करिकैं इनकी ही याचना होय। इत्यादि।

सफलता तौ श्रीप्राणनाथके हाथ है। हाँ, साधक स्वप्नमें हू अपने संयममें शिथिलता न होने देय तथा यह न मानि बैठै कि मैं अब पूर्ण संयमी बनि गयौ।

यदि करते बनि जाय तौ भजनके समान अन्य कोई शुभ काम नहीं है।

जो कार्य विधिपूर्वक कियौ जाय है, वाहीकौ फल उत्तम मिलै है। विपरीत ढंगसौं किये भयेकौ फल हू विपरीत ही होय है।

भजनकौ फल वास्तवमें भजनमें अतृप्ति है। उत्तरोत्तर संवर्धनकी आकांक्षा उपजती रहै। किंतु जब ठीक ढंगसौं नहीं कियौ जाय, तब भोगनकी उपलब्धि कराय बैठै है। जासौं पतन अवश्यम्भावी है। ऐसे ढंगसौं भजन करनौं चहिए, जासौं हृदयमें आह्लाद उत्पन्न होय एवं रसकी उपज होयवे लगै। श्रीनाम-जपकी अनेकन विधियाँ हैं। कोई बाजा-गाजाके साथ संकीर्तनकौ

महत्त्व वर्णन करैं हैं, कोई जोर-जोरसौं गायवेमें रुचि राखैं हैं, कोई-कोई होठ-ही-होठमें श्रीनामकौ उच्चारण अच्छौ समझैं हैं। बहुत-से साधकनकौ मत है कि मानसिक जप ही सर्वोत्तम है। वस्तुतः साधकके अधिकारभेद सौं समस्त विधियाँ उत्तम ही हैं। एकान्तमें कछु जोरसौं, तालके साथ यदा-कदा ठाढ़े है कैं, अंग-संचालन करते भये। श्रीप्रदक्षिणामें हू तालध्वनिके साथ श्रीनामोच्चारण तदनुसार पाँवनकी गति हू होती रहै। विधि सबकी ठीक है।

मृत्युकी पहलेंसौं ही पूरी तैयारी करै। जो जीवनभर कियौ जाय है, वही अन्तकालमें स्मरण होय है। ऐसौ नहीं कि जीवनभर संसारमें डूबे रहे और अन्तकालमें श्रीठाकुरजीकौ चित्रपट सामने धरिकैं कीर्तन करिवेसौं ही मान लियौ कि बस पार है गये। वासना अति सूक्ष्म वस्तु है। वह हृदयमें सदैव चिपकी रहै है। जो अन्तकालमें विराट्‌रूप लैकैं सम्मुख ठाढ़ी ह्वै जाय है। वासनाके अनुसार ही दूसरौ जन्म होय है। या कारण बाल्यकालसौं ही उपासनाकौ विधान है अर्थात् अपनौं सम्पूर्ण जीवन प्रभुके काममें ही आवै। अन्तकालमें जो मनमें रहैगौ, वही जन्म होयगौ।

भोजन, शयन, शौच, स्नान, आदिक सब शरीरकी रक्षाके ताँईं होय और शरीर होय साधनके ताँईं तथा साधन होय श्रीभगवत्प्राप्तिके ताँईं। तब जी-जीवनकी सफलता है।

प्रत्येक कार्य करिवेसौं पूर्व बड़ी गहराईसौं यह विचारिकैं देखि लेय कि यह कार्य संसारके ताँईं है या अपने ताँईं है अथवा श्रीजीवनधनके ताँईं है। यदि अपने और संसारके ताँईं है तौ कदापि न करै। यदि प्रभुके रिझायवेके ताँईं है तौ तुरंत करि डारै। यही युक्ति है, प्रपंच सौं बचिवेकी और यही परम कर्तव्य है साधककौ।

कामना-वासना नैंकऊ रह गयी तौ फिर लौटिकैं आनौं परैगौ। भले ही तुलसीदासजीकी भाँति श्रीरामचरितमानस-जैसौ ग्रन्थ लिखिकैं लाखन लोगनकौ उद्धार ही क्यौं न करि दियौ होय। परंतु कामना लैकैं मरे तो आयकैं पूरी करनी ही परैगी। भले ही काम बहुत ऊँचौ होय, किंतु वासना रहैगी तौ बाके ताँईं संसारमें जन्म तौ लैनौं ही परैगौ।

वैराग्यकौ अर्थ कपड़ा रँगनौं नहीं है। वैराग्य माने अन्त:करण खाली। इनके अतिरिक्त कोई इच्छा ही नहीं उठै। त्याग केवल टाट लपेटिकैं, दिगम्बर रहकैं, वृक्षनके नीचैं रहवेकौ नाम नहीं है। वास्तविक त्याग तौ इनके और हमारे बीच बाधक वस्तुकूँ त्यागिवेकौ नाम ही त्याग है। मन तौ एक है, चाहैं याकूँ संसारके रिझायवेमें लगाय लेउ, चाहैं इनके रिझायवेमें। जब संसारकौ रिझानौं बंद है जायगौ, तब ही इनकूँ रिझाय पाऔगे।

हम अपने जीवनकी कहैं। कहानी नहीं है। चाहैं याके कहवे सौं सुकृत नष्ट होते हौयँ तौ भले ही है जायँ, पर हम कहिंगे अवश्य। सम्भव है, कोई याकूँ सुनिकैं चलिवे लगि जाय।

हाथरसमें हमारौ सब समय जैसैं इनकी चर्चा और भजनमें बीति ही रह्यौ हो कि इनके अतिरिक्त दूसरी कोई चर्चा ही नहीं। धन नहीं बटोरयौ। जबकि दूसरे पण्डित हमारी मूर्खतापै उपहास हू करते। यह सब है ही रह्यौ हौ कि रासबिहारी बनिकैं गये और पकरि लाये। वा समय हमारी जो दशा भई वाकूँ हम ही जानैं। कोई भुक्तभोगी ही अनुमान लगाय सकै है। हम रासबिहारी कूँ रासबिहारी मानि बैठे। न कछु देखनौं, न कछु सुननौं, यहाँतक कि देहाध्यास हू नहीं रह्यौ। वा दशाके ताँईं हम आज हू तरसैं हैं। अब तौ हमारौ जगिवे ते सोयवेतक कोई हू क्षण व्यर्थ ही नहीं जाय है। शौचके समय नाम बंद है जाय है, वह समय हू

बिना नामके हमैं अखरै है। हम कबहूँ बौलैं हैं तो विवशतासौं ही बोलैं हैं। इच्छा यही रहै है कि बोलनौं ही न परै। या प्रकार पूरौ समय श्रीनाम-जपमें ही लगानौं है, तब कहूँ जायकैं प्रेम-देवताकी प्राप्ति होयगी। जो इनसौं हू बढ़िकैं है। प्रेम-देवता आये न कि? प्रभु तौ पीछैं-पीछैं घूमैं हैं।

प्रश्न—पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणासौं कैसैं बच्यौ जाय? हम ग्रहस्थनकूँ प्रवृत्तिमें निवृत्तिकौ लाभ कैसैं मिलैं?

उत्तर—अध्यात्ममें ठीक-ठीक प्रवेश तौ निवृत्तिमार्गमें ही होय है। निज इष्ट-चिन्तन तब ही सम्भव है, जब चित्तमें कोई वासना न होय तथा चित्त कहूँ अन्यत्र आसक्त न होय। आचार्यनने प्रवृत्तिमार्ग बारेनके ताँईं युक्ति निकारी है कि जो कछु करै, इष्टके निमित्त ही करै। तब कहुँ आसक्ति नहीं रह सकै। भले ही अपनौं ही पुत्र है, किंतु पिताकौ परम कर्तव्य है कि बाल्यकालसौं ही पुत्रकूँ श्रीभगवत्की ओर झुकावतौ चलै। पूर्ण सदाचारी बनायकैं, श्रीप्राणनाथके अर्पण करि देय। अब याकूँ श्रीभगवद्वस्तु मानिकैं पालै, पौषै, पूर्ण संरक्षण करै एवं सब प्रकारसौं सत्पात्र बनावै, जासौं यह श्रीप्रियतमकौ कृपापात्र बनि सकै। हाँ, यासौं अपनौं कोई स्वार्थ-साधन नहीं सोचै। या प्रकारसौं सँभारै तौ पुत्रकौ उद्धार तौ है ही जायगौ, साथ ही याकूँ श्रीप्राणनाथकौ जन बनायवेके कारण या सत्कर्मसौं अपनौं हू उद्धार है जायगौ।

अब यह वस्तु श्रीभगवान्‌की बनि गयी। ऐसौ करिवे सौं अब पुत्रमें आसक्ति नहीं रह सकै है। यह विचारणीय बात है कि आसक्ति श्रीभगवद्विमुख वस्तुमें ही होय है, वामें मोह रहै है और श्रीभगवद्वस्तुमें कर्तव्य-पालन रहै है। श्रीप्रियतमकी वस्तु है, यह

मानिकैं संरक्षणमात्र रहै है, उपेक्षा नहीं, अनासक्त योगसौं पूरौ सँभारै। अब कहाँ रही पुत्रेषणा?

याही प्रकार गाढ़ी कमाईके द्वारा उपार्जित कियौ भयौ धन हो वास्तवमें धन है। अन्याय तथा पापकी एक कौड़ी हू यामें न मिलन पावै। या पवित्रतम धनकूँ सर्वप्रथम श्रीइष्टकी सेवामें अर्पण करै। करै अपनी सामर्थ्यके अनुसार ही। फिर ब्राह्मण-साधुनकी सेवामें तथा दीन-दुःखीनको सहायतामें लगावै अब यह द्रव्य अत्यन्त शुद्ध बनि गयौ। या श्रीभगवत्-प्रसादकूँ अपने कुटुम्बके पालन-पोषणमें लगावै। यामें यदि कछु कष्ट सहनौं परै तौ याकूँ तप ही मानैं। या तपसौं श्रीजीवनधनकी प्रसन्नता प्राप्त होय है, व्यर्थ खर्च न बढ़ावै। सात्त्विकी जीवन ही बनावै। ऐसौं द्रव्यमें आसक्ति नहीं है सकै। अशुद्ध पापके द्रव्यमें स्वतः आसक्ति बढ़ि जाय है। या आसक्तिकौ रोकनौं कठिन परि जाय है। यही बन जाय है—वासना, यही बनै है—नरककौ कारण। अनेकन जन्मनपर्यन्त पाप यौनिनमें भयंकर कष्ट भोगनौं परै है।

अतएव शुद्ध कमाई, पवित्र स्थानमें व्यय, यह भयौ सत्कर्म। अब वित्तेषणा रह ही नहीं सकै। यदि ऐसौ वानिक बनि जाय अर्थात् संतति और द्रव्य यह दौनौं ही श्रीप्रियतमकी वस्तु बनाय सकै तौ याके परिणाममें संसारसौं वैराग्य है जायगौ तथा श्रीजीवनधनकौ कृपाभाजन बनि जायगौ और जीवन-सफल है जायगौ।

माँ अपने शिशुकूँ नहलावै है, वस्त्र पहरावै है, काजल लगावै है, आभूषण धारण करावै है और खूब सँभारै है। फिर अपनी गोदमें लैकैं वाकूँ चूमैं है, देखिकैं अति प्रसन्न होय है। अबोध शिशुकूँ कछू खबरि नहीं, वह तौ चाहै है, केवल माँकी गोद तथा माँकौ प्यार। ठीक याही प्रकार श्रीभगवान् अपने भक्तकूँ सँभारै हैं, याकी प्रशंसा करवावैं हैं, यहाँतक कि मान-प्रतिष्ठा हू कराय बैठें हैं। किंतु भक्त यह कछू नहीं मानै है और न यह सब कछू चाहै ही है। भक्त तौ केवल अपने ही प्राणवल्लभके प्रेमकौ भूखौ रहै है। हाँ, श्रीप्रियतमके इन खेलनकूँ देखिकैं यही कह बैठे है कि मेरे श्रीजीवनधन! आप कछु करैं, किंतु करैं अपनी प्रसन्नताके ताँईं ही। जामैं आपकी प्रसन्नता होय, आप जानैं। मैं तौ वही पामर अधम जीव हूँ, मैं यह कबहूँ नहीं मानि सकूँ हूँ कि मैं प्रशंसाके योग्य हूँ। हाँ, आपकूँ यामैं प्रसन्नता हौती होय तौ आप जानैं। जैसैं माँ शिशुकूँ देखिकैं प्रसन्न होय है, वैसैं ही आपकी प्रसन्नता आप ही जानैं।

हाँ, यहाँ अत्यन्त सावधान रहै, कहूँ यह न मानि बैठें कि मैं कछू हूँ। याकी बड़ी सावधानता चहिए। यहाँ प्रायः जीव चूकि जाय है। अपनेकूँ दीन, हीन, पामर ही मानतौ रहै। यह तौ श्रीप्रियतमकी उदारता है। बस, लोकेषणा ठहर ही नहीं सकै। ऐसौ बानिक यदि बनि जाय तौ प्रवृत्तिमें ही परम-निवृत्ति बनि जाय है।

'संपति सब रघुपति कै आही' यही विचार दृढ़ रहै। जीव-धर्म है उद्योग करिबैकौ। अकर्मण्यता नहीं ग्रहण करनी। या सम्पत्तिमें सौं अपनी आवश्यकताके ताँईं ग्रहण कर लैनौं। यहाँ नौकरी करि लई जाय है। यथाशक्ति यामें सौं शुभ काममें लगाते रहनौं। उचित तौ यही है कि आयमेंसौं दशमांश शुभ कामनके ताँईं निकारि दैनौं। खूब परिश्रम तथा पूर्ण प्रयत्नके साथ व्यापारमें लगे रहनौं। जहाँ ताँईं है सकै पाप कर्मनसौं भय खाते रहनौं। हरिश्चन्द्र या युधिष्ठिर नहीं बनि सकै तौ कोई हानि नहीं। किंतु दुष्कर्मनकूँ कबहूँ न अपनावै। परस्परमें मेलभाव राखै। जो काम करै, सबकी सम्मतिसौं करै। काम करते भये श्रीनाम-जप होतौ रहै। यही प्रयास करनौं।

जीवके पवित्र बनिवेमें समय लगैगौ, ऐसौ माननौं या कृपा

जब कराय लेगी तब है जायगौ, ऐसौ माननौं, हम तौ याकूँ बहानेबाजी ही मानैं है। जब हमकूँ श्रीसद्‌गुरु प्राप्त हैं तौ उनमें दृढ़ श्रद्धा करै। अवलम्बन लैकैं प्रयत्न करै तौ कछु असाध्य नहीं है।

प्रश्न—काहूने पूछ्यौ कि ब्रह्म, परब्रह्म, परात्पर परब्रह्म कौनसौं कहै? याकी व्याख्या करिवेकी कृपा करैं?

उत्तर—काहू विद्वान्‌के और काहू शास्त्रके मतसौं नहीं अपने ही विचारसौं ऐसौ समझमें आवै कि '**ब्रह्म**' शब्दकी रचना चार संयुक्ताक्षरसौं भई है—ब+र+ह+म=ब्रह्म। इन चार्‌यौनकौ आशय है—'**ब**'कौ अर्थ है बनायवे वारौ अर्थात् सृष्टिको निर्माणकर्ता=श्रीब्रह्माजी। '**र**' कौ अर्थ है रक्षा करिवे वारौ अर्थात् सृष्टिकौ रक्षण, पालन, पोषण करिवे वारौ अर्थात् रमापति श्रीविष्णुजी। '**ह**' कौ अर्थ है हरण करिवे वारौ (हर्ता) अर्थात् सृष्टिकौ संहारकर्ता श्रीहर—श्रीशंकरजी। '**म**' कौ अर्थ है मृत्युके पीछैं मोक्ष प्रदान करिवे वारौ अर्थात् मोक्षदाता श्रीभगवान् मुकुन्द। इन चार्‌यौं कार्यनके एक साथ करिवेकी सामर्थ्य जामें है, वही है ब्रह्म। प्रत्येक प्राणीकी जन्मसौं लैकैं मुक्तितक चार अवस्था होयँ हैं—जन्म, जीवन, मृत्यु और मोक्ष। ये चार्‌यौनकूँ जो अबाध गतिसौं सदैव सौं करतौ चल्यौ आय रह्यौ है, वही है ब्रह्म।

अब बात आयी परब्रह्मकी। '……**तौ ब्रह्मात् परः इति परं ब्रह्म**'। अर्थात् 'ब्रह्म सौं परै है जो, वही है परंब्रह्म। 'पर' शब्दको सामान्य अर्थ है—ऊपर या ऊँचौ अथवा बड़ौ अर्थात् ब्रह्मसौं जो बड़ौ है, ऊँचौ है अथवा ऊपर है वही है परंब्रह्म। यासौं कहलैं कि जो ब्रह्मपै हू शासन करिवेकी सामर्थ्य राखतौ होय। अजन्मा, अगोचर, ब्रह्मकूँ हूँ जो इन आँखिनके सम्मुख विविध रूप धरिकैं साक्षात् प्रकट हैवेके ताँईं विवश करि दे, वह

है परंब्रह्म अर्थात् कौन? संत। या विवेचनासौं अब यह स्पष्ट है गयौ कि संत अर्थात् गुरु ही परंब्रह्म है। दूसरे अर्थमें यौं कह लेउ कि वह ब्रह्म ही अपने वास्तविक स्वरूपकौ ज्ञान करायवैके ताँईं संतकौ रूप धरिकैं, हम पाँवर जीवनके बीचमें अपनौं ऐश्वर्य त्यागिकैं प्रकट है गयौ है और स्वयं ही आचरण करि-करिकैं अपनी प्राप्तिकौ मार्ग हम अबोधनकूँ दिखाय रह्यौ है। भक्तकौ आचरण अलग और श्रीभगवान्‌कौ आचरण अलग। तब वही ब्रह्म संतके रूपमें परंब्रह्म कहलावै है और वही संत हमकूँ गुरुदेवके रूपमें मिलिकैं हमारे कल्याणकौ ठेकेदार बनि जाय है। प्रत्येक शिष्यके ताँईं बाके अपने श्रीगुरुदेव पूर्णरूपेण परंब्रह्म ही होयँ हैं। यथा—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अब प्रश्न उठै है कि संत कौन?……चाहे वह गृहस्थ होय, चाहे विरक्त। चाहे स्त्री शरीर होय, चाहे पुरुष। चाहे पढ्यौ-लिख्यौ होय, चाहे बिना पढ्यौ-लिख्यौ। चाहे जा देशकौ वासी होय। चाहे जा धर्मकौ मानिवे वारौ होय। चाहे धनवान् होय, चाहे निर्धन। चाहे रंगकौ गौरौ होय चाहै कारौ और चाहे जा जातिकौ होय……।

जाके स्मरण और दर्शनमात्रसौं अपने-आपकूँ श्रीभगवत्स्मरण हैवे लगि जाय। अपने जीवनपै ग्लानि पैदा है जाय। मन-बुद्धि अपने-आपकूँ धिक्कारिवे लगैं। मैं कौन हूँ? काहेके ताँईं संसारमें आयौ हूँ? मेरौ कहा कर्तव्य है? आदि-आदि अपने स्वरूपकौ बोध है वे लगि जाय। मनमें सौं विकार, वासना स्वतः भागिवे लगि जाय और पवित्रताकौ संचार हैवे लगि जाय तथा जिह्वा श्रीभगवन्नाम-जप करिवे लगि जाय। मनमें एक अद्भुत शान्तिकौ

स्रोत फूटि परै। एक विशेष प्रकारकौ स्वादसौं आयवे लगै। वही है संत। वही है परंब्रह्म अर्थात् विकारी-सौं-विकारी जीवकूँ हूँ जाके स्मरणमात्रसौं मायाराज्यसौं परेकी बात स्फुरण हैवे लगि जायँ, ब्रह्मके राज्यकी बात सूझिवे लगि जायँ, वही है संत।

ऐसे संतकूँ श्रीगुरुरूपमें पायकें, जीव जन्म-जन्मकी वासनानसौं मुक्त हैकें, मायाके बन्धनसौं सदा-सदाकूँ छुटकारौ पाय जाय है। यासौं श्रीगुरु ही परंब्रह्म हैं; क्यौंकि ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनों जैसैं सृष्टिकी रचना, पालन, पोषण और संहार करैं हैं। ठीक वैसैं ही श्रीगुरुदेव हू साधकके ताँईं साधनमार्गकी समस्त सामग्रीकी रचना करैं हैं, या कारण गुरु ब्रह्मा है और साधनकालमें बीच-बीचमें आयवे बारी समस्त बाधानसौं रक्षा करैं हैं तथा बाहरी-भीतरी (आत्मा और शरीर दोऊनकौ) पालन-पोषण हू करैं हैं या कारण श्रीगुरुदेव विष्णु हूँ हैं तथा साधकके मनके विकार वासनानकूँ समूल उखारिकैं फैंकि डारैं हैं, संहारकरि डारैं हैं और मायासौं उबारिकैं, जीते-जी मुक्त करिकैं, श्रीप्रियतमकौ प्यारौ बनाय देय हैं, या कारण श्रीशिव और श्रीभगवान् मुकुन्द हू हैं। या विवेचनासौं श्रीगुरुदेवमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश और श्रीमुकुन्द भगवान् आदिक सबनकौ समावेश है अर्थात् श्रीगुरुदेव इन चार्‌यौनकी पुंजीभूत प्रतिमा हैं। या कारण गुरु परंब्रह्म हैं।

एक संतके विचारनसौं—गुरु या कारण हू परंब्रह्म है कि एक ओर जहाँ ईश्वरने हमें विकारनके गारेमें सानिकैं यह मानव-शरीर दियौ और मायाकी झाड़ीमें फँसाय दियौ। दूसरी ओर वहीं श्रीगुरुदेवने हमें मायाके बन्धनसौं मुक्त करिकैं, प्रभुसौं मिलिवेकौ मार्ग बतायौ है। या कारण श्रीगुरुदेव वा ब्रह्मसौं हूँ बहुत ही परेकी वस्तु हैं अर्थात् परंब्रह्म हैं।

अब परात्पर परब्रह्म कौन?

एक संतके विचारसौं—जैसैं गुरु परंब्रह्म हौयँ हैं, वैसैं ही श्रीसद्गुरु परात्पर परंब्रह्म हौयँ हैं। जैसैं ब्रह्मसौं आगे परंब्रह्म होय है, वैसैं ही गुरुसौं आगे श्रीसद्गुरु होयँ हैं। श्रीरामचरितमानसमें श्रीसद्गुरु शब्द केवल चार बार ही प्रयुक्त भयौ है। जबकि गुरु शब्दकी अनेक बार आवृत्ति भई है। यासौं स्पष्ट होय है कि गुरुसौं श्रीसद्गुरु शब्द अपने-आपमें कुछ विशेष अर्थ राखै है।

गहराईसौं बिचारिकैं देखैं तौ यह स्पष्ट होय है कि गुरु और श्रीसद्गुरुमें बहुत ही अन्तर है। गुरुमें बसिवे बारे समस्त सद्गुण, शक्ति, सामर्थ्य तौ श्रीसद्गुरुमें हौयँ ही हैं। साथ ही इनसौं आगेकी विशेषता यह होय है कि जो जीव श्रीसद्गुरुकी शरणमें आय जाय है, वाकूँ अपनेसौं हू पहले प्रियतमकी गोदमें बैठारि दैयँ हैं। साथ ही शरणागतसौं अपनौं कछु स्वार्थ हू नहीं साधैं हैं और स्वयं एक-एक बात आचरण करि-करिकैं सिखावैं हैं। मात्र आदेश करिकैं ही छुट्टी नहीं पाय जायँ हैं। साधनकालमें साधक यदि काहू कारणवश गिरि हू जाय है तौ वाकूँ जननीकी भाँति उठायकें बार-बार उत्साहित करि-करिकैं चलावैं हैं। जबकि गुरु केवल साधनमार्गकौ निर्देश करिकैं ही छुट्टी पाय जाय है। फिर शिष्य कछु करौ अथवा मत करौ, अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं निभावै है। जबकि श्रीसद्गुरु कटिबद्ध है कैं येन-केन-प्रकारेण, अपने संरक्षणमें ही राखिकैं, शरणागतकूँ तन-मन-बचनसौं पूर्णरूपेण सँभारै हैं। जा हृदयसौं अपने जीवनसर्वस्व श्रीप्रभुकौ चिन्तन करैं हैं, वाही अन्तःकरणसौं अपने शरणागतके विषयमें सोचतौ रहै है कि जब यह जीव मेरी शरणमें आयौ है तौ याकौ उद्धार याही जन्ममें, आज ही, अब ही है जानौं चहिए। और कबहूँ-कबहूँ श्रीप्राणनाथसौं हू यह कह बैठै है कि हे मेरे जीवनधन! मैं अपने

विषयमें आपसौं पीछें बतराय लुंगौ, मेरौ उद्धार आप भले ही पीछें करि लीजौं, परंतु या शरणागतकौ हाथ तौ अब ही अपने करकमलनमें थाम लेउ। मैं आपकूँ सौंपूँ हूँ। शरणागतके लोक-परलोकके अतिरिक्त शरीरके स्वास्थ्यकौ हू पूरौ-पूरौ ध्यान राखे हैं। याके आहार, विहार, व्यवहार, विचार, आचरण, वृत्ति, रहनी, स्वभाव आदि एक-एक बातकी क्षण-क्षण जननीकी भाँति रखवारी करें हैं तथा भरिपेट लाढ़ लढ़ावें हैं। प्रतिक्षण यह देखते रहें हैं कि कहूँ साधक मार्गसौं गिर न परै।

श्रीसद्गुरु तौ वह महतारी है कि जाकी तुलनामें कोई **'न भूतो न भविष्यति।'** जैसें जननी अपने गोद खिलौनाकूँ न्हाय धुवायकें, शृंगार करिकें, पिताकी गोदमें बैठारिकें, बड़ी भारी प्रसन्न होय है। मन-ही-मन अति आनन्दित होय है। ठीक वैसें ही श्रीसद्गुरु अपने शिष्यकूँ विकार—वासनानसौं मुक्त करिकें, सद्गुणनसौं अलंकृत करिकें, अपने प्रियतम प्रभुकी गोदमें बैठारिकें, बड़े-बड़े आनन्दित हौयँ हैं तथा समाजमें बैठिकें वाकी भूरि-भूरि प्रशंसा करें हैं। मेरे विचारसौं तौ श्रीसद्गुरु-जैसी लाढ़-दुलार करिवे बारी महतारी या जगत्की तौका चलै सम्पूर्ण सृष्टिमें हूँ सम्भव नायँ। मैं या बातकूँ भुजा उठायकें, पाम रोपिकें, ढोल बजायकें, निस्संदेह कहूँ हूँ कि श्रीसद्गुरु-जैसौ श्रीभगवान्, गुरु, माता, पिता, सखा, इष्ट, धन, भवन, परिवार, त्रिलोकीमें दूसरौ कोई नहीं। इतनौं सब कछु करते भये हू स्वार्थकी गन्धतक नहीं राखैं हैं कि मेरौं यासौं यह स्वार्थ सधैगौ, वह सधैगौ। या काम आवैगौं, वा काम आवैगौ? ***'ऐसो को उदार जग माहीं'।*** यासौं श्रीसद्गुरु ही परात्पर परब्रह्म है। त्रिलोकीमें सबसौं ऊँची वस्तु यदि कोई है तौ वह है श्रीसद्गुरु-देव। निस्संदेह ये ही परात्पर परब्रह्म हैं।

साधक और विकार संसार (एक साधकके विचारसौं)— जैसें कोई माली आमके दो पौधा लगावै। एककूँ तौ विधिवत् भूमी तैयार करिकें, खाद तथा नाना प्रकारके उर्वरक डारिकें तब लगावै और दूसरेकूँ जल्दबाजीमें लापरवाहीसौं प्रमादवश वैसें ही लगाय देय है। अब तीन-चार वर्ष पश्चात् देखै हैं तौ दौनौं पौधा एक दूसरेसौं भिन्न आकारमें दीखें हैं। जाकूँ विधिवत् लगायौ गयौ हो, वह आज फल दै रह्यौ है और जाकूँ वैसें ही रोपि दियौ हो, वह ज्यौं-की-त्यौं अवस्थामें ही कछु टूट्यौ सौ,कछु मुरझायौ सौं ही ठाढ़ौ है। या बातपै माली बैठिकें विचार करिवे लग्यौ कि ऐसौ क्यौं भयो? तौ पतौ चल्यौ कि याकूँ तौ विधिवत् भूमि तैयार करिकें लगायौ हो, जो आज फलीभूत है और वाकूँ ऐसें ही लगाय दियौ हो जो मुरझायौसौं दीखि रह्यौ हैं। या कारण ऐसौ भयौ। दूसरी बात याके आस-पास तौ चारयौं ओर झाड़-जरकटानकौ बाड़ौ हू सुरक्षाके ताँईं लगायौ हो और सहारेकूँ एक बाँस हूँ लगायौ हो। परंतु वाकूँ जो यथावत् ठाड़ौ है, कोई सुरक्षा नहीं प्रदान करी, यौं ही छौड़ि दियौ हो। जब आँधी आयी, तब बाँसके सहारे बारौ पौधा सुरक्षित बचि गयौ है और दूसरौ आँधीमें ऊपरसौं टूटि गयौ तथा पल्लवनकूँ हूँ भैंस-बकरी खामती रही। तद्वत् साधक, साधन करिवेसौं पहलें अपने अन्तःकरणकूँ साधनके योग्य बनावै तथा श्रद्धा-सदाचाररूपी उर्वरक लगावै, तब साधन प्रारम्भ करै। कामना, वासनारूपी भैंस-बकरीनसौं बचिवेके ताँईं अव्यर्थत्व और निष्कामतारूपी बाड़ौ लगावै। मोह और अहंकाररूपी आँधीसौं बचिवेके ताँईं दृढ़तम महदाश्रयरूपी बाँस गाढ़ि दे। काम, क्रोधरूपी अग्निसौं बचिवेके ताँईं आस-पास पड़े भये स्त्री, धन, प्रतिष्ठारूपी कूड़े-कचड़ेकूँ वैराग्यरूपी सौहनीसौं झारिकें दूर फैंकि देय। निरन्तर

नियमसौं भाव आत्मीयतारूपी स्वच्छ जलसौं सिञ्चन करै। तब कहूँ साधनरूपी पौधा बढ़ै है। फिर कालान्तरमें जायकें प्रेमरूपी सुन्दर मधुरातिमधुर सुपक्व फल आवै है, जाकूँ खायकें, जाकौ रस पीकें, साधक तथा वाके स्वजन एवं वाकौ संसार, प्रेमरसमें सराबोर है जाय है। मस्त है जाय है।

यदि साधन करते-करते ऐसौ नहीं होय तौ अर्थात् साधक अपने साधनरूपी पौधाकी ऐसी सुरक्षा न करै, तौ अहंकार, मोहरूपी आँधी-तूफान, साधनरूपी पौधाकूँ उखारि फैंकैं हैं और स्त्री, पुत्र, धन, भाई, सगे-सम्बन्धी, घर-परिवारकी आसक्तिरूपी काँटेनमें फँसायकें, वाके स्वरूपकूँ वैसें ही विकृत करि दैयँ हैं, जैसें पौधा। या प्रकार साधककौ सबरौ श्रम व्यर्थ ही चल्यौ जाय है। व्यर्थ सब संसारमें ही खर्च है जाय है। साधककौ जीवन ऐसैं व्यर्थ है जाय है, जैसें किसानकौ बिना नरयौ खेत। खूब उर्वरक खाद, पानी दियौ, पर घास ही बढ़ी। पैदावार कछु हू हाथ नहीं लगी, यहाँतक बात है कि गाँठिकौ बीज हू व्यर्थ गयौ।

अन्तमें सारकी बात है यह कि साधन स्वतन्त्र न होय, दृढ़तम महादाश्रय होय, दृढ़तम श्रद्धा होय, कामनाशून्य अन्त:करण होय। सरलता, विनम्रता, सहनशीलताकी त्रिवेणी हृदयमें निरन्तर बहती ही रहै, भजन भले ही कम होय, परंतु रहनी होय श्रीअम्बरीष और श्रीप्रह्लादजी-जैसी। कटुता, रुक्षता, अहंकार, छल, कपट, राग-द्वेष छू न जाय। प्रधान है रहनी, तब ही पूरौ लाभ होय है।

प्रश्न—लक्ष्य का वस्तु है? लक्ष्यतक कैसैं पहुँच्यौ जाय?

उत्तर—लौकिक और पारलौकिक जितनौं हू हम देखि रहे हैं, सुनि रहे हैं, विचारि रहे हैं वह सब लक्ष्यकौ ही ताण्डव-नृत्य तौ है। प्रत्येक मनुष्य क्रियाशील है। सबके भीतर कोई-न-कोई लक्ष्य शासक बन्यौ बैठ्यौ है। जो वाकेद्वारा क्रिया कराय रह्यौ है। अपने-अपने लक्ष्यकी प्राप्तिकूँ ही सब जग नाँचि रह्यौ है। यासौं यह स्पष्ट है रह्यौ है कि लक्ष्य ही सब कछु है। सफलता-असफलता हू लक्ष्यकी ही अनुगामिनी हैं। जो अपने लक्ष्यमें दृढ़ है, वाकूँ सफलता अवश्य ही प्राप्त होयगी और जाके लक्ष्यमें शिथिलता है, वही असफलताकूँ प्राप्त होय है। यासौं निश्चय भयो कि काहू कार्यके करिवेसौं पूर्व वाकौ लक्ष्य अवश्य निर्धारित करनौं ही परैगौ।

उदाहरणके ताँईं—जैसें कोई फौजी सैनिककूँ निशानेबाजीकी परीक्षाके ताँईं पर्याप्त दूरीपै, एक पर्दापै लाल चिह्न लगायकें, जब लक्ष्यभेदनकौ आदेश दियौ जाय है, तब वह अपने लक्ष्यभेदनकूँ जैसी स्थितिमें, जैसी लगनसौं, जैसी लालसासौं, जैसी एकाग्रतासौं, जैसी सत्यतासौं निशानौं लगायवेकूँ ठाढ़ौ होय है, ठीक यही लालसा, एकाग्रता, सत्यता, लगन आदर्श है साधक-जगत्के ताँईं।

सैनिक जबतक अपने लक्ष्यबिन्दुपै ठीक-ठीक निशानौं नहीं लगाय लेय है, तबतक बाण नहीं छोड़ै है। जैसें ही लक्ष्यपै ठीक-ठीक निशानौं लग्यौ कि फट सौं बाण छोड़ि देय है और लक्ष्यकौ भेदन करिकें अति प्रसन्नताके सागरमें डूबि जाय है। लक्ष्यभेदनके समय सैनिककूँ न तनकौ, न धनकौ, न भवनकौ, न परिवारकौ और न शरीरके सुख-दु:ख, भूख-प्यास आदि द्वन्दनकौ किंचित् हू ध्यान नहीं रहै है, बल्कि वा समय तौ समस्त इन्द्रिय, मन, बुद्धि, शरीर पूर्णरूपेण लक्ष्यपै ही केन्द्रित रहै हैं। तब ही लक्ष्यकौ भेदन करि पावै है। यदि ये सब वा समय बहिर्मुख हौयँ तौ त्रिकालमें हू लक्ष्यकौ भेदन नहीं करि सकै है।

ठीक यही स्थिति साधक-जगत्कूँ आदर्श है। यदि

श्रीभगवत्प्राप्तिकी या श्रीभगवत्प्रेमप्राप्तिकी लालसा है तौ; अपने लक्ष्य-प्राप्तिकूँ या सैनिककी स्थितिकूँ आदर्श बनानौं ही परैगौ। ठीक वही लगन, वही सत्यता, वही लालसा, वही एकाग्रता अपनानी होयगी। अपने समस्त इन्द्रिय, मन, बुद्धि, वाणी, विचार, समय, शरीर एकजुट अपने लक्ष्यपै केन्द्रित करने ही परिंगे। तब ही लक्ष्यकी प्राप्ति होयगी।

लक्ष्यकी प्राप्ति तौ भई भायी है ही, कमी है अपनी एकाग्रता, लगन, सत्यता, लालसाकी। कमी है अपने श्रीसद्गुरुप्रदत्त साधनके माध्यमसौं उद्यम करिवेकी। यदि अपने मन, बुद्धि, वाणी, विचार, समय और शरीरमेंसौं एक हू वस्तु अपने ताँईं बचाय लई तौ लक्ष्यसौं कोसन दूर जाय गिरैगौ। लक्ष्यप्राप्तिमें एक क्षणकौ हू विलम्ब नहीं है। यदि विलम्ब है तौ अपने लगिवेकौ। मेरे विचारसौं जितनौ समय सैनिकके बाणकूँ लक्ष्य-विन्दुतक पहुँचिवेमें लगै है, उतने ही समयमें साधककूँ हू अपनौं लक्ष्यप्राप्ति है जाय है। यदि वह पूर्णरूपेण सत्यतासौं लगि जाय तौ। श्रीभगवत्प्राप्ति सरल, अति सरल—यदि सत्यतासौं चलते बनै तौ।

श्रीजीकी हरिणी—(रंगिणी)

श्रीजीकी चकोरी—(चारुचन्द्रिका)

श्रीजीकी वृद्धा मरकटी—(कक्खटी)

श्रीजीकी सारिका—(सूक्ष्मधी तथा शुभा)

श्रीजीकी मयूरी—(तुण्डिका)

सबसौं बड़ौ ज्ञान है—श्रीभगवान्‌में मोह है जानौं।

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।

शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम्॥

(भर्तृहरिशृंगारशतक)

भौंह-कमान सँधान सुठान जे नारि बिलोकनि-बानतें बाँचे।
कोप-कृसानु गुमानु-अवाँ घट-ज्यों जिनके मन आव न आँचे॥
लोभ सबै नटके बस ह्वै कपि-ज्यों जगमें बहु नाच न नाचे।
नीके हैं साधु सबै तुलसी, पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड ११८)

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥

(गीता १६।२१)

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥

(गीता १६। २२)

राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥

(रा०च०मा० २। ८४। ८)

जा जीवनमें लक्ष्य श्रीभगवत्-प्रेम है, वास्तवमें वही जीवन है। पूरी ममता केवल श्रीप्राणवल्लभमें ही, अन्यत्र व्यवहारमात्र।

शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः।
ईश्वरः शर्व ईशानः शंकरश्चन्द्रशेखरः॥
भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः।
मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः॥
उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः शितिकण्ठः कपालभृत्।
वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः॥

कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः।
हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः॥
गङ्गाधरोऽन्धकरिपुः क्रतुध्वंसी वृषध्वजः।
व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणू रुद्र उमापतिः॥

(अमरकोश, स्वर्गवर्ग १। ३०—३४)

तुम अपनायौ तब जानिहौं, जब मन फिरि परि है॥
भव सरिता कहँ नाव सन्त, यह कहि औरन्ह समुझावत।
हौं तिन्ह सौं हरि परम वैरु करि, तुम्ह सन भलौ मनावत॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

(गीता १४। २६)

जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता॥

(रा०च०मा० १।२०४।२)

इस रंग रँगीली दुनिया में सब देखि देखि सुधि भूलि गये।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान् नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥

(कठोपनिषद् १। ३। ९)

'उत् स्वेन क्रतुना संवदत।' (ऋग्वेद)

'उत्तम कर्म करिकैं तब ऊँची बात बोलौ।'

निष्ठा दृढ़ हौनी चहिए।

संदेह न रहै।

पूरौ विश्वास है जाय।

(अपनौ हृदय बजायकैं कह दे—शब्द होय टन-टन, फट्-फट् नहीं)

कैसी हू परिस्थिति बनै। किंतु अपने मनमें द्वेष काहूके प्रति न उपजन पावै।

मुझ नगण्य को नहीं भूलते, पलभर एक सच्चिदानन्द।
मैं प्रियतम का प्रियतम मेरे, यही नित्य निर्मल सम्बन्ध॥

श्रीप्राणनाथ जाकूँ अपनाय लेयँ हैं, फिर वाकौ त्याग नहीं करैं।

इनकौ चिन्तन बढ़ायवेकी पूरी चेष्टा करै। भूलौ प्रपंच। फिर तौ सब बन्यौ बनायौ है ही।

'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु।'

उत्तम संकल्प ही हमारे भीतर आने चहिए।

जाकी आवश्यकता जितनी कम हौयँगी, वह उतनौं ही ईश्वरके निकट होयगौ।

मुख्यतस्तु महत् कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा॥
महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च॥ लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव॥

(ना०भ०सू० ३८—४०)

'तमेवैकं जानथ'—केवल एकको ही जानौं।

'अन्या वाचो विमुञ्चथ'—अन्यको मत बोलौ।

यह वही मन है, जानैं चौरासी लाख योनिनमें भटकायौ है। का यह मायासौं पार करि देगौ? याने मार्ग चौरासीकौ ही देख्यौ है, परमार्थकौ नहीं।

यदि मनमें लौकिक कामना है तौ श्रीसद्गुरु प्राप्त हैवेपै हू कछु लाभ नहीं मिल सकै।

अनेकन अपकार करिवेपै हू जो दया ही करै, वह है संत। जब पापकौ अवसर आवै, तब कोई नहीं चूकै और जब अध्यात्मकौ नम्बर आवै, तब सब चूकैं। कोई लाखनमें एकाध ही सँभरै।

जबतक शरीर स्वस्थ है, तबतक ही कछु करिलेउ। या पथमें परमावश्यक है, ऊँचौ संग। आश्रय मिल तौ जाय है, पर निभनौं कठिन है, निभैं ही नहीं हैं।

बात बनाई जग ठग्यौ, मन परबोध्यौ नाँहिं।
कबिरा यह मन लै गयौ, लख चौरासी माँहिं॥

संसारकौ उलझ्यौ भयौ तौ पार है सकै है। परंतु शास्त्रकौ उलझायौ भयौ पार नहीं है सकै है।

जब आँख फूटि जायँ और पाँव टूटि जायँ, तब बनै भजन।

जीवके बीचमें दो हैं—माया और संत।

एक अपनौं पाठ पढ़ावै और लै जाय है नरक। दूसरौ अपनौं पाठ पढ़ावै और लै जाय है माया और नरकसौं पार।

जीव चाहै तौ सब कछु है सकै—

स्त्री, तौ लेउ—
धन, तौ लेउ—
पुत्र, तौ लेउ—
प्रतिष्ठा, तौ लेउ—
वैभव, तौ लेउ—और
उद्धार, तौ लेउ।

होयगौ अवश्य, यदि सच्ची लालसा है तौ। संसारसौं उपरति हैवे लगै और उद्धारकी लालसा है जाय तौ उद्धारकौ कोई-न-कोई उपाय अवश्य ही बनि जायगौ।

यदि संसार और शरीर प्रधान है तौ पाप अवश्य ही करने परिंगे। यदि श्रीसद्गुरुकी आज्ञापै चलिंगे तौ आनन्दकी बाढ़ आवैगी। जो चाहे करिकैं देखिले। मिर्च खायकैं देखिले या मिस्री। परिणाम प्रत्यक्ष ही होयगौ।

दूध, दही, घी, मधु और चीनी—जैसें ये पञ्चामृत हैं, वैसें ही अध्यात्मकौ पञ्चामृत है—शुद्ध सात्त्विक आहार, पेट साफ, मन साफ, बुद्धिमें सात्त्विक विचार तथा दृढ़ महदाश्रय।

कितनोऊ कछु करिलेउ। चाहे प्रवचन करिलेउ, चाहे कथा कहलेउ, चाहे यज्ञ करिलेउ, चाहे दान करिलेउ, चाहे जो करिलेउ, रहोगे इनमें ही—दाम, काम, नाम, चाममें।

यदि श्रीभगवान्‌की भक्ति करि रहे हो? और करि रहे हौ केवल श्रीभगवान्‌के ताँई ही तौ समस्त सद्गुण वेदशास्त्रनमें जो बताये हैं, वे स्वतः ही तुम्हारेमें आय जायँगे।

अद्यावधि जा काहूने कछु पायौ है, ऊँचे चढ़िकैं ही पायौ है। जबतक वृत्ति ऊँची नहीं बनैगौ, तबतक लाभ नहीं।

संसारमें यदि फँसौगे तो पाप अवश्य करने परिंगे। काहू संतके हाथ यदि फँसौगे तो अवश्य उठनौं परैगौ।

या पथमें अपने मनकौ तथा बुद्धिकौ बलिदान करनौं परै है, तबही आगे बढ़ि सकै है। यदि मनके सुझाव मानिकैं ही कार्य करै तौ श्रद्धा कहाँ रही।

एक हानि तौ सहनी ही परैगी। चाहें लोककी या परलोककी। एककी हानि बनि जायगौ।

कबिरा मन निर्मल भया, जैसें गंगा नीर।
पाछैं लागे हरि फिरैं, कहत कबीर कबीर॥

यदि नावमें पानी भरि गयौ तौ वो तौ डूबैगी ही। ऐसे ही यदि मनमें संसार भरि गयौ तौ वह तौ डूबैगौ ही।

जितने संत भये हैं, उन सबने विकारन कूँ कुचल्यौ है, तब ही संत बनि पाये। विकारन कौ दास कबहूँ संत नहीं बनि सकै है। जबतक मनमें विकार हैं, तबतक फूटे घड़ाके समान ही है।

या शरीर कूँ पापकी कमाई सौं पालौगे तौ याही कूँ तौ भोगनौं परैगौ।

जहाँ कामना-वासनारूपी लाश (शव) सड़ैं हैं, वहाँ राग-द्वेषरूपी चील, कौआ अवश्य मड़रावैं हैं।

जब काहूके कोटिन-जन्मनके पाप उदय हौयँ हैं, तब

अहंकार उपजै है। ऐसैं ही जब कोटिन-जन्मनके सुकृत उदय हौयँ हैं, तब दीनता, विनम्रता, सरलता, सहनशीलता, निरहंकारिताकी उपज होय है।

जाने कछु कियौ है, वाहीने कछु पायौ है। यदि प्रियतमकौ प्रेम पानौं है तौ सब कछु करनौं परैगौ। यदि लालसा है तौ सब कछु कराय लेगी। कमी है लक्ष्य की। लक्ष्य यदि दृढ़ है तौ न प्रमाद होयगौ, न उपेक्षा। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि—इन सबकूँ श्रीभगवान्में लगानौं है। ये अशुद्ध है गये हैं, संसारकौ चिन्तन करते-करते। अब प्रभुकी सेवा, चिन्तन सौं इनकूँ पवित्र बनानौं है। जैसें द्विज ही मन्दिरमें सेवा करि सकै है, शूद्र नहीं, वैसें ही शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि पवित्र बनैंगे, तब ही श्रीभगवत्प्रेम तथा सेवाके अधिकारी बनिंगे।

गृहस्थ-शरीरकी पवित्रता माता-पिता आदिक गुरुजननकी सेवा सौं होय है और विरक्तकी—संतसेवा तथा श्रीभगवद्भजन सौं। साधनके योग्य बनायवेके ताँईं याकौ पालन-पोषण करौ। सबसौं मुख्य बात है कि शरीर सौं पाप न बनन पावै। काहू कूँ कष्ट न होय। हृदय कूँ श्रीभगवत्-स्मरण सौं पवित्र करौ। एकान्तमें बैठिकैं इनकूँ याद करौ तथा इनकी कृपाकौ चिन्तन करौं। यह हृदय कूँ पिघलायवे कौ उपाय है। जैसें बनै हृदय पिघलायवे कौ ही चिन्तन करौ। जब-जब संकल्प करौ, तब-तब जान-बूझिकैं संसारमें फँसिवे कौ संकल्प न करौ। मान-प्रतिष्ठा आदिके संकल्प न करौं। यह है जाय, वह है जाय, ऐसे संकल्प न करौ। संकल्प करौ केवल इनके ताँईं। मनीराम कूँ समझाय दे कि तुम्हारे ताँईं अबतक बहुत भटकि लिये, अब बस करौ। जैसें बालक कूँ समझावै, वैसें ही मन कूँ समझावै, ऐसौ अभ्यास करिवे सौं मनकी चंचलता रुकि जावैगी। सावधान! अपनी ओर सौं कोई संसारी संकल्प न बनन पावै। श्रीसद्गुरुभगवान्ने हमें कृपा करिकैं सब विधि अपनाय लियौ है तौ हम हूँ पूर्णरूप सौं इनके निकट पहुँचिवेकी पूरी तैयारी करैं।

कल्पना करै कि इनके पास पहुँचुँगौ, श्रीचरणनमें साष्टांग गिरि परूँगौ, ये मोकूँ उठाय लिंगे, छाती सौं लगाय लिंगे, पूरी तैयारी इनके पास पहुँचिवे की। चिन्तन केवल इनकौ ही, व्यर्थ-चिन्तन न बनै।

कामना, लालसा।

वासना केवल श्रीभगवत्प्रेमकी तथा वैसौ ही जीवन बनै। दृढ़-वासना बनै केवल इनके ताँईं ही और कोई नहीं बस, यही है तैयारी। काहू काममें अधूरौपन न रहै। जो करै वह पूरौ-पूरौ करै। पूरे मन सौं, पूरी सत्यता सौं तथा पूरी लगन सौं करै। छल, कपट, दम्भ, दिखाऊपन छू न जाय। वास्तवमें अपरस तौ यह है कि जब हम इनकी सेवाके ताँईं हैं तौ अन्त:करण कूँ कोई विकार छू न जाय। जैसें शरीरके काममें कोई उपेक्षा-प्रमाद नहीं होय है, वैसें ही इनके काममें उपेक्षा-प्रमाद छू न जाय।

ईश्वर ऊपरी बात नहीं देखै है, देखै यह है कि ये जीव मेरे ताँईं कितनौं प्रयत्नशील है। याके हृदयमें हम सौं मिलिवेकी कितनी आग है? कितनी चटपटी है? कितनी लालसा है? कितनी विकलता है?

या पथमें आमूल परिवर्तन है। कन्या सौं बहू बननौं है। यह प्रतिज्ञा करिले कि मेरै समस्त शरीर, हृदय, मन, बुद्धि, वाणी, विचार केवल इनके ताँईं है। सबन कूँ समेटि कैं इनमें लगाय दे और कहूँ न लगन पावैं। ये अपवित्र न बनन पावैं। जैसें पतिव्रता सती कौ हाथ नहीं जर्यौ। ऐसें ही कोई वस्तु ऐसी न बन जाय जो इनके काम न आय सकै। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अन्त:करण,

समय, विद्या, चतुरता जो कछु अपने पास है, सब-के-सब पूरे-पूरे इनमें लगाय दे। नैंकहूँ न बचाय राखै। प्रमाद, उपेक्षा, आलस्य छू न जाय। आज शरीर ठीक है, कल न जानें का होय। यासौं सब काम आज ही पूरे। पूरी तैयारी मरिवे की। कल हमें मरनौं है, ऐसौ दृढ़भाव बनै तौ संसार सौं उपरति होयगी। न प्रमाद होयगौ, न उपेक्षा ही। अभिप्राय यह है कि जो कछु हो इनके ताँईं हो। पूरी सत्यताके साथ हो, दम्भ न होय तौ याही जन्ममें जीते-जी जीवन-मुक्त। संसारी लोग अपने ताँईं संतोष नही करैं हैं, और, और, और। ऐसैं ही हम इन सौं शिक्षा लैलैं कि हमहूँ सदैव प्यासे रहैं श्रीभगवत्प्रेमके ताँईं। संतोष रहैं संसारी कामनमें। यह है गयौ तौ का? न भयौ तौ का?

वास्तवमें दोष-दुर्गुण कौ पूरा नाश तौ तब ही होय है, जब प्रेममें डूबि जाय। उपाय यही है कि सतत याही प्रयत्नमें जुटे रहैं। प्रेमदेव पधारें तब सब काम बनि जाय। बार-बार जितने संकल्प उठैं, तब-तब केवल इनके ताँईं ही। बार-बार संसारी वस्तुन कौ संकल्प बनतौं रह्यौ और वह मिलती रहीं। **अब उलटे चलैं—**

बन्धन कौ संकल्प एक हू न उठन पावै। देहाध्यास विकार तबतक ही है, जबतक प्रेम नहीं। तीन बातें हैं देहाध्यास मिटायवेकी—

१- आत्मज्ञान हो, २- ब्रह्मज्ञान हो और ३- प्रेम हो।

यह सब करे नहीं जायँ हैं, हौयँ हैं। बार-बार यह भाव उठै कि मैं केवल इनकौ हूँ। विकार मिटानौं, संसार कूँ भुलानौं। बस इनमें लगि जाऔ।

प्रेमदेवके बुलायवेके उपाय ये हैं—

१-प्रेमीकी चर्चा, २-बार-बार इनकौ ही चिन्तन।

बस हृदय सौं एक ही पुकार उठै कि मैं हूँ कबहूँ ऐसौ बनूँगौ। याहू सौं बढ़िकैं है प्रेमी कौ संग। जितने उपाय बनैं, केवल इनके ताँईं।

'प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत्॥'

जबतक श्रीभगवान् सौं प्रेम न होयगौ, तबतक शरीरके बन्धन ही बढ़िंगे। लौकिक, पारलौकिक, सुख, सुविधा, आराम झौंकि दे सब आगमें। कोई इच्छा, लालसा, कामना, वासना न रहै। वासना रहै केवल एक प्रेम की। अभ्यास वैराग्य दीर्घकालतक चलै। प्रेमीमें श्रद्धा, वाही सौं प्रार्थना सतत, यह है गयौ अभ्यास। मनमें और कछु न आमन पावै यह है वैराग्य। कसनौं चहिए मन कूँ (शरीर कूँ नहीं)। शरीर कसिवे सौं बुढ़ापेमें सेवा छूट जायगी। प्रत्येक इन्द्रियकी वहाँके ताँईं तैयारी करनी परैगी। काम क्रमशः होय है। शरीर, इन्द्रिय, समय, द्रव्य आदि सब लगाते जायँ। शंका-संदेह न रहन पावै। न हौनौं हौंतौ तौ ये बानिक ही नहीं बनतौ।

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति॥

(मनुस्मृति ४। १५८)

बेष बिसद बोलनि मधुर मन कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइऐ, भएँ बिषय जल मीन॥

श्रीगोस्वामीजी कह रहे हैं कि जबतक तेरे मन मैं कटुता है और तेरे कर्म खोटे हैं (मलिन हैं) तथा जबतक तू भले ही खूब सुन्दर वेष बनाय लै, चाहैं खूब मीठी वाणी बोललै, तोकूँ जीवनधन प्रभु श्रीराम नहीं मिलि सकैं है।

तीन गाँठ कोपीन में, भाजी हू बिन नौन।
तुलसी मन सन्तोष जो, इन्द्र बापुरौ कौन॥

'को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥'
'कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥'
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जन होई॥

श्रीप्राणनाथने तुम्हें सुखकौ अवसर दियौ है तौ सबकूँ बाँटते रहौ। अपने काममें कम लेउ।

साधू ऐसा चाहिए, जो दुखै दुखावै नाँहि।
फूलपात तौरै नहीं, रहै बगीचा माँहि॥
जो तुम तौरौ मैं नहीं तोरौं।
तुमसौं तोरि कवन सन जोरौं।
'समुझहु छाँड़ि प्रकृति अभिमानी॥'

ऊँची समझ तब ही आवै है, जब **'छाँड़ि प्रकृति अभिमानी।'** अर्थात् अभिमानी प्रकृति कूँ छोड़ै तब।

ब्रह्मके निकट हौनौं ही उपनिषद् है।

सोभा सिंधु न अंत रही री।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रजकी बीथिनि फिरति वही री॥

काहू बातकूँ दृढ़ करिवेके ताईं बार-बार दुहरावै तौ वाही कूँ अभ्यास कहैं हैं।

घातक वार—

मेष राशि वारेके ताँईं रविवार घातक है।
वृष राशि वारेके ताईं शनिवार घातक है।
मिथुन राशि वारेके ताँईं सोमवार घातक है।
कर्क राशि वारेके ताँईं शुक्रवार घातक है।
सिंह राशि वारेके ताँईं शनिवार घातक है।
कन्या राशि वारेके ताँईं शनिवार घातक है।
तुला राशि वारेके ताँईं बृहस्पतिवार घातक है।
वृश्चिक राशि वारेके ताँईं शुक्रवार घातक है।

धनु राशि वारेके ताँईं शुक्रवार घातक है।
मकर राशि वारेके ताँईं मंगलवार घातक है।
कुम्भ राशि वारेके ताँईं बृहस्पतिवार घातक है।
मीन राशि वारेके ताँईं शुक्रवार घातक है।
अब मैं कासौं वैर करूँ?

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्॥'

'गुणरहितं कामनावर्जितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्॥' (ना०भ०सू० ५१, ५४)

उतते कोई न आवई, जासूँ पूछूँ धाय।
इतते सब ही जात हैं, भार लदाय॥
पावक परम निसिद्ध लाकरी होत अनल सम जानौं।
बाँधे लोटा डोरि तू, जब चालै द्वै कोश।
जा पथ सौं नहीं लौटनौं, तासौं क्यौं वेहोश॥
जीव दया, हरिनाम रुचि, सेवन सन्त सुजान।
केवल एक के ही बनौं, अवश्य होयगौ प्रेम।

अच्छौ है वह, जानैं अपनौं सब कछु श्रीभगवान् कूँ सौंपि दियौ है।

बुरौ है वह, जानैं अपनौं सब कछु माया कूँ सौंपि दियौ है।

नाटक ठीक खेलौ, व्यवहार ठीक बरतौ, परंतु रहौ सावधान! मन कहूँ संसारमें चिपकन न पावै।

सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। माया कृत परमारथ नाहीं॥
सँभर सँभर कर चलना है रे। गिरि गिरि कैं फिर उठना है रे॥

सुधारनी है अपनी भूल।

अपनेमें दुर्गुण बढ़ानौं, पशुता लानौं है। एवमेव अपनेमें श्रीसद्‌गुण भरनौं, दिव्यता लानौं है। अपनौं उत्थान करनौं है।

अँसुअन कूँ अपने अँचरान सौं लालन पौंछि करैं बड़भागी।

श्रीकृष्णकी······कौ नाम है मण्डाना।

श्रीकृष्णकी दोहनी कौ नाम है—अमृत दोहनी।

यह काम हम करैंगे तौ हमें पुण्य मिलैगौ अथवा ख्याति। यह विचार लैकैं कोई काम न करै। प्रीति और ज्ञान मिलकैं भक्ति बनैं है।

श्रीकृष्ण मेरे हैं, यह है प्रीति। श्रीकृष्ण ब्रह्म हैं, ईश्वर हैं, यह है ज्ञान॥

मानवकी मानवताके अन्तर्गत जो पशुता घुसि गयी है, वह साधक कूँ उठन नहीं देय है। उलटे भौग-वासनाकी ओर ही घसीटै है।

इष्टके ताँईं याही पशु कौ बलिदान कर दैनौं है।

प्रीतिराम सौं नीति पथ, चलिय राग रस जीति।
तुलसी संतन के मते, यही भगति की रीति॥

सबरी सफलता कौ मूल मन्त्र है—प्रबल इच्छा-शक्ति।

अपने सौं यह प्रश्न है—

श्रीजीवनधनमें आत्मीयताकी पराकाष्ठा करिदेउ।

तुमने या सुअवसर कूँ शरीरके लालन-पालनमें लगायौ है अथवा श्रीप्रियतमकी प्राप्तिमें।

अहम् तथा मम कौ परिवर्तन करिदेउ—मैं केवल इनकौ हूँ, यह अहम् कौ परिवर्तन बन्यौ। मेरे जीवन-सर्वस्व केवल एक ये ही हैं, यह मम कौ परिवर्तन भयौ।

जानें वासनान कूँ पद दलित करि दियौ है। वास्तवमें वही मुक्त है।

अपने कूँ बार-बार देखते रहनौं—हम उठि रहे हैं या मायाके फन्दामें फँसि रहे हैं।

सत्य प्रिय-भाषण, ब्रह्मचर्य, मौन तथा रस-त्याग—ये उत्थानमें परम सहायक हैं।

यह सत् है—यह असत् है—यह ठीक-ठीक समझि लैनौं (**यह भयौ ज्ञान**)।

ज्ञान भयौ तब समझौ, जब असत् सौं सर्वथा चित्त हटि जाय (**यह भयौ वैराग्य**)।

अब बच्यौ सत् (**श्रीभगवान्**), इनकूँ दृढ़ता सौं पकरि लैनौं (**यह बनी भक्ति**)।

मानवताका रूप एक ही—ईश समर्पित हो जीवन।
घट-घट माहीं साँईं रमता कटुक बचन मत बोल रे।
बुद्धि विशुद्ध, तपोमय जीवन।
नारायण जब अन्त में, यम पकरैंगे बाँहि।
उनसौं हू कहि दीजियौ, हमें सोपतौं नाँहि॥

'भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा सम्पद्यते॥'

(ब्र०सू० ४। १। १९)

इतरे—संचित और क्रियमाणके अतिरिक्त दूसरे प्रारब्धरूप शुभाशुभ कर्मनकौ,

तु=तौ,
भोगेन=उपभोगके द्वारा,
क्षपयित्वा=क्षीण करिकैं,
सम्पद्यते=परमपद कूँ प्राप्त है जाय है।

शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम्।
मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः॥

(श्रीमद्भा० ११। १७। १६)

प्रेमपथकी कुंजी—हमारौ वही है, जो हमारौ चिन्तन करै और हम सौ बनैं।

यह शरीर जब श्रीभगवान्की वस्तु है?

तौ—यह पाप नहिं करि सकै। काहूकौ अहित नहीं करि सकै। नेत्र संसार कूँ नहीं देखि सकैं। वाणी कटु, असत्य और व्यर्थ नहीं बोलि सकै। कान श्रीभगवद् गुणानुवाद ही सुनैं, संसारकी कैसी हूँ चर्चा नहीं सुन सकैं अर्थात् समस्त इन्द्रिय, हाथ, पैर, मन, बुद्धि, अन्तःकरण केवल श्रीभगवान्के ही काम आवैं। ये ही है जीवन केवल इनके ताँईं। वास्तवमें ये ही है हमारी ईमानदारी।

एक बात सदैव ख्याल रहै—हम साधु भये हैं, केवल साधनके ताईं, प्रपंचके ताँईं नहीं।

कहूँ आसक्ति न हौन पावै (**जड भरतकी भाँति सावधान**)।

कामिनी, कांचन दोउनके चक्कर सौं सावधान! नहीं तौ याद राखौ! लोक-परलोक दोऊ स्वाहा है जायँगे। इनसौं कैसैं हूँ सम्पर्क न हौन पावै।

मनमुख स्वामि। तौ विमुख दुख दोषू।
कुबिचारी रिपु पर जय पाता संयम का सेनानी।

निरन्तर अपनौं ही लौकिक स्वार्थ सोचते रहनौं, मायाकौ बन्धन दृढ़ बनानौं है।

कर्मकी सफलता तीन बातनमें है—

१-प्रेम, २-ज्ञान और ३-कर्म।

जगके नश्वर सुखमें रह जाय न कछु राग।
ललित किशोरी बीते वरस अनेकह।
देखे नाँहि प्राण प्यारे छार ऐसे जीवे पै॥
त्यक्त मद मन्यु कृत सुकृत रासि।

काहू पुस्तक कूँ केवल मनोरंजनमात्रके ताँईं न पढ़ै, अपितु जीवन उन्नयन तथा परिष्कारके विचार सौं ही पढ़ै।

तेरे बहुत-से जन्म ऐसैं ही व्यर्थ गये, जो कर्तव्य रह्यौ, वह ना कियौ।

अब यह मानव-जन्म वाहीकी पूर्तिके ताँईं मिल्यौ है। (**'चिन्त्यते'**)

उत्तम-विचारनमें रहते भये, उत्तम-आचरण करते भये, सर्वोत्तम वस्तु प्रेम प्राप्त करै।

क्लेशसे जुटाता संगियौं का झमेला रे।
प्रिय के प्रदेश जाना पड़ता अकेला रे॥

बाहरी त्याग तौ ठीक ही है, तथापि मनमें हूँ कोई संग्रह न करै।

कस्तरति कस्तरति मायाम्?
यः संगांस्त्यजति यो महानुभावं सेवते निर्ममो भवति॥

(ना०भ०सू० ४६)

कौन तरै है? कौन तरै है? माया सौं।

जो अकेलौ रहै और जो महापुरुषन कौ सेवन करै है और जो संसार सौं निर्मम होय है अर्थात् संसारमें जाकी कहूँ हूँ ममता नहीं होय है।

उपासनाकौ मूल उद्देश्य है, देहात्मभाव कूँ विलुप्त करनौं।

अहिंसासत्यमस्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः।
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचं सन्तोष आर्जवम्॥

(शारीरकोपनिषद् १)

अति आवश्यकता तौ है नहीं तथापि यदि दूसरौ जल मिलि जाय तौ शौच कर्म सौं निवृत्त हैकैं दूसरे जलमें साधारण स्नान करिकैं, वे वस्त्र बदलिकैं, दूसरे वस्त्र पहनिकैं तब देव-प्रयाग आदिक तीर्थनमें गोता लगानौं। तीर्थ-स्नानकी विधि उत्तम यही है। निभि सकै तौ।

विहंगम मार्ग है—(ज्ञान-मार्ग)

पिपीलिका मार्ग है—(कर्म-मार्ग)

मत्स्य मार्ग है—(उपासना-मार्ग) ईश्वर है जल, मत्स्य है प्रेमी।

सच्चरित्रता ही जीवन कौ आधार है।

जासौं कछु काम करानौ, वाकूँ पारिश्रमिक दै दैनौं।

परदोषदर्शन, आलोचना, निन्दा—ये न हौन पावैं।

मन्दिरके पुजारी तथा पण्डा आदिकन कौ यथाशक्ति सम्मान करनौं। इनमें दोष न देखै।

प्रभु अपने मुख ते कही, साधू मेरी देह।
इनके चरणन की मुझे, प्यारी लागै खेह॥

दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते।

❑ ❑

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

डाकद्वारा एवं विदेशोंमें पुस्तकें भेजनेकी व्यवस्था केवल गोरखपुरमें है।

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।

इन्दौर-452001	जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग	(0731) 2526516, 2511977
ऋषिकेश-249304	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम	(0135) 2430122, 2432792
कटक-753009	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	(0671) 2335481
कानपुर-208001	24/55, बिरहाना रोड	फोन/फैक्स (0512) 2352351
कोयम्बटूर-641018	गीताप्रेस मेंशन, 8/1 एम, रेसकोर्स	(0422) 3202521
कोलकाता-700007	गोबिन्दभवन; 151, महात्मा गाँधी रोड	(033) 40605293, 22680251
गोरखपुर-273005	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस	(0551) 2334721, 2331250, फैक्स 2336997
चेन्नई-600010	इलेक्ट्रो हाउस, रामनाथन स्ट्रीट किलपौक	(044) 26615959 ; फैक्स 26615909
जलगाँव-425001	7, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	(0257) 2226393 ; फैक्स 2220320
दिल्ली-110006	2609, नयी सड़क	(011) 23269678; फैक्स 23259140
नागपुर-440002	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड	(0712) 2734354
पटना-800004	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	(0612) 2300325
बेंगलुरु-560027	7/3, सेकेण्ड क्रास, लालबाग रोड	(080) 65636566
भीलवाड़ा-311001	जी 7, आकार टावर, सी ब्लाक, गान्धीनगर	(01482) 248330
मुम्बई-400002	282, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)	(022) 22030717
राँची-834001	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	(0651) 2210685
रायपुर-492009	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक (छत्तीसगढ़)	(0771) 4034430
वाराणसी-221001	59/9, नीचीबाग	(0542) 2413551
सूरत-395001	2016 वैभव एपार्टमेन्ट, भटार रोड	(0261) 2237362, 2238065
हरिद्वार-249401	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	(01334) 222657
हैदराबाद-500095	41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	(040) 24758311, 66758311
काठमाडौं (नेपाल)	पसल नं० 6,7,8, माधवराज सुमार्गी स्मृति भवन, वनकाली, पशुपति क्षेत्र। e-mail : gitapress.nepal@gmail.com	मोबाइल : 9823490038

स्टेशन-स्टाल— **दिल्ली** (प्लेटफार्म नं० 5-6); **नयी दिल्ली** (नं० 14-15); **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली] (नं० 4-5); **कोटा** [राजस्थान] (नं० 1); **बीकानेर** (नं० 1); **गोरखपुर** (नं० 1); **गोण्डा** (नं० 1); **लखनऊ** [एन० ई० रेलवे]; **कानपुर** (नं० 1); **वाराणसी** (नं० 4-5); **मुगलसराय** (नं० 3-4); **हरिद्वार** (नं० 1); **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार); **राँची** (नं० 1); **धनबाद** (नं० 2-3); **मुजफ्फरपुर** (नं० 1); **समस्तीपुर** (नं० 2); **छपरा** (नं० 1); **सीवान** (नं० 1); **हावड़ा** (नं० 5 तथा 18 दोनोंपर); **कोलकाता** (नं० 1); **सियालदा मेन** (नं० 8); **आसनसोल** (नं० 5); **कटक** (नं० 1); **भुवनेश्वर** (नं० 1); **अहमदाबाद** (नं० 2-3); **राजकोट** (नं० 1); **जामनगर** (नं० 1); **भरुच** (नं० 4-5); **वडोदरा** (नं० 4-5); **इन्दौर** (नं० 5); **जबलपुर** (नं० 6); **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] (नं० 1); **गोंदिया** [महाराष्ट्र] (नं० 1); **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] (नं० 1); **विजयवाड़ा** (नं० 6); **गुवाहाटी** (नं० 1); **खड़गपुर** (नं० 1-2); **रायपुर** [छत्तीसगढ़] (नं० 1); **बेंगलुरु** (नं० 1); **यशवन्तपुर** (नं० 6); **हुबली** (नं० 1-2); **श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० 1)।

फुटकर पुस्तक-दूकानें— **चूरू**-ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, **ऋषिकेश**-मुनिकी रेती; **बेरहामपुर**-म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, के० एन० रोड, **नडियाड** (गुजरात) संतराम मन्दिर; **चेन्नई**-12, अभिरामी माल, पुरासावलकम, निकट किलपौक/वेपेरी।